चन्द्रकान्ता सन्तति

बाबू देवकीनन्दन खत्री



भारती भाषा प्रकाशन
शाहदरा, दिल्ली-110032

चन्द्रकान्ता सन्तति

बाबू देवकीनन्दन खत्री

4



प्रकाशक :
भारती भाषा प्रकाशन
518/6 बी, विश्वासनगर
शाहदरा, दिल्ली-110032

आवरण : हरिप्रकाश त्यागी

संस्करण : 1995 मूल्य : 125.00

मुद्रक : विकास ऑफसेट
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

CHANDRAKANTA SANTATI, PART IV (NOVEL) *by*
BABU DEVKINANDAN KHATRI

चन्द्रकान्ता सन्तति

तेरहवाँ भाग

1

अब हम अपने पाठकों का ध्यान जमानिया के तिलिस्म की तरफ फेरते हैं क्योंकि कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह को वहाँ छोड़े बहुत दिन हो गये और अब बीच में उनका हाल लिखे बिना किस्से का सिलसिला ठीक नहीं होता।

हम लिख आये हैं कि कुँअर इन्द्रजीतसिंह ने तिलिस्मी किताब को पढ़कर समझने का भेद आनन्दसिंह को बताया और इतने ही में मन्दिर के पीछे की तरफ से चिल्लाने की आवाज आई। दोनों भाइयों का ध्यान एकदम उस तरफ चला गया और फिर यह आवाज सुनाई पड़ी, "अच्छा-अच्छा, तू मेरा सिर काट ले, मैं भी यही चाहती हूँ कि अपनी जिन्दगी में इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह को दुःखी न देखूं। हाय इन्द्रजीतसिंह, अफसोस, इस समय तुम्हें मेरी खबर कुछ भी न होगी!" इस आवाज को सुनकर इन्द्रजीतसिंह बेचैन और बेताब हो गये और आनन्दसिंह से यह कहते हुए कि 'कमलिनी की आवाज मालूम पड़ती है' मन्दिर के पीछे की तरफ लपके। आनन्दसिंह भी उनके पीछे-पीछे चले गये।

जब कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह मन्दिर के पीछे की तरफ पहुँचे तो एक विचित्र वेषधारी मनुष्य पर उनकी निगाह पड़ी। उस आदमी की उम्र अस्सी वर्ष से कम न होगी। उसके सिर, मूँछ-दाढ़ी और भौं इत्यादि के तमाम बाल बर्फ की तरफ सफेद हो रहे थे मगर गर्दन और कमर पर बुढ़ापे ने अपना दखल जमाने से परहेज कर रक्खा था; अर्थात् न तो उसकी गर्दन हिलती थी और न कमर झुकी हुई थी। उसके चेहरे पर झुर्रियाँ (बहुत कम) पड़ी हुई थीं मगर फिर भी उसका गोरा चेहरा रौनकदार और रौबीला दिखाई पड़ता था और दोनों तरफ के गालों पर अब भी सुर्खी मौजूद थी। एक नहीं बल्कि सारे ही अंगों की किसी-न-किसी हालत से वह अस्सी बरस का बुड्ढा जान पड़ता था परन्तु कमजोरी, पस्तहिम्मती, बुजदिली और आलस्य इत्यादि के धावे से अभी तक उसका शरीर बचा हुआ था।

उसकी पोशाक राजों-महाराजों की पोशाकों की तरह बेशकीमती तो न थी

मगर इस योग्य भी न थी कि उससे गरीबी और कमलियाकत जाहिर होती। रेशमी तथा मोटे कपड़े की पोशाक हर जगह से चुस्त और फौजी अफसरों के ढंग की मगर सादी थी। कमर में एक भुजाली लगी हुई थी और बाएँ हाथ में सोने की एक बड़ी-सी डलिया या चँगेर लटकाए हुए था। जिस समय वह कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह की तरफ देख कर हँसा, उस समय यह भी मालूम हो गया कि उसके मुंह में जवानों की तरह कुल दाँत अभी तक मौजूद हैं और मोती की तरह चमक रहे हैं।

कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह को आशा थी कि वे इस जगह कमलिनी को नहीं तो किसी-न-किसी औरत को अवश्य देखेंगे, मगर आशा के विपरीत एक ऐसे आदमी को देख उन्हें बड़ा ही ताज्जुब हुआ। इन्द्रजीतसिंह ने वह तिलिस्मी खंजर, जो मन्दिर के नीचे वाले तहखाने में पाया था, आनन्दसिंह के हाथों में दे दिया और आगे बढ़कर उस आदमी से पूछा, "यहाँ से एक औरत के चिल्लाने की आवाज आई थी, वह कहाँ है?"

बुड्ढा—(इधर-उधर देख के) यहाँ तो कोई औरत नहीं है।

इन्द्रजीतसिंह—अभी-अभी हम दोनों ने उसकी आवाज सुनी थी।

बुड्ढा—बेशक सुनी होगी, मगर मैं ठीक कहता हूँ कि यहाँ पर कोई औरत नहीं है।

इन्द्रजीतसिंह—तो फिर वह आवाज किसकी थी?

बुड्ढा—वह आवाज मेरी ही थी।

आनन्दसिंह—(सिर हिला कर) कदापि नहीं।

इन्द्रजीतसिंह—मुझे इस बात का विश्वास नहीं हो सकता। आपकी आवाज वैसी नहीं है जैसी वह आवाज थी।

बुड्ढा—जो मैं कहता हूँ उसे आप विश्वास करें या यह बतावें कि आपको मेरी बात का विश्वास क्योंकर होगा? क्या मैं फिर उसी तरह से बोलूँ?

इन्द्रजीतसिंह—हाँ यदि ऐसा हो तो हम लोग आपकी बात मान सकते हैं।

बुड्ढा—(उसी तरह से और वे ही शब्द अर्थात्—'अच्छा-अच्छा तू मेरा सिर काट ले'—इत्यादि बोल कर) देखिये वे ही शब्द और उसी ढंग की आवाज है या नहीं?

आनन्दसिंह—(ताज्जुब से) बेशक वही शब्द और ठीक वैसी ही आवाज है।

इन्द्रजीतसिंह—मगर इस ढंग से बोलने की आपको क्या आवश्यकता थी?

बुड्ढा—मैं इस तिलिस्म में कल से चारों तरफ घूम-घूमकर आपको खोज रहा हूँ। सैकड़ों आवाजें दीं और बहुत उद्योग किया मगर आप लोगों से मुलाकात न हुई। तब मैंने सोचा कदाचित् आप लोगों ने यह सोच लिया हो कि इस तिलिस्म के कारखाने की आवाज का उत्तर देना उचित नहीं है और इसी से आप मेरी आवाज पर ध्यान नहीं देते। आखिर मैंने यह तरकीब निकाली और इस ढंग से बोला जिसमें सुनने के साथ ही आप बेताब हो जायँ और स्वयं ढूंढ़ कर मुझसे मिलें, और आखिर जो कुछ मैंने सोचा था वही हुआ।

इन्द्रजीतसिंह—आप कौन हैं और मुझे क्यों बुला रहे थे?

आनन्दसिंह—और इस तिलिस्म के अन्दर आप कैसे आए ?

बुड्ढा—मैं एक मामूली आदमी हूँ और आपका एक अदना गुलाम हूँ। इसी तिलिस्म में रहता हूँ और यही तिलिस्म मेरा घर है। आप लोग इस तिलिस्म में आए हैं तो मेरे घर में आए हैं अतएव आप लोगों की मेहमानी और खातिरदारी करना मेरा धर्म है इसीलिए मैं आप लोगों को ढूंढ़ रहा था।

इन्द्रजीतसिंह—अगर आप इसी तिलिस्म में रहते हैं और यह तिलिस्म आपका घर है तो हम लोगों को आप दोस्ती की निगाह से नहीं देख सकते, क्योंकि हम लोग आपका घर अर्थात् यह तिलिस्म तोड़ने के लिए यहाँ आए हैं। और कोई आदमी किसी ऐसे की खातिर नहीं कर सकता जो उसका मकान तोड़ने आया हो, तब हम क्योंकर विश्वास कर सकते हैं कि आप हमें अच्छी निगाह से देखते होंगे या हमारे साथ दगा या फरेब न करेंगे ?

बुड्ढा—आपका खयाल बहुत ठीक है, ऐसे समय पर इन सब बातों को सोचना और विचार करना बुद्धिमानी का काम है, परन्तु इस बात का आप दोनों भाइयों को विश्वास करना ही होगा कि मैं आपका दोस्त हूँ। भला सोचिए तो सही कि मैं दुश्मनी करके आपका क्या बिगाड़ सकता हूँ ? हाँ, आपकी मेहरबानी से अवश्य फायदा उठा सकता हूँ।

इन्द्रजीतसिंह—हमारी मेहरबानी से आपका क्या फायदा होगा और आप इस तिलिस्म के अन्दर हमारी क्या खातिर करेंगे ? इसके अतिरिक्त यह भी बतलाइए कि क्या सबूत पाकर हम लोग आप को अपना दोस्त समझ लेंगे और आपकी बात पर विश्वास कर लेंगे ?

बुड्ढा—आपकी मेहरबानी से मुझे बहुत-कुछ फायदा हो सकता है। यदि आप चाहेंगे तो मेरे घर को अर्थात् इस तिलिस्म को बिल्कुल चौपट न करेंगे। मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि आप इस तिलिस्म को न तोड़ें और इससे फायदा न उठाएँ, बल्कि मैं यह कहता हूँ कि इस तिलिस्म को उतना ही तोड़िए जितने से आपको गहरा फायदा पहुँचे और कम फायदे के लिए व्यर्थ उन मजेदार चीजों को चौपट न कीजिए जिनके बनाने में बड़े-बड़े बुद्धिमानों ने वर्षों मेहनत की है और जिसका तमाशा देखकर बड़े-बड़े होशियारों की अक्ल भी चकरा सकती है। अगर इसका थोड़ा-सा हिस्सा आप छोड़ दें तो मेरा खेल-तमाशा बना रहेगा और इसके साथ ही साथ आपके दोस्त गोपाल-सिंह की इज्जत और नामवरी में भी फर्क न पड़ेगा और वह तिलिस्म के राजा कहलाने लायक बने रहेंगे। मैं इस तिलिस्म में आपकी खातिरदारी अच्छी तरह कर सकता हूँ तथा ऐसे-ऐसे तमाशे दिखा सकता हूँ जो आप तिलिस्म तोड़ने की ताकत रखने पर भी बिना मेरी मदद के नहीं देख सकते, हाँ उसका आनन्द लिए बिना उसको चौपट अवश्य कर सकते हैं। बाकी रही यह बात कि आप मुझ पर भरोसा किस तरह कर सकते हैं, इसका जवाब देना अवश्य ही जरा कठिन है।

इन्द्रजीतसिंह—(कुछ सोचकर) तुम्हारी राजा गोपालसिंह से जान-पहचान है ?

बुड्ढा—अच्छी तरह जान-पहचान है बल्कि हम दोनों में मित्रता है।

इन्द्रजीतसिंह—(सिर हिलाकर) यह बात तो मेरे जी में नहीं बैठती।

बुड्ढा—सो क्यों ?

इन्द्रजीतसिंह—इसलिए कि एक तो यह तिलिस्म तुम्हारा घर है, कहो, हाँ।

बुड्ढा—जी हाँ।

इन्द्रजीतसिंह—जब यह तिलिस्म तुम्हारा घर है तो यहाँ का एक-एक कोना तुम्हारा देखा हुआ होगा, बल्कि आश्चर्य नहीं कि राजा गोपालसिंह की बनिस्बत इस तिलिस्म का हाल तुमको ज्यादा मालूम हो।

बुड्ढा—जी हाँ, बेशक ऐसा ही है।

इन्द्रजीतसिंह—(मुस्कुराकर) तिस पर राजा गोपालसिंह से तुम्हारी मित्रता है !

बुड्ढा—अवश्य।

इन्द्रजीतसिंह—तो तुमने इतने दिनों तक राजा गोपालसिंह को मायारानी के कैदखाने में क्यों सड़ने दिया ? इसके जवाब में तुम यह नहीं कह सकते कि मुझे गोपालसिंह के कैद होने का हाल मालूम न था, या मैं उस सीखचे वाली कोठरी तक नहीं जा सकता था जिसमें वे कैद थे।

इन्द्रजीतसिंह के इस सवाल ने बुड्ढे को लाजवाब कर दिया और वह सिर नीचा करके कुछ सोचने लगा। कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह ने समझ लिया कि यह झूठा है और हम लोगों को धोखा देना चाहता है। बहुत थोड़ी देर तक सोचने के बाद बुड्ढे ने सिर उठाया और मुस्कराकर कहा, "वास्तव में आप बड़े होशियार हैं, बातों की उलझन में भुलावा देकर मेरा हाल जानना चाहते हैं, मगर ऐसा नहीं हो सकता, हाँ, जब आप तिलिस्म तोड़ लेंगे तो मेरा परिचय भी आपको मिल जायगा, लेकिन यह बात झूठी नहीं हो सकती कि राजा गोपालसिंह मेरे दोस्त हैं और यह तिलिस्म मेरा घर है।"

इन्द्रजीतसिंह—आप स्वयं अपने मुँह से झूठे बन रहे हैं, इसमें मेरा क्या कसूर है ? यदि गोपालसिंह आपके दोस्त हैं तो आप मेरी बात का पूरा-पूरा जवाब देकर मेरा दिल क्यों नहीं भर देते हैं ?

बुड्ढा—नहीं, आपकी इस बात का जवाब मैं नहीं दे सकता कि गोपालसिंह को मैंने मायारानी के कैदखाने से क्यों नहीं छुड़ाया।

इन्द्रजीतसिंह—तो फिर मेरा दिल कैसे भरेगा और मैं कैसे आप पर विश्वास करूँगा ?

बुड्ढा—इसके लिए मैं दूसरा उपाय कर सकता हूँ।

इन्द्रजीतसिंह—चाहे कोई भी उपाय कीजिए, परन्तु इस बात का निश्चय होना चाहिए कि यह तिलिस्म आपका घर है और गोपालसिंह आपके मित्र हैं।

बुड्ढा—आपको तो केवल इसी बात का विश्वास होना चाहिए कि मैं आपका दुश्मन नहीं हूँ।

आनन्दसिंह—नहीं-नहीं, हम लोग और किसी बात का सबूत नहीं चाहते, केवल ये दो बात आप साबित कर दें, जो भाईजी चाहते हैं।

बुड्ढा—तो इस समय मेरा यहाँ आना व्यर्थ ही हुआ !(चंगेर की तरफ इशारा

करके) देखिए आप लोगों के खाने के लिए मैं तरह-तरह की चीजें लेता आया था, मगर अब लौटा ले जाना पड़ा, क्योंकि जब आपको मुझ पर विश्वास ही नहीं है तो इन चीजों को कब स्वीकार करेंगे।

इन्द्रजीतसिंह—बेशक, मैं इन चीजों को स्वीकार नहीं कर सकता, जब तक कि मुझे आपकी बातों का विश्वास न हो जाय।

आनन्दसिंह—(मुस्कुराकर) क्या आपके लड़के-बाले भी इसी तिलिस्म में रहते हैं ? ये सब चीजें आपके घर की बनी हुई हैं या बाजार से लाये हैं ?

बुड्ढा—जी मेरे लड़के वाले नहीं हैं न मैं दुनियादार ही हूँ। यहाँ तक कि कोई नौकर भी मेरे पास नहीं है—ये चीजें तो बाहर से खरीद लाया हूँ।

आनन्दसिंह—तो इससे यह भी जाना जाता है कि आप दिन-रात इस तिलिस्म में नहीं रहते, जब कभी खेल-तमाशा देखने की इच्छा होती होगी तो चले आते होंगे।

इन्द्रजीतसिंह—खैर, जो हो। हमें इन सब बातों से कोई मतलब नहीं, हमारे सामने जब ये अपने सच्चे होने का सबूत लाकर रखेंगे, तब हम इनसे बातें करेंगे और इनके साथ चलकर इनका घर भी देखेंगे।

इस बात का जवाब उस बुड्ढे ने कुछ न दिया और सिर झुकाये वहाँ से चला गया। इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह भी यह देखने के लिए कि वह कहाँ जाता है और क्या करता है, उसके पीछे चले। बुड्ढे ने घूमकर इन दोनों भाइयों को अपने पीछे-पीछे आते देखा, मगर इस बात की उसने कुछ परवाह न की और बराबर चलता गया।

हम पहले के किसी बयान में लिख आये हैं कि इस बाग में पश्चिम की तरफ की दीवार के पास एक कुआँ था। वह बुड्ढा उसी कुएँ की तरफ चला गया और जब उसके पास पहुँचा तो बिना कुछ रुके एकदम उसके अन्दर कूद पड़ा, इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह भी उस कुएँ के पास पहुँचे और झाँककर देखने लगे, मगर सिवाय अंधकार के और कुछ भी दिखाई न दिया।

आनन्दसिंह—जब वह बुड्ढा बेधड़क इसके अन्दर कूद गया तो यह कुआँ जरूर किसी तरफ निकल जाने का रास्ता होगा !

इन्द्रजीतसिंह—मैं भी यही समझता हूँ।

आनन्दसिंह—यदि कहिए तो मैं इसके अन्दर जाऊँ ?

इन्द्रजीतसिंह—नहीं-नहीं, ऐसा करना बड़ी नादानी होगी। तुम इस तिलिस्म का हाल कुछ भी नहीं जानते, हाँ, मैं इसके अन्दर बेखटके जा सकता हूँ क्योंकि तिलिस्मी किताब को पढ़ चुका हूँ और वह मुझे अच्छी तरह याद भी है, मगर मैं नहीं चाहता कि तुम्हें इस जगह अकेला छोड़कर जाऊँ।

आनन्दसिंह—तो फिर अब क्या करना चाहिए ?

इन्द्रजीतसिंह—बस सबसे पहले तुम इस तिलिस्मी किताब को पढ़ जाओ और इस तरह याद कर जाओ कि पुनः इसके देखने की आवश्यकता न रहे, फिर जो कुछ करना होगा किया जायगा। इस समय इस बुड्ढे का पीछा करना हमें स्वीकार नहीं है। जहाँ तक मैं समझता हूं यह दगाबाज बुड्ढा खुद हम लोगों का पीछा करेगा और फिर

हमारे पास आएगा, बल्कि ताज्जुब नहीं कि अबकी दफे कोई नया रंग लावे।

आनन्दसिंह—जैसी आज्ञा, अच्छा तो वह किताब मुझे दीजिए, मैं भी पढ़ जाऊँ।

दोनों भाई लौटकर फिर उसी मन्दिर के पास आए और आनन्दसिंह तिलिस्मी किताब को पढ़ने में लौलीन हुए।

दोनों भाई चार दिन तक उसी बाग में रहे। इस बीच में उन्होंने न तो कोई कार्रवाई की और न कोई तमाशा देखा। हाँ, आनन्दसिंह ने उस किताब को अच्छी तरह पढ़ डाला और सब बातें दिल में बैठा लीं। वह खून से लिखी हुई तिलिस्मी किताब बहुत बड़ी न थी और उसके अन्त में यह बात लिखी हुई थी—

"निःसन्देह तिलिस्म खोलने वाले का जेहन तेज होगा। उसे चाहिए कि इस किताब को पढ़कर अच्छी तरह याद कर ले क्योंकि इसके पढ़ने से ही मालूम हो जायगा कि यह तिलिस्म खोलने वाले के पास बची न रहेगी, किसी दूसरे काम में लग जायगी, ऐसी अवस्था में अगर इसके अन्दर लिखी हुई कोई बात भूल जायगी तो तिलिस्म खोलने वाले की जान पर आ बनेगी। जो आदमी इस किताब को आदि से अन्त तक याद न कर सके, वह तिलिस्म के काम में कदापि हाथ न लगावे, नहीं तो धोखा खायेगा।"

2

दिन लगभग पहर भर के चढ़ चुका है। दोनों कुमार स्नान-ध्यान-पूजा से छुट्टी पाकर तिलिस्म तोड़ने में हाथ लगाने के लिए जा ही रहे थे कि रास्ते में फिर उसी बुड्ढे से मुलाकात हुई। बुड्ढे ने झुककर दोनों कुमारों को सलाम किया और अपनी जेब में से एक चिट्ठी निकालकर कुँअर इन्द्रजीतसिंह के हाथ में देकर बोला, "देखिए राजा गोपालसिंह के हाथ की सिफारिशी चिट्ठी ले आया हूँ, इसे पढ़कर तब कहिए कि मुझ पर भरोसा करने में अब आपको क्या उज्र है?" कुमार ने चिट्ठी पढ़ी और आनन्दसिंह को दिखाने के बाद हँसकर उस बुड्ढे की तरफ देखा।

बुड्ढा—(मुस्कुराकर) कहिए, अब आप क्या कहते हैं? क्या इस पत्र को आप जाली या बनावटी समझते हैं?

इन्द्रजीतसिंह—नहीं-नहीं, यह चिट्ठी जाली नहीं हो सकती, मगर देखो तो सही—इस (आनन्दसिंह के हाथ से चिट्ठी लेकर और चिट्ठी में लिखे हुए एक निशान को दिखाकर) इस निशान को तुम पहचानते हो या इसका मतलब तुम जानते हो?

बुड्ढा—(निशान देखकर) इसका मतलब तो आप जानिए या गोपालसिंह जानें मुझे क्या मालूम, यदि आप बतलाइए तो···

इन्द्रजीतसिंह—इसका मतलब यही है कि यह चिट्ठी बेशक सच्ची है, मगर इसमें जो कुछ लिखा है उस पर ध्यान न देना!

बुड्ढा—क्या गोपालसिंह ने आपसे कहा था कि हमारी लिखी जिस चिट्ठी पर

ऐसा निशान हो, उसकी लिखावट पर ध्यान न देना ?

इन्द्रजीतसिंह—हाँ, मुझसे उन्होंने ऐसा ही कहा था, इसलिए जाना जाता है कि यह चिट्ठी उन्होंने अपनी इच्छा से नहीं लिखी, बल्कि जबर्दस्ती किये जाने के सबब से लिखी है ।

बुड्ढा—नहीं-नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो सकता, आप भूलते हैं, उन्होंने आपसे इस निशान के बारे में कोई दूसरी बात कही होगी ।

कुमार—नहीं-नहीं, मैं ऐसा भुलक्कड़ नहीं हूँ । अच्छा आप ही बताइये, यह निशान उन्होंने क्यों बनाया ?

बुड्ढा—यह निशान उन्होंने इसलिए स्थिर किया है कि कोई ऐयार उनके दोस्तों को उनकी लिखावट का धोखा न दे सके । (कुछ सोचकर और हँसकर) मगर कुमार, तुम भी बड़े बुद्धिमान और मसखरे हो !

कुमार—कहो, अब मैं तुम्हारी दाढ़ी नोंच लूँ ?

आनन्दसिंह—(हँसकर और ताली बजाकर) या मैं नोंच लूँ ?

बुड्ढा—(हँसते हुए) अब आप लोग तकलीफ न कीजिए मैं स्वयं इस दाढ़ी को नोंचकर अलग फेंक देता हूँ !

इतना कह उस बुड्ढे ने अपने चेहरे से दाढ़ी अलग कर दी और इन्द्रजीतसिंह के गले से लिपट गया ।

पाठक, यह बुड्ढा वास्तव में राजा गोपालसिंह थे जो चाहते थे कि सूरत बदलकर इस तिलिस्म में कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह की मदद करें, मगर कुमार की चालाकियों ने उनकी हिम्मत लडने न दी और लाचार होकर उन्हें प्रकट होना ही पड़ा ।

कुँअर इन्द्रजीतसिंह-आनन्दसिंह दोनों भाई राजा गोपालसिंह से गले मिले और उनका हाथ पकड़े हुए नहर के किनारे गये जहाँ पत्थर की एक चट्टान पर बैठकर तीनों आदमी बातचीत करने लगे ।

3

अब हम रोहतासगढ़ का हाल लिखते हैं । जिस समय बाहर यह खबर आई कि लक्ष्मीदेवी की तबीयत ठीक हो गई और वे सब पर्दे के पास आकर बैठ गईं उस समय राजा वीरेन्द्रसिंह ने तेजसिंह की तरफ देखा और कहा, "लक्ष्मीदेवी से पूछना चाहिए कि उसकी तबीयत यह कलमदान देखने के साथ ही क्यों खराब हो गई ?"

इसके पहले कि तेजसिंह राजा वीरेन्द्रसिंह की बात का जवाब दें या उठने का इरादा करें, जिन्न ने कहा, "आश्चर्य है कि आप इसके लिए जल्दी करते हैं ।"

जिन्न की बात सुन राजा वीरेन्द्रसिंह मुस्कुराकर चुप हो रहे और भूतनाथ का

कागज पढ़ने के लिए तेजसिंह को इशारा किया। आज भूतनाथ का मुकदमा फैसला होने वाला है इसलिए भूतनाथ और कमला का रंज और तरद्‌दुद तो वाजिब ही है मगर इस समय भूतनाथ से सौगुनी बुरी हालत बलभद्रसिंह की हो रही है। चाहे सभी का ध्यान उस कागज के मुट्ठे की तरफ लगा हो जिसे अब तेजसिंह पढ़ना चाहते हैं मगर बलभद्र सिंह का खयाल किसी दूसरी तरफ है। उसके चेहरे पर बदहवासी और परेशानी छाई है और वह छिपी निगाहों से चारों तरफ इस तरह देख रहा है जैसे कोई मुजरिम निकल भागने के लिए रास्ता ढूंढ़ता हो, मगर भैरोंसिंह को मुस्तैदी के साथ अपने ऊपर तैनात पाकर सिर नीचा कर लेता है।

हम यह लिख चुके हैं कि तेजसिंह पहले उन चिट्ठियों को पढ़ गये जिनका हाल हमारे पाठकों को मालूम हो चुका है, अब तेजसिंह ने उसके आगे वाला पत्र पढ़ना आरंभ किया जिसमें यह लिखा हुआ था—

"मेरे प्यारे दोस्त,

आज मैं बलभद्रसिंह की जान ले ही चुका था मगर दारोगा साहब ने मुझे ऐसा करने से रोक दिया। मैंने सोचा था कि बलभद्रसिंह के खतम हो जाने पर लक्ष्मीदेवी कीं शादी रुक जायगी और उसके बदले में मुन्दर को भरती कर देने का अच्छा मौका मिलेगा मगर दारोगा साहब की यह राय न ठहरी। उन्होंने कहा कि गोपालसिंह को भी लक्ष्मी-देवी के साथ शादी करने की जिद हो गई है ऐसी अवस्था में यदि बलभद्रसिंह को तुम मार डालोगे तो राजा गोपालसिंह दूसरी जगह शादी करने के बदले कुछ दिन अटक जाना मुनासिब समझेंगे और शादी का दिन टल जाना अच्छा नहीं है, इससे यही उचित होगा कि बलभद्रसिंह को कुछ न कहा जाय, लक्ष्मीदेवी की माँ को मरे ग्यारह महीने हो ही चुके हैं, महीना-भर और बीत जाने दो, जो कुछ करना होगा शादी वाले दिन किया जायगा। शादी वाले दिन जो कुछ किया जायगा उसका बन्दोबस्त भी हो चुका है। उस दिन मौके पर लक्ष्मीदेवी गायब कर दी जायगी और उसकी जगह मुन्दर बैठा दी जायगी और उसके कुछ देर पहले ही बलभद्रसिंह ऐसी जगह पहुँचा दिया जायगा जहाँ से पुनः लौट आने की आशा नहीं है, बस, फिर किसी तरह का खटका न रहेगा। यह सब तो हुआ मगर आपने अभी तक फुटकर खर्च के लिए रुपए न भेजे। जिस तरह हो सके उस तरह बन्दोबस्त कीजिए और रुपए भेजिये, नहीं तो सब काम चौपट हो जायेगा, आगे आपको अख्तियार है।

वही भूतनाथ"

वीरेन्द्रसिंह—(भूतनाथ की तरफ देख के) क्यों भूतनाथ, यह चिट्ठी तुम्हारे हाथ की लिखी हुई है?

भूतनाथ—(हाथ जोड़कर) जी हाँ महाराज, यह कागज मेरे हाथ का लिखा हुआ है।

वीरेन्द्रसिंह—तुमने यह पत्र हेलासिंह के पास भेजा था?

भूतनाथ—जी नहीं ।

वीरेन्द्रसिंह—तुम अभी कह चुके हो कि यह पत्र मेरे हाथ का लिखा है और फिर कहते हो कि नहीं !

भूतनाथ --जी मैं यह नहीं कहता कि यह कागज मेरे हाथ का लिखा हुआ नहीं है बल्कि मैं यह कहता हूँ कि यह पत्र हेलासिंह के पास मैंने नहीं भेजा था ।

वीरेन्द्रसिंह—तब किसने भेजा था ?

भूतनाथ—(बलभद्रसिंह की तरफ इशारा करके) इसने भेजा था और इसी ने अपना नाम भूतनाथ रक्खा था क्योंकि यह वास्तव में लक्ष्मीदेवी का बाप बलभद्रसिंह नहीं है ।

वीरेन्द्रसिंह—अगर यह चिट्ठी (बलभद्रसिंह की तरफ इशारा करके) इन्होंने हेलासिंह के पास भेजी थी तो फिर तुमने इसे अपने हाथ से क्यों लिखा ? क्या तुम इनके नौकर या मुहर्रिर थे ?

भूतनाथ—जी नहीं, इसका कुछ दूसरा ही सबब है, मगर इसके पहले कि मैं आपकी बातों का पूरा-पूरा जवाब दूँ, इस नकली बलभद्रसिंह से दो-चार बातें पूछने की आज्ञा चाहता हूँ ।

वीरेन्द्रसिंह—क्या हर्ज है, जो कुछ पूछना चाहते हो, पूछो ।

भूतनाथ—(बलभद्रसिंह की तरफ देख के) इस कागज के मुट्ठे को तुम शुरू से आखिर तक पढ़ चुके हो या नहीं ?

बलभद्रसिंह - हाँ, पढ़ चुका हूँ ।

भूतनाथ—जो चिट्ठी अभी पढ़ी गई है इसके आगे वाली चिट्ठियाँ जो अभी पढ़ी नहीं गईं, तुम्हारे इस मुकदमे से कुछ सम्बन्ध रखती हैं ?

बलभद्र—नहीं ।

भूतनाथ—सो क्यों ?

बलभद्र—आगे की चिट्ठियों का मतलब हमारी समझ में नहीं आता ।

भूतनाथ—तो अब आगे वाली चिट्ठियों को पढ़ने की कोई आवश्यकता न रही ।

बलभद्र—तेरा कसूर साबित करने के लिए क्या इतनी चिट्ठियाँ कम हैं जो पढ़ी जा चुकी हैं ?

भूतनाथ—बहुत हैं बहुत हैं, अच्छा तो अब मैं यह पूछता हूँ कि लक्ष्मीदेवी के शादी के दिन तुम कैद कर लिए गए थे ?

बलभद्रसिंह—हाँ ।

भूतनाथ—उस समय बालासिंह कहाँ था और अब बालासिंह कहाँ है ?

भूतनाथ के इस सवाल ने बलभद्रसिंह की अवस्था फिर बदल दी । वह और भी घबराया-सा होकर बोला, "इन सब बातों के पूछने से क्या फायदा निकलेगा ?" इतना कहकर उसने दारोगा और मायारानी की तरफ देखा । मालूम होता था कि बालासिंह के नाम ने मायारानी और दारोगा पर भी अपना असर किया जो मायारानी के बगल ही में एक खम्भे के साथ बँधा हुआ था । वीरेन्द्रसिंह और उनके बुद्धिमान ऐयारों ने भी

बलभद्र और दारोगा तथा मायारानी के चेहरे और उन तीनों की इस देखा-देखी पर गौर किया और वीरेन्द्रसिंह ने मुस्कुराकर जिन्न की तरफ देखा।

जिन्न—मैं समझता हूँ कि इस बलभद्रसिंह के साथ अब आपको बेमुरौवती करनी होगी।

वीरेन्द्रसिंह—बेशक ! मगर क्या आप कह सकते हैं कि यह मुकदमा आज फैसला हो जायगा ?

जिन्न—नहीं, यह मुकदमा इस लायक नहीं है कि फैसला हो जाय। यदि आप इस मुकदमे की कलई अच्छी तरह खोलना चाहते हैं तो इस समय इसे रोक दीजिए और भूतनाथ को छोड़कर आज्ञा दीजिए कि महीने-भर के अन्दर जहाँ से हो सके वहाँ से असली बलभद्रसिंह को खोज लावे नहीं तो उसके लिए बेहतर न होगा।

वीरेन्द्रसिंह—भूतनाथ को किसकी जमानत पर छोड़ दिया जाय ?

जिन्न—मेरी ज़मानत पर।

वीरेन्द्रसिंह—जब आप ऐसा कहते हैं तो हमें कोई उज्र नहीं है यदि लक्ष्मीदेवी और लाड़िली तथा कमलिनी भी इसे स्वीकार करें।

जिन्न—उन सब को भी कोई उज्र नहीं होना चाहिए।

इतने में पर्दे के अन्दर से कमलिनी ने कहा, "हम लोगों को कोई उज्र न होगा, हमारे महाराज को अधिकार है जो चाहें करें !"

वीरेन्द्रसिंह—(जिन्न की तरफ देख के) तो फिर कोई चिन्ता नहीं, हम आपकी बात मान सकते हैं। (भूतनाथ से) अच्छा तुम यह तो बताओ कि जब वह चिट्ठी तुम्हारे ही हाथ की लिखी हुई है तो तुम इसे हेलासिंह के पास भेजने से क्यों इनकार करते हो ?

भूतनाथ—इसका हाल भी उसी समय मालूम हो जायगा जब मैं असली बलभद्रसिंह को छुड़ाकर ले आऊँगा।

जिन्न—आप इस समय इस मुकदमे को रोक ही दीजिए, जल्दी न कीजिए, क्योंकि इसमें अभी तरह-तरह के गुल खिलने वाले हैं।

बलभद्र—नहीं-नहीं, भूतनाथ को छोड़ना उचित नहीं होगा, यह बड़ा भारी बेईमान जालियाँ धूर्त और बदमाश है। यदि इस समय यह छूटकर चल देगा, तो फिर कदापि न आवेगा।

तेजसिंह—(घुड़ककर बलभद्र से) बस, चुप रहो, तुमसे इस बारे में राय नहीं माँगी जाती।

बलभद्रसिंह—(खड़े होकर) तो फिर मैं जाता हूँ, जिस जगह ऐसा अन्याय हो वहाँ ठहरना भले आदमियों का काम नहीं।

बलभद्रसिंह उठकर खड़ा हुआ ही था कि भैरोंसिंह ने उसकी कलाई पकड़ ली और कहा, "ठहरिये, आप भले आदमी हैं, आपको क्रोध न करना चाहिए, अगर ऐसा कीजिएगा तो भलमनसी में बट्टा लग जायगा। यदि आपको हम लोगों की सोहबत अच्छी नहीं मालूम पड़ती तो आप मायारानी और दारोगा की सोहबत में रक्खे जायेंगे,

जिसमें आप खुश रहें हम लोग वही करेंगे।"

भैरोंसिह ने बलभद्रसिंह की कलाई पकड़ के कोई नस ऐसी दबाई कि वह बेताब हो गया, उसे ऐसा मालूम हुआ मानो उसके तमाम बदन की ताकत किसी ने खींच ली हो, और वह बिना कुछ बोले इस तरह बैठ गया जैसे कोई गिर पड़ता है। उसकी यह अवस्था देख सभी ने मुस्करा दिया।

जिन्न—(वीरेन्द्रसिंह से) अब मैं आपसे और तेजसिंहजी से दो-चार बातें एकान्त में कहना चाहता हूँ।

वीरेन्द्रसिंह—हमारी भी यही इच्छा है।

इतना कहकर वीरेन्द्रसिंह और तेजसिंह देवीसिंह से कुछ इशारा करके उठ खड़े हुए और दूसरे कमर की ओर चले गये।

राजा वीरेन्द्रसिंह, तेजसिंह और जिन्न आधे घण्टे तक एकान्त में बैठकर बातचीत करते रहे। सभी को जिन्न के विषय में जितना आश्चर्य था उतना ही इस बात का निश्चय भी हो गया था कि जिन्न का हाल राजा वीरेन्द्रसिंह, तेजसिंह और भैरोंसिह को मालूम हो गया है परन्तु किसी से न कहेंगे और न कोई उनसे पूछ सकेगा।

आधे घण्टे के बाद तीनों आदमी कमरे के बाहर निकलकर अपने-अपने ठिकाने आ पहुँचे और तेजसिंह ने देवीसिंह की तरफ देख के कहा, "भूतनाथ को छोड़ देने की आज्ञा हुई है। तुम भूतनाथ और जिन्न के साथ जाओ और हिफाजत के साथ पहाड़ के नीचे पहुँचाकर लौट आओ।"

इतना सुनते ही देवीसिंह ने भूतनाथ की हथकड़ी-बेड़ी खोल दी और उसको तथा जिन्न को साथ लिये वहाँ से बाहर चले गये। इसके बाद तेजसिंह पर्दे के अन्दर गये और लक्ष्मीदेवी, कमलिनी तथा लाड़िली को कुछ समझा-बुझाकर बाहर निकल आए। बलभद्रसिंह को खातिरदारी और चौकसी के साथ हिफाजत में रखने के लिए भैरोंसिह के हवाले किया गया होगा और बाकी कैदियों को कैदखाने में पहुँचाने की आज्ञा लेकर राजा वीरेन्द्रसिंह बाहर चले आए तथा अदालत बरखास्त कर दी गई।

4

जब जिन्न और भूतनाथ को पहाड़ के नीचे पहुँचाकर देवीसिंह चले गए तो वे दोनों आपस में नीचे लिखी बातें करते हुए पूरब की तरफ रवाना हुए—

भूतनाथ—निःसन्देह आपने मुझ पर बड़ी कृपा की, यदि आज आप मेरे सहायक न होते तो मैं तबाह हो चुका था।

जिन्न—सो सब तो ठीक है, मगर देखो, आज हमने तुमको अपनी जमानत पर इसलिए छुड़ा दिया है कि तुम जिस तरह हो, असली बलभद्रसिंह को खोज निकालो और उन्हें अपने साथ लेकर राजा वीरेन्द्रसिंह के पास हाजिर हो जाओ, लेकिन ऐसा न करना

कि बलभद्रसिंह का पता लगाने के बदले तुम स्वयं अन्तर्धान हो जाओ और हमको राजा वीरेन्द्रसिंह के आगे झूठा करो।

भूतनाथ—नहीं-नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो सकता। यदि मुझे नेकनामी के साथ राजा वीरेन्द्रसिंह का ऐयार बनने का शौक न होता तो मैं इन बखेड़ों में क्यों पड़ता? बिना कुछ पाये उनका इतना काम क्यों करता? रुपये की मुझे कुछ परवाह न थी, मैं किसी दूसरे देश में चला जाता और खुशी के साथ जिन्दगी बिताता। मगर नहीं, मुझे राजा वीरेन्द्रसिंह के साथ रहने का बड़ा उत्साह है और जिस दिन से राजा गोपालसिंह का पता लगा है, उसी दिन से मैं उनके दुश्मनों की खोज में लगा हूँ और बहुत सी बातों का पता लगा भी चुका हूँ।

जिन्न—(बात काटकर)तो क्या तुमको इस बात की खबर न थी कि मायारानी ने गोपालसिंह को कैद करके किसी गुप्त स्थान में रख दिया है?

भूतनाथ—नहीं, बिल्कुल नहीं।

जिन्न—और इस बात की भी खबर न थी कि मायारानी वास्तव में लक्ष्मीदेवी नहीं है?

भूतनाथ—इस बात को मैं अच्छी तरह जानता था।

जिन्न—तो तुमने गोपालसिंह के आदमियों को इसकी खबर क्यों नहीं की?

भूतनाथ—मैंने इसलिए मायारानी का असल हाल किसी से नहीं कहा कि मुझे राजा गोपालसिंह के मरने का पूरा-पूरा विश्वास हो चुका था और उसके पहले मैं रणधीर-सिंहजी के यहाँ नौकर था, तब मुझे दूसरे राज्य के भले-बुरे कामों से मतलब ही क्या था?

जिन्न—तुमसे और हेलासिंह से जब दोस्ती थी तब तुम किसके नौकर थे?

भूतनाथ—मुझसे और हेलासिंह से कभी दोस्ती थी ही नहीं! मैं तो आपसे कैद-खाने के अन्दर ही कह चुका हूँ कि राजा गोपालसिंह के छूटने के बाद मैंने उन कागजों का पता लगाया है जो इस समय मेरे ही साथ दुश्मनी कर रहे हैं और···

जिन्न—हाँ-हाँ, जो कुछ तुमने कहा था मुझे बखूबी याद है। अच्छा, अब यह बताओ कि इस समय तुम कहाँ जाओगे और क्या करोगे?

भूतनाथ—मैं खुद नहीं जानता कि कहाँ जाऊँगा और क्या करूँगा, बल्कि यह बात मैं आप ही से पूछने वाला था।

जिन्न—(ताज्जुब से) क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि बलभद्रसिंह को किसने कैद किया और अब वह कहाँ है?

भूतनाथ—इतना तो मैं जानता हूँ कि बलभद्रसिंह को मायारानी के दारोगा ने किया था मगर यह नहीं मालूम कि इस समय वह कहाँ है।

जिन्न—अगर ऐसा ही है तो कमलिनी के तिलिस्मी मकान के बाहर तुमने तेजसिंह से क्यों कहा था कि मेरे साथ कोई चले तो मैं असली बलभद्रसिंह को दिखा दूँगा? इस बात से तो तुम खुद झूठे साबित होते हो!

भूतनाथ—जी हाँ, बेशक मैंने नादानी की जो ऐसा कहा, मगर मुझे इस बात का निश्चय हो चुका है कि बलभद्रसिंह अभी तक जीता है और उसे तिलिस्मी दारोगा ने

कैद कर लिया था ।

जिन्न—इसी से तो मैं पूछता हूँ कि अब तुम कहाँ जाओगे और क्या करोगे ?

भूतनाथ—अगर वह दारोगा मेरे काबू में होता तब तो मैं सहज ही में पता लगा लेता मगर अब मुझे इसके लिए बहुत कुछ उद्योग करना होगा, तथापि इस समय मैं जमानिया में राजा गोपालसिंह के पास जाता हूँ, यदि उन्होंने मेरी मदद की तो अपना काम बहुत जल्द कर सकूँगा, मगर आशा नहीं कि वे मेरी मदद करेंगे, क्योंकि जब वे मेरे मुकदमे का हाल सुनेंगे तो जरूर मुझको नालायक बनायेंगे, (कुछ सोचकर) अभी तक यह भी मुझे मालूम नहीं हुआ कि आप कौन हैं, अगर जानता तो कहता कि राजा गोपालसिंह के नाम की आप एक चिट्ठी लिख दें ।

जिन्न—मेरा परिचय तुम्हें सिवाय इसके और कुछ नहीं मिल सकता कि मैं जिन्न हूँ और हर जगह पहुँचने की ताकत रखता हूँ । खैर, तुम राजा गोपालसिंह के पास जाओ और उनसे मदद माँगो, मैं तुम्हें एक सिफारिशी चिट्ठी देता हूँ, तुम्हारे पास कागज-कलम-दवात है ?

भूतनाथ—जी हाँ, आपकी कृपा से मुझे मेरी ऐयारी का बटुआ मिल गया है और उसमें सब सामान मौजूद है ।

इतना कहकर भूतनाथ रुक गया और एक पेड़ के नीचे बैठने के लिए जिन्न को कहा मगर जिन्न ने ऐसा करने से इनकार किया और आगे की तरफ इशारा करके कहा, "उस पेड़ के नीचे चलकर हम ठहरेंगे क्योंकि वहाँ हमारा घोड़ा मौजूद है ।"

थोड़ी ही देर में दोनों आदमी उस पेड़ के नीचे जा पहुँचे । भूतनाथ ने देखा कि कसे-कसाए दो उम्दा घोड़े उस पेड़ की जड़ के साथ बागडोर के सहारे बँधे हैं और जिन्न ही की सूरत-शक्ल, चाल-ढाल का एक आदमी उनके पास टहल रहा है जो जिन्न के वहाँ पहुँचते ही सलाम करके एक किनारे खड़ा हो गया । जिन्न ने भूतनाथ से कलम-दवात और कागज लेकर कुछ लिखा और भूतनाथ को देकर कहा, "यह चिट्ठी राजा गोपालसिंह को देना, बस अब तुम जाओ ।" इतना कहकर जिन्न एक घोड़े पर सवार हो गया, जिन्न ही की सूरत का दूसरा आदमी जो वहाँ मौजूद था, दूसरे घोड़े पर सवार हो गया और भूतनाथ के देखते-ही-देखते दूर जाकर वे दोनों उसकी नजरों से गायब हो गये । भूतनाथ तरद्दुद और परेशानी के सबब से उदास और सुस्त हो गया था, इसलिए थोड़ी देर तक आराम करने की नीयत से उसी पेड़ के नीचे बैठ जाने के बाद उस पत्र को पढ़ने लगा जो जिन्न ने राजा के लिए लिख दिया था मगर हजार कोशिश करने पर भी उससे वह चिट्ठी पढ़ी न गई क्योंकि सिवाय टेढ़ी-मेढ़ी और पेचीली लकीरों के किसी साफ अक्षर का उसके अन्दर भूतनाथ को पता ही न लगा ।

आधे घण्टे तक आराम करने के बाद भूतनाथ उठ खड़ा हुआ और 'लामा घाटी' की तरफ़ रवाना हुआ ।

5

भूतनाथ अब बिल्कुल आजाद हो गया। इस समय उसकी ताकत उतनी ही है जितनी आज के दस दिन पहले थी और जितने आज के दस दिन पहले उसके ताबेदार थे उतने ही आज भी हैं। पाठक जानते ही हैं कि भूतनाथ अकेला है बल्कि बहुत से आदमी उसके नौकर भी हैं जो इधर-उधर घूम-फिरकर उसका काम किया करते हैं। भूतनाथ ने जब से नकली बलभद्रसिंह से यह सुना कि 'उसकी बहुत ही प्यारी चीज मेरे कब्जे में है जिसे वह लामा घाटी[1] में छोड़ आया था' तब से वह और भी परेशान हो गया था। वह बहुत प्यारी चीज क्या थी ? बस, वही उसकी स्त्री जिसके पेट से नानक पैदा हुआ था और जिसे उसने नागर की मेहरबानी से पुनः पा लिया था। वास्तव में भूतनाथ अपनी उस प्यारी स्त्री को लामाघाटी में ही छोड़ आया था।

भूतनाथ इस समय जमानिया जाने के बदले लामाघाटी ही की तरफ रवाना हुआ और तीसरे दिन संध्या के समय उस घाटी में जा पहुँचा जिसे वह अपना घर समझता था।

यहाँ पर हम पाठकों के दिल में लामाघाटी की तस्वीर खींचकर भूतनाथ की ताकत और उसके स्वभाव या खयाल का कुछ अन्दाज करा देना मुनासिब समझते हैं। लामाघाटी में किसी अनजान आदमी का जाना बहुत कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव था। ध्यानशक्ति की सहायता से यदि आप वहाँ जायें तो सबके पहले एक छोटी-सी पहाड़ी मिलेगी जिस पर चढ़ने के एक बारीक पगडण्डी दिखाई देगी। जब उस पगडण्डी की राह से पहाड़ी के ऊपर चढ़ जायेंगे तो तीन तरफ मैदान और पश्चिम तरफ केवल आधा कोस की दूरी पर एक बहुत ऊँचा पहाड़ मिलेगा। उसके पास जाने पर मालूम होगा कि ऊपर चढ़ने के लिए कोई रास्ता या पगडण्डी नहीं है और न पहाड़ के दूसरी तरफ जाने का ही मौका है। परन्तु खोजने की कोई आवश्यकता नहीं, आप उस पहाड़ी के नीचे पहुँचकर दाहिनी तरफ घूम जाइये और जब तक एक छोटा-सा झरना आपको न मिले बराबर चले ही जाइये। वह दो-तीन हाथ चौड़ा झरना आपका रास्ता काट के बहता होगा, उसे लाँघने की कोई आवश्यकता नहीं। आप बाईं तरफ आँख उठाकर देखेंगे तो बीस-पच्चीस हाथ की ऊँचाई पर एक छोटी-सी गुफा दिखाई देगी, आप बेधड़क उस गुफा में चले जाइये जिसके अन्दर बिल्कुल अँधेरा होगा और बनिस्बत बाहर के अन्दर गर्मी कुछ ज्यादा होगी। कोस भर तक बराबर उस गुफा के अन्दर-ही-अन्दर चलने के बाद जब आप बाहर निकलेंगे तो एक हरा-भरा छोटा-सा मैदान नजर आएगा। वह मैदान छोटे-छोटे जंगली फलों और लताओं से ऐसा भरा होगा कि दूर से देखने वालों को तो आनन्द मगर उसके अन्दर जाने वाले के लिए आफत समझिये। उसमें जाने वाला तीस-चालीस कदम मुश्किल से जाने के बाद इस तरह फँस जायगा कि निकलना कठिन होगा। उस मैदान के किनारे-किनारे दाहिनी तरफ और फिर बाईं तरफ घूम जाना होगा और जब आप बाहर पश्चिम

---

1. 'लामा घाटी' एक पहाड़ी स्थान का नाम है।

और उत्तर के कोने में पहुँचेंगे तो एक गुफा मिलेगी। आप उस गुफा के अंदर चले जाइये। लगभग दो-सौ कदम जाने के बाद जब आप बाहर निकलेंगे तो अनपढ़ और मोटे-मोटे पत्थर के ढोकों से बनी हुई दीवारें मिलेंगी जिसके बीचोबीच में एक बहुत बड़ा लकड़ी का दरवाजा लगा है। यदि दरवाजा खुला है तो आप दीवार के उस पार चले जाइये और एक पुरानी मगर बहुत बड़ी इमारत पर नजर डालिए। यद्यपि यह मकान बहुत पुराना है और कई जगह से टूट भी गया है तथापि जो कुछ बचा है बहुत मजबूत और पचासों बरसात सहने योग्य है, जिसमें अब भी कई बड़े-बड़े दालान और कोठरियाँ मौजूद हैं और उसी मकान या स्थान का नाम 'लामाघाटी' है। भूतनाथ के आदमी या नौकर-चाकर इसी मकान में रहते हैं और अपनी स्त्री को भी वह इसी जगह छोड़ गया था। उसके सिपाही जो बड़े ही दिमागदार, बहुत कट्टर और साथ ही इसके ईमानदार भी थे, गिनती में पचास से कम न थे और भूतनाथ के खजाने को हिफाजत बड़ी मुस्तैदी और नेकनीयती के साथ करते थे तथा बड़े-बड़े कठिन कामों को पूरा करने के लिए भूतनाथ की आज्ञा पाते ही मुस्तैद हो जाते थे। उस मकान के चारों तरफ बहुत बड़ा मैदान छोटे-छोटे जंगली खूबसूरत पौधों से हरा-भरा बहुत ही खूबसूरत मालूम पड़ता था और उसके बाद भी चारों तरफ की पहाड़ियों के ऊपर जहाँ तक निगाह काम कर सकती थी छोटे-छोटे खूबसूरत पेड़-पौधे दिखाई पड़ते थे।

भूतनाथ इसी लामाघाटी में पहुँचा। पहुँचने के साथ ही चारों तरफ से उसके आदमियों ने खुशी-खुशी उसे घेर लिया और कुशल-मंगल पूछने लगे। भूतनाथ सभी से हँसकर मिला और 'हाँ, सब ठीक है, मेरा आना जिस लिये हुआ उसका हाल जरा ठहरकर कहूँगा' इत्यादि कहता हुआ अपनी स्त्री के पास चला गया जो बहुत दिनों से उसे देखे बिना बेताब हो रही थी। हँसी-खुशी से मिलने के बाद दोनों में यों बातचीत होने लगी—

स्त्री—तुम बहुत दुबले और उदास मालूम पड़ते हो !

भूतनाथ—हाँ, इधर कई दिन मुसीबत ही में कटे हैं।

स्त्री—(चौंककर) सो क्यों, कुशल तो है ?

भूतनाथ—कुशल क्या, जान बच गई यही गनीमत है।

स्त्री—सो क्यों ? तुम्हारा भेद खुल गया ?

भूतनाथ—(ऊँची साँस लेकर) हाँ, कुछ खुल ही गया।

स्त्री—(हाथ मलकर) हाय-हाय, यह तो बड़ा ही गजब हुआ !

भूतनाथ—बेशक गजब हो गया।

स्त्री—फिर तुम बचकर कैसे निकल आये ?

भूतनाथ—ईश्वर ने एक सहायक भेज दिया जिसने अपनी जमानत पर महीने भर के लिए मुझे छोड़ दिया।

स्त्र—तो क्या महीने भर के बाद तुम्हें फिर हाजिर होना पड़ेगा ?

भूतनाथ—हाँ।

स्त्री—किसके आगे ?

भूतनाथ—राजा वीरेन्द्रसिंह के आगे।

स्त्री—राजा वीरेन्द्रसिंह से क्या सरोकार ? तुमने उनका तो कभी कुछ बिगाड़ा नहीं था।

भूतनाथ—इतनी ही तो कुशल है कि वह दूसरी जगह जाने के बदले सीधा लक्ष्मीदेवी के पास चला गया।

स्त्री—(चौंककर) हैं, क्या लक्ष्मीदेवी जीती है ?

भूतनाथ—हाँ जीती है। मुझे इस बात की खबर कुछ भी न थी कि कमलिनी के साथ जो तारा रहती है, वह वास्तव में लक्ष्मीदेवी है और बालासिंह को यह बात मालूम हो गई थी, इसलिए वह सीधा लक्ष्मीदेवी के पास चला गया। यदि मुझे पहले लक्ष्मीदेवी की खबर लग गई होती तो आज मैं राजा वीरेन्द्रसिंह के आगे अपनी तारीफ सुनता होता।

स्त्री—तुम तो कहते थे कि बालासिंह मर गया।

भूतनाथ—हाँ, मैं ऐसा जानता था।

स्त्री—उसी ने तुम्हारी सन्दूकड़ी चुराई थी ?

भूतनाथ—हाँ, जब सन्दूकड़ी उसने चुराई थी, तभी मैं अधमरा हो चुका था। मगर यह सुनकर कि वह मर गया मैं निश्चिन्त भी हो गया था, परन्तु जिस समय वह यकायक मेरे सामने आ खड़ा हुआ मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ। उसके हाथ में वह गठरी उसी कपड़े में बँधी उसी तरह लटक रही थी जैसी तुम्हारे सन्दूक से चोरी की गई थी और जिसे देखने के साथ ही मैं पहचान गया। ओफ, मैं नहीं कह सकता कि उस समय मेरी क्या हालत थी। मेरे होश-हवास दुरुस्त न थे और मैं अपने को जिन्दा नहीं समझता था। इस बात के दो-चार दिन पहले जब मैं राजा गोपालसिंह के साथ किशोरी और कामिनी को कमलिनी के मकान में पहुँचाने गया था तो उसी समय तारा पर मुझे शक हो गया मगर अपनी भलाई का कोई दूसरा ही रास्ता सोचकर मैं उस समय चुप रहा परन्तु जिस समय बालासिंह से यकायक मुलाकात हो गई और उसने उस गठरी की तरफ इशारा करके मुझसे कहा कि इसमें सुहागिन तारा की किस्मत बन्द है उसी समय मुझे विश्वास हो गया कि तारा वास्तय में लक्ष्मीदेवी है और वह कागज का मुट्ठा भी इसी ने चुरा लिया है जिसे मैंने बड़ी मेहनत से बटोरकर नकल करके रखा था। मैं उस समय बदहवास हो गया और अफसोस करने लगा कि जिन कागजों से मैं फायदा उठाने वाला था वही अब मुझे चौपट करेंगे क्योंकि वह उन्हीं कागजों से मुझी को दोषी ठहराने का उद्योग करेगा। यदि वह सन्दूकड़ी उसके पास न होती तो मैं हताश न होकर और कोई बन्दोबस्त करता परन्तु उस सन्दूकड़ी के खयाल ही से मैं पागल हो गया और उस समय तो मैं बिलकुल ही मुर्दा हो गया जब उसकी बेगम पर मेरी निगाह पड़ी।

स्त्री—(चौंककर) क्या बेगम भी जीती है ?

भूतनाथ—हाँ, उस समय वह उसके साथ थी और थोड़ी ही दूर पर एक झाड़ी के अन्दर छिपी हुई थी।

स्त्री—यह बड़ा ही अंधेर हुआ, अगर तुम्हें मालूम होता कि वह जीती है तो तुम अपना नाम भूतनाथ काहे को रखते !

भूतनाथ--नहीं, अगर मुझे उसके मरने में कुछ भी शक होता तो मैं अपना नाम भूतनाथ न रखता। केवल इतना ही नहीं, उसने तो मुझे उस समय एक ऐसी बात कही जिससे मेरी बची-बचाई जान भी निकल गई और मैं ऐसा कमजोर हो गया कि उसके साथ लड़ने योग्य भी न रहा।

स्त्री—सो क्या ?

भूतनाथ—उसने तुम्हारी तरफ इशारा करके मुझसे कहा कि 'तुम्हारी बहुत ही प्यारी चीज मेरे कब्जे में है जो तुम्हारे बाद बड़ी तकलीफ में पड़ जायेगी और जिसे तुम लामाघाटी में छोड़ आये हो' और यही सबब है कि छूटने के साथ ही सबसे पहले मैं इस तरफ आया, मगर ईश्वर को धन्यवाद है कि तुम उस शैतान के हाथ से बची रहीं और तुम्हें मैं इस समय राजी-खुशी देख रहा हूँ।

स्त्री—उसकी क्या मजाल कि यहाँ आ सके, उसे स्वप्न में भी यहाँ का रास्ता मालूम नहीं हो सकता।

भूतनाथ—सो तो मैं समझता हूँ। परन्तु 'लामाघाटी' का नाम लेने से मुझे उसकी बात पर विश्वास हो गया, मैंने सोचा, यदि वह लामाघाटी तक न गया होता तो लामा-घाटी का नाम भी उसे मालूम न होता और···

स्त्री—नहीं-नहीं, लामाघाटी का नाम किसी दूसरे सबब से उसे मालूम हुआ होगा।

भूतनाथ—बेशक ऐसा ही है, खैर तुम्हारी तरफ से तो मैं निश्चिंत हो गया मगर अब अपनी जान बचाने के लिए मुझे असली बलभद्रसिंह का पता लगाना चाहिए।

स्त्री—अब तुम अपना खुलासा हाल उस दिन से कह जाओ जिस दिन से तुम मुझसे जुदा हुए हो।

भूतनाथ ने अपना कुल हाल अपनी स्त्री को कह सुनाया और इसके बाद थोड़ी देर तक बातचीत करके बाहर निकल आया। एक दालान में जिसमें सुन्दर बिछावन बिछा हुआ था और रोशनी बखूबी हो रही थी उसके सब संगी-साथी या सिपाही बैठे उसके आने की राह देख रहे थे। भूतनाथ के आते ही वे सब अदब के तौर पर उठ खड़े हुए तथा बैठने के बाद उसकी आज्ञा पाकर बैठ गये और बातचीत होने लगी।

भूतनाथ—कहो, तुम लोग अच्छे तो हो ?

सब—जी, आपके अनुग्रह से हम लोग अच्छे हैं।

भूतनाथ—ऐसा ही चाहिए।

एक—आप इतने दुबले और उदास क्यों हो रहे हैं ?

भूतनाथ—मैं एक भारी आफत में फँस गया था बल्कि अभी भी उसमें फँसा ही हुआ हूँ।

सब—सो क्या, सो क्या ?

भूतनाथ—मैं तुमसे सब-कुछ कहता हूँ क्योंकि तुम लोग मेरे खैरख्वाह हो और मुझे तुम लोगों का बहुत सहारा रहता है

सब—हम लोग आपके ताबेदार हैं और एक अपने इशारे पर जान देने के लिए

तैयार हैं, औरों की बात दूर, खास राजा वीरेन्द्रसिंह से भिड़ जाने की हिम्मत रखते हैं।

भूतनाथ—बेशक ऐसा ही है और इसीलिए मैं कोई बात तुम लोगों से नहीं छिपाता।

इतना कह कर भूतनाथ ने अपना हाल कहना आरम्भ किया। जो कुछ अपनी स्त्री से कह चुका था वह तथा और भी बहुत-सी बातें उसने उन लोगों से कहीं और इसके बाद कई बहादुरों को कई तरह के काम करने की आज्ञा दे फिर अपनी स्त्री के पास चला गया।

दूसरे दिन सवेरे जब भूतनाथ बाहर आया तब मालूम हुआ कि उसके बहादुर सिपाहियों में से चालीस आदमी उसकी आज्ञानुसार 'लामाघाटी' के बाहर जा चुके हैं।

भूतनाथ भी वहाँ से रवाना होने के लिए तैयार ही था और अपनी स्त्री से बिदा होकर बाहर निकला था, अस्तु वह भी एक आदमी को लेकर चल पड़ा और दो ही घण्टे बाद 'लामाघाटी' के बाहर मैदान में जमानिया की तरफ जाता हुआ दिखलाई देने लगा।

6

जो कुछ हम ऊपर लिख आये हैं, उसके कई दिन बाद जमानिया में दोपहर दिन के समय जब राजा गोपालसिंह भोजन इत्यादि से छुट्टी पाकर अपने कमरे में चारपाई पर लेटे हुए एक-एक करके बहुत-सी चिट्ठियों को पढ़-पढ़कर कुछ सोच रहे थे उसी समय चोबदार ने भूतनाथ के आने की इत्तिला की। गोपालसिंह ने भूतनाथ को अपने सामने हाजिर करने की आज्ञा दी। भूतनाथ हाजिर हुआ और सलाम करके चुपचाप खड़ा हो गया। उस समय वहाँ पर इन दोनों के सिवाय और कोई न था।

गोपालसिंह—कहो भूतनाथ ! अच्छे तो हो, इतने दिनों तक कहाँ थे और क्या करते थे ?

भूतनाथ—आपसे बिदा होकर मैं बड़ी मुसीबत में पड़ गया।

गोपालसिंह—सो क्या !

भूतनाथ—कमलिनी के मकान की बर्बादी का हाल तो आपको मालूम हुआ ही होगा।

गोपालसिंह—हाँ मैं सुन चुका हूँ कि कमलिनी के मकान को दुश्मनों ने उजाड़ दिया और उसके यहाँ जो कैदी थे वे भाग गये।

भूतनाथ– ठीक है, तो क्या आप किशोरी, कामिनी और तारा का हाल भी सुन चुके हैं जो उस मकान में थीं ?

गोपालसिंह—उनका खुलासा हाल तो मुझे मालूम नहीं हुआ मगर इतना सुन चुका हूँ कि अब वे सब कमलिनी के साथ रोहतासगढ़ में जा पहुँची हैं।

भूतनाथ—ठीक है मगर उन पर कैसी मुसीबत आ पड़ी थी उसका हाल आपको शायद मालूम नहीं।

गोपालसिंह—नहीं, बल्कि उसका खुलासा हाल दरियाफ्त करने के लिए मैंने एक आदमी रोहतासगढ़ में ज्योतिषीजी के पास भेजा है और एक पत्र भी लिखा है मगर अभी तक जवाब नहीं आया। तो क्या कमलिनी के साथ तुम भी वहाँ गये थे ?

भूतनाथ—जी हाँ, मैं कमलिनी के साथ था।

गोपालसिंह—तब तो मुझे सब खुलासा हाल तुम्हारी ही जुबानी मालूम हो सकता है, अच्छा कहो कि क्या-क्या हुआ ?

भूतनाथ—मैं सब हाल आपसे कहता हूँ और उसी के बीच में अपनी तबाही और बर्बादी का हाल भी कहता हूँ।

इतना कह भूतनाथ ने किशोरी, कामिनी, लक्ष्मीदेवी, भगवनिया, श्यामसुन्दरसिंह और बलभद्रसिंह का कुल हाल जो ऊपर लिखा जा चुका है कहा और इसके बाद रोहतासगढ़ किले के अन्दर जो कुछ हुआ था और कृष्ण जिन्न ने जो कुछ काम किया था वह सब भी कहा।

पलंग पर पड़े राजा गोपालसिंह, भूतनाथ की कुल बातें सुन गए और जब वह चुप हो गया तो उठ कर एक ऊँची गद्दी पर जा बैठे जो पलंग के पास ही बिछी हुई थी। थोड़ी देर तक कुछ सोचने के बाद वे बोले, "हाँ, तो इस ढंग से मालूम हुआ कि तारा वास्तव में लक्ष्मीदेवी है।"

भूतनाथ—जी हाँ, मुझे इस बात की कुछ भी खबर न थी।

गोपालसिंह—यह हाल बड़ा ही दिलचस्प है, अच्छा कृष्ण जिन्न की चिट्ठी मुझे दो, मैं देखूँ।

भूतनाथ—(चिट्ठी देकर) आशा है कि इसमें कोई बात मेरे विरुद्ध लिखी हुई न होगी।

गोपालसिंह—(चिट्ठी देखकर) नहीं इसमें तो तुम्हारी सिफारिश की है और मुझे मदद देने के लिए लिखा है।

भूतनाथ—कृष्ण जिन्न को आप जानते हैं ?

गोपालसिंह—वह मेरा दोस्त है, लड़कपन ही से मैं उसे जानता हूँ, उसे मेरे कैद होने की कुछ भी खबर न थी, पाँच-सात दिन हुए हैं, जब वह मुबारकबाद देने के लिए मेरे पास आया था।

भूतनाथ—तो मैं उम्मीद करता हूँ कि इस काम में आप मेरी मदद करेंगे।

गोपालसिंह—हाँ-हाँ, मैं इस काम में हर तरह से मदद देने के लिए तैयार हूँ। क्योंकि यह काम वास्तव में मेरा ही काम है, मगर मेरी समझ में नहीं आता कि मैं क्या मदद कर सकूँगा क्योंकि मुझे इन बातों की कुछ भी खबर न थी और न है।

भूतनाथ—जिस तरह की मदद मैं चाहता हूँ अर्ज करूँगा, मगर उसके पहले मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या आप राजा वीरेन्द्रसिंह और कमलिनी इत्यादि से मिलने के लिए रोहतासगढ़ जायेंगे ?

गोपालसिंह—जब तक राजा वीरेन्द्रसिंह मुझे न बुलावेंगे, मैं अपनी मर्जी से न जाऊँगा और न मुझे कमलिनी या लक्ष्मीदेवी से मिलने की जल्दी ही है, जब तुम्हारे मुक-दमे का फैसला हो जायगा तब जैसा होगा देखा जायगा।

गोपालसिंह की बात सुनकर भूतनाथ को बड़ा ताज्जुब हुआ, क्योंकि लक्ष्मीदेवी की खबर सुन कर न तो उनके चेहरे पर किसी तरह की खुशी दिखाई दी और न बल-भद्रसिंह का हाल सुन कर उन्हें रंज ही हुआ। कमरे के अन्दर पैर रखते ही भूतनाथ ने जिस शान्त भाव में उन्हें देखा था, वैसी ही सूरत में अब भी देख रहा था। आखिर बहुत कुछ सोचने-विचारने के बाद भूतनाथ ने कहा, "आपने खास बाग में मायारानी के कमरे की तलाशी ली थी?"

गोपालसिंह—तुम भूलते हो। खास बाग के किसी कमरे या कोठरी की तलाशी लेने से कोई काम नहीं चल सकता। या तो तुम हेलासिंह के किसी पक्षपाती को जो उस काम में शरीक रहा हो, गिरफ्तार करो या दारोगा कम्बख्त को दुःख देकर पूछो, मगर अफसोस इतना ही है कि दारोगा राजा वीरेन्द्रसिंह के कब्जे में है और उसके विषय में उनको कुछ लिखना मैं पसन्द नहीं करता।

गोपालसिंह की इस बात से भूतनाथ को और भी आश्चर्य हुआ और उसने कहा, "तलाशी से मेरा और कोई मतलब नहीं है, मुझे ठीक पता लग चुका है कि मायारानी के पास तस्वीरों की एक किताब थी और उसमें उन लोगों की तस्वीरें थीं जो इस काम में उसके मददगार थे, बस मेरा मतलब उसी किताब के पाने से है और कुछ नहीं।"

गोपालसिंह—हाँ ठीक है, मुझे इस प्रकार की एक किताब मिली थी मगर उस समय मैं बड़े क्रोध में था इसलिए कम्बख्त नकली मायारानी का असबाब कपड़ा-लत्ता इत्यादि जो कुछ मेरे हाथ लगा, उसी में उस तस्वीर वाली किताब को भी रखकर मैंने आग लगा दी, मगर अब मुझे यह जान कर अफसोस होता है कि वह किताब बड़े मत-लब की थी।

अब भूतनाथ को निश्चय हो गया कि राजा गोपालसिंह मुझ से बहाना करते हैं और मेरी मदद करना नहीं चाहते। तब क्या करना चाहिए? इसके लिए भूतनाथ सिर झुकाए हुए कुछ सोच रहा था कि राजा गोपालसिंह ने कहा—

गोपालसिंह—मगर भूतनाथ, मुझे याद पड़ता है कि तस्वीर वाली किताब में तुम्हारी तस्वीर भी थी!

भूतनाथ—शायद हो।

गोपालसिंह—खैर, अब तो वह किताब ही जल गई, उसके बारे में कुछ भी कहना वृथा है।

भूतनाथ—(उदासी के साथ) मेरी किस्मत, मैं लाचार हूँ। बस मदद के लिए केवल एक वही किताब थी जिसे पाने की उम्मीद में मैं आपके पास आया था, खैर अब जाता हूँ, जो कुछ हैरानी बदी है उसे उठाऊँगा और जिस तरह बनेगा असली बलभद्रसिंह का पता लगाऊँगा।

गोपालसिंह—मैं जानता हूँ कि इस समय जमानिया के बाहर होकर तुम कहाँ

जाओगे और बलभद्रसिंह का पता क्योंकर लगाओगे। क्या करोगे ?

भूतनाथ—(ताज्जुब से) वह क्या ?

गोपालसिंह—बस काशी में मनोरमा का मकान तुम्हारा सब से पहला ठिकाना होगा।

भूतनाथ –बस अब ठीक है, आपने खूब समझा और अब मुझे विश्वास हो गया कि इस काम में आप मेरी बहुत कुछ मदद कर सकते हैं मगर आश्चर्य है कि आप किसी तरह की सहायता नहीं करते।

गोपालसिंह—खैर, अब हम तुमसे साफ-साफ कह देना ही अच्छा समझते हैं। कृष्ण जिन्न से और मुझसे निःसन्देह दोस्ती थी और वह अब भी मुझ से प्रेम रखता है मगर किसी कारण से मेरी तबीयत उससे खट्टी हो गई और मैं कसम खा चुका हूँ कि जिस काम में वह पड़ेगा उसमें मैं दखल न दूँगा चाहे वह काम मेरे ही फायदे का क्यों न हो या मदद न देने के सबब से मेरा कितना ही बड़ा नुकसान क्यों न हो या मेरी जान ही क्यों न चली जाय। बस यही सबब है कि मैं तुम्हारी मदद नहीं करता।

भूतनाथ—(कुछ सोचकर) अच्छा तो फिर मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं जाऊँ और बलभद्रसिंह का पता लगाने के लिए उद्योग करूँ।

गोपालसिंह—जाओ, ईश्वर तुम्हारी मदद करे।

भूतनाथ सलाम करके कमरे के बाहर चला गया। उसके जाने के बाद गोपालसिंह को हँसी आई और उन्होंने आप ही आप धीरे से कहा, "इसने जरूर सोचा होगा कि गोपालसिंह पूरा बेवकूफ या पागल है!"

भूतनाथ महल की ड्योढी पर आया जहाँ अपने साथी को छोड़ गया था और उसे साथ लेकर शहर के बाहर निकल गया। जब वे दोनों आदमी मैदान में पहुँचे जहाँ चारों तरफ सन्नाटा था, तो भूतनाथ के साथी ने पूछा, "कहिये, राजा गोपालसिंह की मुलाकात का क्या नतीजा निकला ?"

भूतनाथ—कुछ भी नहीं, मैं व्यर्थ ही आया।

आदमी—सो क्यों ?

भूतनाथ—उन्होंने किसी प्रकार की मदद देने से इनकार किया।

आदमी—बड़े आश्चर्य की बात है, यह काम तो वास्तव में उन्हीं का है।

भूतनाथ—सब कुछ है मगर……

आदमी—तो क्या लक्ष्मीदेवी का पता लगने से वे खुश नहीं हैं ?

भूतनाथ—मेरी समझ में कुछ नहीं आता कि वे खुश हैं या नाराज, न तो उनके चेहरे पर किसी तरह की खुशी दिखाई दी न रंज। हँसना तो दूर रहा वे लक्ष्मीदेवी, बलभद्रसिंह, मायारानी और कृष्णजिन्न का किस्सा सुनकर मुस्कुराये भी नहीं, यद्यपि कई बातें ऐसी थीं कि जिन्हें सुनकर उन्हें अवश्य हँसना चाहिए था।

आदमी—क्या उनके मिजाज में कुछ फर्क पड़ गया है।

भूतनाथ—मालूम तो ऐसा ही होता है, बल्कि मैं तो समझता हूँ कि वे पागल हो गये हैं। जब मैंने उनसे पूछा कि, "राजा वीरेन्द्रसिंह या लक्ष्मीदेवी से मिलने के लिए

आप रोहतासगढ़ जायेंगे ?" तो उन्होंने कहा, "नहीं जब तक राजा वीरेन्द्रसिंह न बुलावेंगे मैं न जाऊँगा।" भला यह भी कोई बुद्धिमानी की बात है !

आदमी—मालूम होता है वे सनक गये हैं।

भूतनाथ—या तो वे सनक हो गये हैं और या फिर कोई भारी धूर्तता करना चाहते हैं। खैर जाने दो, इस समय तो भूतनाथ स्वतन्त्र है फिर जो होगा देखा जायेगा। अब मुझे किसी ठिकाने बैठकर अपने आदमियों का इन्तजार करना चाहिए।

आदमी—तब उसी कुटी में चलिए, किसी न किसी से मुलाकात हो ही जायगी।

भूतनाथ—(हँस कर) अच्छा देखो तो सही भूतनाथ क्या-क्या करता है और कैसे-कैसे खेल-तमाशे दिखाता है।

7

अब हम थोड़ा-सा हाल लक्ष्मीदेवी की शादी का लिखना आवश्यक समझते हैं।

जब लक्ष्मीदेवी की माँ जहरीली मिठाई के असर से मर गई (जैसा कि ऊपर के लेख से हमारे पाठकों को मालूम हुआ होगा) तब लक्ष्मीदेवी की सगी मौसी जो विधवा थी और अपनी ससुराल में रहा करती थी बुला ली गई और उसने बड़े लाड़-प्यार से लक्ष्मीदेवी, कमलिनी और लाड़िली की परवरिश शुरू की और बड़ी दिलजमई तथा दिलासे से उन तीनों को रखा। परन्तु बलभद्रसिंह स्त्री के मरने से बहुत ही उदास और विरक्त हो गया था। उसका दिल गृहस्थी तथा व्यापार की तरफ नहीं लगता था और वह दिन-रात इसी विचार में पड़ा रहता था कि किसी तरह तीनों लड़कियों की शादी हो जाय और वे सब अपने-अपने ठिकाने पहुँच जायँ तो उत्तम हो। लक्ष्मीदेवी की बातचीत तो राजा गोपालसिंह के साथ तय हो चुकी थी परन्तु कमलिनी और लाड़िली के विषय में अभी कुछ निश्चय नहीं हो पाया था।

लक्ष्मीदेवी की माँ को मरे जब लगभग सोलह महीने हो चुके तब उसकी शादी का इन्तजाम होने लगा। उधर राजा गोपालसिंह और इधर बलभद्रसिंह तैयारी करने लगे। यह बात पहले ही से तै पा चुकी थी कि राजा गोपालसिंह बारात सजाकर बलभद्रसिंह के घर न आवेंगे बल्कि बलभद्रसिंह को अपनी लड़की उनके घर ले जाकर ब्याह देनी होगी और आखिर ऐसा ही हुआ।

सावन का महीना और कृष्णपक्ष की एकादशी का दिन था जब बलभद्रसिंह अपनी लड़की को लेकर जमानिया पहुँचे। उसके दूसरे या तीसरे दिन शादी होने वाली थी, और उधर कम्बख्त दारोगा ने गुप्त रीति से हेलासिंह और उसकी लड़की मुन्दर को बुलाकर अपने मकान में छिपा रखा था। बलभद्रसिंह और दारोगा से बड़ी दोस्ती थी और बलभद्रसिंह दारोगा का बड़ा विश्वास करता था, मगर अफसोस, रुपया जो चाहे सो करावे। इसकी ठण्डी आँच को बर्दाश्त करना किसी ऐसे-वैसे दिलावर का काम

नहीं। इसके सबब से बड़े बड़े मजबूत कलेजे हिल जाते हैं और पाप और पुण्य के विचार को तो यह इसी तरह से उड़ा देता है जैसे गन्धक का धुआँ कनेर पुष्प के लाल रंग को। यद्यपि दारोगा और बलभद्रसिंह में दोस्ती थी, परन्तु हेलासिंह के दिखाए हुए सब्जबाग ने दारोगा को ईश्वर और धर्म की तरफ कुछ भी विचार न करने दिया और वह बड़ी दृढ़ता के साथ विश्वासघात करने के लिए तैयार हो गया।

बलभद्रसिंह अपनी लड़की तथा कई नौकर और सिपाहियों को लेकर जमानिया में पहुँचे और एक किराए के बाग में डेरा डाला जो कि दारोगा ने उनके लिए पहले ही से ठीक कर रखा था। जब हर तरह का सामान ठीक हो गया तो उन्होंने दोस्ती के ढंग पर दारोगा को अपने पास बुलाया और उन चीजों को दिखाया जो शादी के लिए बन्दो-बस्त कर अपने साथ ले आये थे, उन कपड़ों और गहनों को भी दिखाया जो दामाद को देने के सिए लाए थे, फेहरिस्त के सहित वे चीजें उसके सामने रखीं जो दहेज में देने के लिए थीं, और सबके अन्त में वे कपड़े भी दिखाए जो शादी के समय अपनी लड़की लक्ष्मीदेवी को पहनाने के लिए तैयार कराकर लाए थे। दारोगा ने दोस्ताना ढंग पर एक-एक करके सब चीजों को देखा और तारीफ करता गया, मगर सबसे ज्यादा देर तक जिन चीजों पर उसकी निगाह ठहरी वह शादी के समय पहनाये जाने वाले लक्ष्मीदेवी के कपड़े थे। दारोगा ने उन कपड़ों को उससे भी ज्यादा बारीक निगाह से देखा जिस निगाह से कि रेहन रखने वाला कोई चालाक बनिया उन्हें देखता या जाँच करता।

दारोगा अकेला बलभद्रसिंह के पास नहीं आया था, बल्कि अपने नौकर तथा सिपाहियों के साथ जिनको वह दरवाजे पर ही छोड़ आया था और भी दो आदमियों को लाया था जिन्हें बलभद्रसिंह नहीं पहचानते थे और दारोगा ने जिन्हें अपना दोस्त कहकर परिचय दिया था। इस समय इन दोनों ने भी उन कपड़ों को अच्छी तरह देखा जिनके देखने में दारोगा ने अपने समय का बहुत हिस्सा नष्ट किया था।

थोड़ी देर तक गपशप और तारीफ करने के बाद दारोगा उठकर अपने घर चला गया। यहाँ उसने सब हाल हेलासिंह से कहा और यह भी कहा कि मैं दो चालाक दर्जियों को अपने साथ लिए गया था जिन्होंने वे कपड़े बहुत अच्छी तरह देख-भाल लिए हैं जो लक्ष्मीदेवी को विवाह के समय पहनाए जाने वाले हैं और उन दर्जियों को ठीक उसी तरह के कपड़े तैयार करने के लिए आज्ञा दे दी गयी है, इत्यादि।

जिस दिन शादी होने वाली थी, केवल रात ही अँधेरी न थी, बल्कि बादल भी चारों तरफ से इतने घिर आये थे कि हाथ को हाथ भी नहीं दिखाई देता था। ब्याह का काम उसी खास बाग में ठीक किया गया था जिसमें मायारानी के रहने का हाल हम कई मर्तबे लिख चुके हैं। इस समय इस बाग का बहुत बड़ा हिस्सा दारोगा ने शादी का सामान वगैरह रखने के लिए अपने कब्जे में कर लिया था जिसमें कई दालान, कोठरियाँ, कमरे और तहखाने भी थे और साथ-साथ उसने हेलासिंह की लड़की मुन्दर को भी लौंडियों के से कपड़े पहना के अन्दर एक तहखाने में छिपा रखा था।

कन्यादान का समय तीन पहर रात बीते पण्डितों ने निश्चय किया था और जो पण्डित विवाह कराने वालों का मुखिया था, उसे दारोगा ने पहले ही मिला लिया था।

दो पहर रात बीतने से पहले ही लक्ष्मीदेवी को साथ लिए हुए बलभद्रसिंह बाग के अन्दर कर लिए गए और विवाह का कार्य आरम्भ कर दिया गया। बाग का जो हिस्सा दारोगा ने अपने अधिकार में रखा उसमें एक सुन्दर सजी हुई कोठरी भी थी, जिसके नीचे एक तहखाना था। दारोगा की इच्छा से गोपालसिंह के कुल-देवता का स्थान उसी में नियत किया गया था और उसके नीचे वाले तहखाने में दारोगा ने हेलासिंह की लड़की मुन्दर को ठीक वैसे ही कपड़े पहनाकर छिपा रखा था जैसे बलभद्रसिंह ने लक्ष्मीदेवी के लिए बनाये थे और जिन्हें चालाक दर्जियों के सहित दारोगा अच्छी तरह देख आया था।

बलभद्रसिंह का दोस्त केवल दारोगा ही न था बल्कि दारोगा के गुरुभाई इन्द्रदेव से भी उनकी मित्रता थी और उन्हें निश्चय था कि इस विवाह में इन्द्रदेव भी अवश्य आवेगा क्योंकि राजा गोपालसिंह भी इन्द्रदेव को मानते और उसकी इज्जत करते थे। परन्तु बलभद्रसिंह को बड़ा ही आश्चर्य हुआ जब विवाह का समय निकट आ जाने पर भी उन्होंने इन्द्रदेव को वहाँ न देखा। जब उसने दारोगा से पूछा तो उसने इन्द्रदेव की चिट्ठी दिखाई जिसमें यह लिखा था "कि मैं बीमार हूँ इसलिए विवाह में उपस्थित नहीं हो सकता और इसलिए आपसे तथा राजा साहब से क्षमा माँगता हूँ।"

जब कन्यादान हो गया तो पण्डित जी की आज्ञानुसार लक्ष्मीदेवी को लिए हुए राजा गोपालसिंह उस कोठरी में आए जहाँ कुल-देवता का स्थान बनाया गया था और वहाँ भी पण्डित ने कई तरह की पूजा कराई। इसके बाद पण्डित की आज्ञानुसार लक्ष्मी देवी को छोड़ गोपालसिंह उस कोठरी से बाहर आए और वे लौंडियाँ भी बाहर कर दी गयीं जो लक्ष्मीदेवी के साथ थीं। उस समय पानी बड़े जोर से बरसने लगा था और हवा बड़ी तेज चलने लगी, इस सबब से जितने आदमी वहाँ थे सब छितर-बितर हो गये और जिसको जहाँ जगह मिली वहाँ जा घुसा। दारोगा तथा पण्डित की आज्ञानुसार बलभद्र-सिंह पालकी में सवार हो अपने डेरे की तरफ रवाना हो गए, इधर गोपालसिंह दूसरे कमरे में जाकर गद्दी पर बैठे रहे और रंडियों का नाच शुरू हुआ। जितने आदमी उस बाग में थे, उसी महफिल की तरफ जा पहुँचे, और नाच देखने लगे और इस सबब से दारोगा को भी अपना काम करने का बहुत अच्छा मौका मिल गया। वह उस कोठरी में घुसा जिसमें लक्ष्मीदेवी थी, उसे पूजा कराने के बहाने से तहखाने के अन्दर ले गया और तहखाने में से मुन्दर को लाकर लक्ष्मीदेवी की जगह बैठा दिया। उसी समय लक्ष्मीदेवी को मालूम हुआ कि चालबाजी खेली गई है और बदकिस्मती ने आकर उसे घेर लिया। यद्यपि वह बहुत चिल्लाई और रोई मगर उसकी आवाज तहखाने और उसके ऊपर वाली कोठरी को भेदकर उन लोगों के कानों तक न पहुँच सकी जो कोठरी के बाहर दालान में पहरा दे रहे थे या महफिल में बैठे रंडी का नाच देख रहे थे। तहखाने के अन्दर से एक रास्ता बाग के बाहर निकल जाने का था जिसके खुले रहने का इन्तजाम दारोगा ने पहले ही से कर रखा था और दारोगा के आदमी गुप्तरीति से बाहरी दरवाजे के आस-पास मौजूद थे। दारोगा ने लक्ष्मीदेवी के मुह में कपड़ा ठूँसकर उसे हर तरह से लाचार कर दिया और इस सुरंग की राह बाग के बाहर पहुँचा और अपने आदमियों के हवाले कर दरवाजा बन्द करता हुआ लौट आया। घण्टे ही भर के बाद लक्ष्मीदेवी ने अपने को

अजायबघर की किसी कोठरी में बन्द पाया और यह भी वहाँ उसके सुनने में आया कि बलभद्रसिंह पर, जो पानी बरसते में अपने डेरे की तरफ जा रहे थे, डाकुओं ने छापा मारा और उन्हें गिरफ्तार कर ले गए। जब यह खबर राजा गोपालसिंह के कान में पहुँची तो महफिल बरखास्त कर दी गई, अकेली लक्ष्मीदेवी (मुन्दर) महल के अन्दर पहुँचाई गयी और राजा साहब की आज्ञानुसार सैंकड़ों आदमी बलभद्रसिंह की खोज में रवाना हो गये। उस समय पानी का बरसना बन्द हो गया था और सुबह की सफेदी आसमान पर अपना दखल जमा चुकी थी। बलभद्रसिंह को खोजने के लिए राजा साहब के आदमियों ने दो दिन तक बहुत-कुछ उद्योग किया, मगर कुछ काम न चला अर्थात् बलभद्रसिंह का पता न लगा और पता लगता भी क्योंकर ? असल तो यह है कि बलभद्रसिंह भी दारोगा के कब्जे में पड़कर अजायबघर में पहुँच चुके थे।

बलभद्रसिंह पर डाका पड़ने और उनके गायब होने का हाल लेकर जब उनके आदमी लोग घर पहुँचे तो पूरे घर में हाहाकार मच गया। कमलिनी, लाड़िली और उसकी मौसी रोते-रोते बेहाल थीं, मगर क्या हो सकता था। अगर कुछ हो सकता था तो केवल इतना ही कि थोड़े दिन में धीरे-धीरे गम कम होकर केवल सुनने-सुनाने के लिए रह जाता और माया के फेर में पड़े हुए जीव अपने-अपने काम-धंधे में लग जाते। खैर, इस पचड़े को छोड़कर हम बलभद्रसिंह और लक्ष्मीदेवी का हाल लिखते हैं जिससे हमारे किस्से का बड़ा भारी सम्बन्ध है।

दारोगा की यह नीयत नहीं थी कि लक्ष्मीदेवी और बलभद्रसिंह उसकी कैद में रहें बल्कि वह यह चाहता था कि महीने-बीस दिन के बाद जब हो-हल्ला कम हो जाय और वे लोग अपने घर चले जायें जो विवाह के न्योते में आये हैं तो उन दोनों को मार-कर कर टण्टा मिटा दिया जाए। परन्तु ईश्वर की मर्जी कुछ और ही थी। वह चाहता था कि लक्ष्मीदेवी और बलभद्रसिंह जीते रहकर बड़े-बड़े कष्ट भोगें और मुद्दत तक मुर्दों से बदतर बने रहें, क्योंकि थोड़े ही दिन बाद बाद दारोगा की राय बदल गई और उसने लक्ष्मीदेवी और बलभद्रसिंह को हमेशा के लिए अपनी कैद में रखना ही उचित समझा। उसे निश्चय हो गया कि हेलासिंह बड़ा ही बदमाश और शैतान आदमी है और मुन्दर भी सीधी औरत नहीं है। अतएव आश्चर्य नहीं कि लक्ष्मीदेवी और बलभद्रसिंह के मरने के बाद वे दोनों बेफिक्र हो जायें और यह समझ कर कि अब दारोगा हमारा कुछ नहीं कर सकता, मुझे दूध की मक्खी तरह निकाल बाहर करें तथा जो कुछ मुझे देने का वादा कर चुके हैं, उसके बदले में अँगूठा दिखा दें। उसने सोचा कि यदि लक्ष्मीदेवी और बलभद्रसिंह हमारी कैद में बने रहेंगे तो हेलासिंह और मुन्दर भी कब्जे के बाहर न जा सकेंगे क्योंकि वे समझेंगे कि अगर दारोगा से बेमुरौवती की जायगी तो वह तुरन्त बलभद्रसिंह और लक्ष्मीदेवी को प्रकट कर देगा और खुद राजा का खैरखाह बना रहेगा, उस समय लेने के देने पड़ जाएँगे, इत्यादि।

वास्तव में दारोगा का खयाल बहुत ठीक था। हेलासिंह यही चाहता था कि दारोगा किसी तरह लक्ष्मीदेवी और बलभद्रसिंह को खपा डाले तो हम लोग निश्चिन्त हो हो जायें, मगर जब उसने देखा कि दारोगा ऐसा नहीं करेगा तो लाचार चुप हो रहा।

दारोगा ने हेलासिंह के साथ ही साथ मुन्दर को भी यह कह रखा था कि "देखो बलभद्र-सिंह और लक्ष्मीदेवी मेरे कब्जे में हैं। जिस दिन तुम मुझसे बेमुरौवती करोगी या मेरे हुक्म से सिर फेरोगी उस दिन मैं लक्ष्मीदेवी और बलभद्रसिंह को प्रकट करके तुम दोनों को जहन्नुम में भेज दूँगा।"

निःसन्देह दोनों कैदियों को कैद रखकर दारोगा ने बहुत दिनों तक फायदा उठाया और मालामाल हो गया, मगर साथ ही इसके मुन्दर की शादी के महीने ही भर बाद दारोगा की चालाकियों ने और लोगों को यह भी विश्वास दिला दिया कि बलभद्र-सिंह डाकुओं के हाथ से मारा गया। यह खबर जब बलभद्रसिंह के घर में पहुँची तो उसकी साली और दोनों लड़कियों के रंज की हद न रही। बरसों बीत जाने पर भी उसकी आँखें सदा तर रहा करती थीं, मगर मुन्दर जो लक्ष्मीदेवी के नाम से मशहूर हो रही थी लोगों को यह विश्वास दिलाने के लिए कि 'मैं वास्तव में कमलिनी और लाड़िली की बहिन हूँ' उन दोनों के पास हमेशा तोहफे और सौगातें भेजा करती थी। और कमलिनी और लाड़िली भी जो यद्यपि बिना माँ-बाप की हो गई थीं, परन्तु अपनी मौसी की बदौलत, जो उन दोनों को अपने से बढ़कर मानती थी और जिसे वे दोनों भी अपनी माँ की तरह मानती थीं, बराबर सुख के साथ रहा करती थी। मुन्दर की शादी के तीन वर्ष बाद कमलिनी और लाड़िली की मौसी कुटिल काल के गाल में जा पड़ी। इसके थोड़े ही दिन बाद मुन्दर ने कमलिनी और लाड़िली को अपने यहाँ बुला लिया और इस तरह खातिरदारी के साथ रखा कि उन दोनों के दिल में इस बात का शक तक न होने पाया कि मुन्दर वास्तव में हमारी बहिन लक्ष्मीदेवी नहीं है। यद्यपि लक्ष्मीदेवी की तरह मुन्दर भी बहुत खूबसूरत और हसीन थी, मगर फिर भी सूरत-शक्ल में बहुत-कुछ अंतर था, लेकिन कमलिनी और लाड़िली ने इसे जमाने का हेर-फेर समझा, जैसा कि हम ऊपर के किसी बयान में लिख आए हैं।

यह सब कुछ हुआ मगर मुन्दर के दिल में, जिसका नाम राजा गोपालसिंह की बदौलत मायारानी हो गया था, दारोगा का खौफ बना ही रहा और वह इस बात से डरती ही रही कि कहीं किसी दिन दारोगा मुझसे रंज होकर सारा भेद राजा गोपाल-सिंह के आगे न खोल दे। इस बला से बचने के लिए उसे इससे बढ़कर कोई तरकीब न सूझी कि राजा गोपालसिंह को ही इस दुनिया से उठा दे और स्वयं राजरानी बनकर दारोगा पर हुकूमत करे। उसकी ऐयाशी ने उसके इस खयाल को और भी मजबूत कर दिया और यही वह जमाना था जब कि एक छोकरे पर जिसका परिचय धनपत के नाम से पहले के बयानों में दिया जा चुका है, उसका दिल आ गया और उसके विचार की जड़ बड़ की तरह मजबूती पकड़ती चली गई थी। उधर दारोगा भी बेफिक्र नहीं था। उसे भी अपना रंग चोखा करने की फिक्र लग रही थी, यद्यपि उसने लक्ष्मीदेवी और बलभद्रसिंह को एक ही कैदखाने में कैदकिया हुआ था। मगर वह लक्ष्मीदेवी को भी धोखे में डाल कर एक नया काम करने की फिक्र में पड़ा हुआ था और चाहता था कि बलभद्रसिंह को लक्ष्मीदेवी से इस ढंग पर अलग कर दे कि लक्ष्मीदेवी को किसी

तरह का गुमान तक न होने पावे। इस काम में उसने एक दोस्त की मदद ली जिसका नाम जैपालसिंह था और जिसका हाल आगे चलकर मालूम होगा।

8

हम ऊपर लिख आये हैं कि लक्ष्मीदेवी और बलभद्रसिंह अजायबघर के किसी तहखाने में कैद किए गए थे। मगर मायारानी और हेलासिंह इस बात को नहीं जानते थे कि उन दोनों को दारोगा ने कहाँ कैद कर रखा है।

इसके कहने की कोई आवश्यकता नहीं कि बलभद्रसिंह और लक्ष्मीदेवी कैदखाने में क्योंकर मुसीबत के दिन काटते थे। ताज्जुब की बात तो यह थी कि दारोगा अक्सर इन दोनों के पास जाता और बलभद्रसिंह के ताने और गालियाँ बरदाश्त करता। मगर उसे किसी तरह की शर्म नहीं आती थी। जिस घर में वे दोनों कैद थे उसमें रात और दिन का विचार करना कठिन था। उन दोनों से थोड़ी ही दूर पर एक चिराग दिन-रात जला करता था जिसकी रोशनी में वे एक-दूसरे के उदास और रंजीदा चेहरे को बराबर देखा करते थे।

जिस कोठरी में वे दोनों कैद थे उसके आगे लोहे का जंगला लगा हुआ था तथा सामने की तरफ एक दालान और दाहिनी तरफ एक कोठरी तथा बाईं तरफ ऊपर चढ़ जाने का रास्ता था। एक दिन आधी-रात के समय एक खटके की आवाज को सुनकर लक्ष्मीदेवी, जो एक मामूली कम्बल पर सोई हुई थी उठ बैठी और सामने की तरफ देखने लगी। उसने देखा कि सामने से सीढ़ियाँ उतरकर चेहरे पर नकाब डाले हुए एक आदमी आ रहा है। जब लोहे वाले जंगले के पास पहुँचा तो उसकी तरफ देखने लगा कि दोनों कैदी सोये हुए हैं या जागते हैं, मगर जब उसने लक्ष्मीदेवी को बैठे हुए पाया तो बोला, "बेटी, मुझे तुम दोनों की अवस्था पर बड़ा ही रंज होता है मगर क्या करूँ लाचार हूँ, अभी तक तो कोई मौका मेरे हाथ नहीं लगा, मगर फिर भी मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि किसी-न-किसी दिन तुम दोनों को मैं इस कैद से जरूर छुड़ाऊँगा। आज इस समय मैं केवल यह कहने के लिए आया हूँ कि आज दारोगा ने बलभद्रसिंह को जो खाने की चीजें दी थीं, उनमें जहर मिला हुआ था। अफसोस कि बेचारा बलभद्रसिंह उसे खा गया, ताज्जुब नहीं कि वह इस दुनिया से घण्टे में कूचकर जाये, लेकिन यदि तू उसे जगा दे और जो कुछ मैं कहूँ करे तो निःसन्देह उसकी जान बच जायेगी।"

बेचारी लक्ष्मीदेवी के लिए पहले की मुसीबतें ही क्या कम थीं और इस खबर ने उस दिल पर क्या असर किया सो वही जानती होगी। वह घबराई हुई अपने बाप के पास गई जो एक कम्बल पर सो रहा था। उसने उसे उठाने की कोशिश की मगर उसका बाप न उठा, तब उसने समझा कि बेशक जहर ने उसके बाप की जान ले ली, मगर जब उसने नब्ज पर उँगली रक्खी तो नब्ज को तेजी के साथ चलता पाया। लक्ष्मी की आँखों

से बेअन्दाज आँसू जारी हो गये। वह लपककर जंगले के पास आई और उस आदमी से हाथ जोड़कर बोली, "निःसन्देह तुम कोई देवता हो जो इस समय मेरी मदद के लिए आए हो ! यद्यपि मैं यहाँ मुसीबत के दिन काट रही हूँ मगर फिर भी अपने पिता को अपने पास देखकर मैं मुसीबत को कुछ नहीं गिनती थी, अफसोस, दारोगा मुझे इस सुख से भी दूर किया चाहता है। जो कुछ तुमने कहा सो बहुत ठीक है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि दारोगा ने मेरे बाप को जहर दे दिया, मगर मैं तुम्हारी दूसरी बात पर भी विश्वास करता हूँ जो तुम अभी कह चुके हो कि यदि तुम्हारी बताई हुई तरकीब की जायेगी तो इनकी जान बच जायगी।"

नकाबपोश—बेशक ऐसा ही है (एक पुड़िया जंगले के अन्दर फेंककर) यह दवा तुम उनके मुँह में डाल दो, घण्टे ही भर में जहर का असर दूर हो जायगा और मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि इस दवा की तासीर से भविष्य में इन पर किसी तरह के जहर का असर न होने पावेगा।

लक्ष्मीदेवी—अगर ऐसा हो तो क्या बात है !

नकाबपोश—बेशक ऐसा ही है, पर अब बिलम्ब न करो और वह दवा शीघ्र अपने बाप के मुँह में डाल दो, लो अब मैं जाता हूँ, ज्यादा देर तक ठहर नहीं सकता।

इतना कहकर नकाबपोश चला गया और लक्ष्मीदेवी ने पुड़िया खोलकर अपने बाप के मुँह में वह दवा डाल दी।

इस जगह यह कह देना हम उचित समझते हैं कि यह नकाबपोश जो आया था दारोगा का वही मित्र जैपालसिंह था और इसे दारोगा ने अपने इच्छानुसार खूब सिखा पढ़ाकर भेजा था। वह अपने चेहरे और बदन को विशेष करके इसलिए ढाँके हुए था कि उसका चेहरा और तमाम बदन गर्मी के जख्मों से गन्दा हो रहा था और उन्हीं जख्मों की बदौलत वह दारोगा का एक भारी काम निकालना चाहता था।

दवा देने के घण्टे-भर बाद बलभद्रसिंह होश में आया। उस समय लक्ष्मीदेवी ने कहा, "मैं नहीं जानता कि मुझे क्या हो गया था और अब मेरे बदन से चिनगारियाँ क्यों छूट रही हैं।" लक्ष्मीदेवी ने सब हाल कहा जिसे सुन बलभद्रसिंह बोला, "ठीक है, तुम्हारी खिलाई हुई दवा ने मेरी जान जरूर तो बचाली परन्तु मैं देखता हूँ कि यह जहर मुझे साफ छोड़ना नहीं चाहता, निःसन्देह इसकी गर्मी मेरे तमाम बदन को बिगाड़ देगी !" इतना कहकर बलबद्रसिंह चुप हो गया और गर्मी की बेचैनी से हाथ-पैर मारने लगा। सुबह होते-होते उसके तमाम बदन में फफोले निकल आये जिसकी तकलीफ से वह बहुत ही बेचैन हो गया। बेचारी लक्ष्मीदेवी उसके पास बैठकर सिवा रोने के और कुछ भी नहीं कर सकती थी। दूसरे दिन जब दारोगा उस तहखाने में आया तो बलभद्रसिंह का हाल देखकर पहले तो लौट गया मगर थोड़ी ही देर बाद पुनः दो आदमियों को साथ लेकर आया और बलभद्रसिंह को हाथों-हाथ उठवाकर तहखाने के बाहर ले गया। इसके बाद आठ दिन तक बेचारी लक्ष्मीदेवी ने अपने बाप की सूरत नहीं देखी। नवें दिन कम्बख्त दारोगा ने बलभद्रसिंह की जगह अपने दोस्त जैपालसिंह को उस तहखाने में ला डाला और ताला बन्द करके चला गया। जैपालसिंह को देखकर लक्ष्मीदेवी ताज्जुब

में आ गई और बोली, "तुम कौन हो और यहाँ पर क्यों लाये गये ?"

जैपालसिंह—बेटी, क्या तू मुझे इसी आठ दिन में भूल गई। क्या तू नहीं जानती कि जहर के असर ने मेरी दुर्गति कर दी है ? क्या तेरे सामने ही मेरे तमाम बदन में फफोले नहीं उठ आये थे ? ठीक है, बेशक तू मुझे नहीं पहचान सकी होगी, क्योंकि मेरा तमाम बदन जख्मों से भरा हुआ है, चेहरा बिगड़ गया है, मेरी आवाज खराब हो गई है, और मैं बहुत ही दुःखी हो रहा हूँ !

लक्ष्मीदेवी को यद्यपि अपने बाप पर शक हुआ था, मगर मोढ़े पर का वही दाँत काटे का निशान, जो इस समय भी मौजूद था और जिसे दारोगा ने कारीगर जर्राह की बदौलत बनवा दिया था देखकर चुप हो रही और उसे निश्चय हो गया कि मेरा बाप बलभद्रसिंह यही है। थोड़ी देर बाद लक्ष्मीदेवी ने पूछा, "तुम्हें जब दारोगा यहाँ से ले गया तब उसने क्या किया ?"

नकली बलभद्रसिंह—तीन दिन तक तो मुझे तन-बदन की सुध नहीं रही।

लक्ष्मीदेवी—अच्छा फिर ?

नकली बलभद्रसिंह—चौथे दिन जब मेरी आँख खुली तो मैंने अपने को एक तहखाने में कैद पाया जहाँ सामने चिराग जल रहा था, कुर्सी पर बेईमान दारोगा बैठा हुआ था और एक जर्राह मेरे जख्मों पर मरहम लगा रहा था।

लक्ष्मीदेवी—आश्चर्य है कि जब दारोगा ने तुम्हारी जान लेने के लिए जहर ही दिया था तो···

नकली बलभद्रसिंह—मैं खुद आश्चर्य कर रहा हूँ कि जब दारोगा मेरी जान ही लिया चाहता था और इसीलिए उसने मुझको जहर दिया था तो यहाँ से ले जाकर उसने मुझे जीता क्यों छोड़ा ? मेरा सिर क्यों नहीं काट डाला, बल्कि मेरा ? इलाज क्यों कराने लगा ?

लक्ष्मीदेवी—ठीक है, मैं भी यही सोच रही हूँ, अच्छा तब क्या हुआ ?

नकली बलभद्रसिंह—जब जर्राह मरहम लगा के चला गया और निराला हुआ तब दारोगा ने मुझसे कहा, "देखो बलभद्रसिंह, निःसन्देह तुम मेरे दोस्त थे मगर दौलत की लालच ने मुझे तुम्हारे साथ दुश्मनी करने पर मजबूर किया। जो कुछ मैं किया चाहता था सो मैं यद्यपि कर चुका अर्थात् तुम्हारी लड़की की जगह हेलासिंह की लड़की मुन्दर को राजरानी बना दिया मगर फिर मैंने सोचा कि अगर तुम दोनों बचकर निकल जाओगे तो मेरा भेद खुल जायगा और मैं मारा जाऊँगा, इसलिए मैंने तुम दोनों को कैद किया। फिर हेलासिंह ने राय दी कि बलभद्र को मारकर सदैव के लिए टण्टा मिटा देना चाहिए और इसलिए मैंने तुमको जहर दिया, मगर आश्चर्य है कि तुम मरे नहीं। जहाँ तक मैं समझता हूँ मेरे किसी नौकर ने ही मेरे साथ दगा की अर्थात् मेरे दवा के सन्दूक में से संजीवनी की पुड़िया जो केवल एक ही खुराक थी और जिसे वर्षों मेहनत करके मैंने तैयार किया था निकाल कर तुम्हें खिला दी और तुम्हारी जान बच गई। बेशक यही बात है और यह शक मुझे तब हुआ जब मैंने अपने सन्दूक में संजीवनी की पुड़िया न पाई और यद्यपि तुम उस संजीवनी की बदौलत बखूबी बच तो गये मगर फिर भी तेज जहर

के असर से तुम्हारा बदन, तुम्हारी सूरत और तुम्हारी जिन्दगी खराब हुए बिना नहीं रह सकती। ताज्जुब नहीं कि आज नहीं तो दो-चार वर्ष के अन्दर तुम मर ही जाओ अतएव मैं तुम्हारे मारने के लिए कोई कष्ट नहीं उठाता बल्कि तुम्हारे इन जख्मों को आराम करने का उद्योग करता हूँ और इसमें अपना फायदा भी समझता हूँ।" इतना कहकर दारोगा चला गया और मुझें कई दिनों तक उसी तहखाने में रहना पड़ा। इस बीच में जर्राह दिन में तीन-चार दफे मेरे पास आता और जख्मों को साफ करके पट्टी लगा जाता। जब मेरे जख्म दुरुस्त होने पर आये तो उस जर्राह ने कहा कि अब पट्टी बदलने की जरूरत न पड़ेगी तब मैं पुनः इस जगह पहुँचा दिया गया।

लक्ष्मीदेवी—(ऊँची साँस लेकर) न मालूम हम लोगों ने ऐसे कौन पाप किये हैं जिनका फल यह मिल रहा है।

इतना कह लक्ष्मीदेवी रोने लगी और नकली बलभद्रसिंह उसको दम-दिलासा देकर समझाने लगा।

हमारे पाठक आश्चर्य करते होंगे कि दारोगा ने ऐसा क्यों किया और उसे एक नकली बलभद्रसिंह बनाने की क्या आवश्यकता थी। अस्तु इसका सबब इसी जगह लिख देना हम उचित समझते हैं।

कम्बख्त दारोगा ने सोचा कि लक्ष्मीदेवी की जगह मैंने मुन्दर को रानी बना तो दिया मगर कहीं ऐसा न हो कि दो-चार वर्ष के बाद या किसी समय लक्ष्मीदेवी की रिश्तेदारी में कोई या उसकी दोनों बहिनें मुन्दर से मिलने आवें और लक्ष्मीदेवी से लड़कपन का जिक्र छेड़ दें, और उस समय मुन्दर उसका कुछ जवाब न दे सके तो उनको शक हो जायगा। सूरत-शक्ल के बारे में तो कुछ चिन्ता नहीं, जैसी लक्ष्मीदेवी खूबसूरत है वैसी ही मुन्दर भी है और औरतों की सूरत-शक्ल प्रायः विवाह होने के बाद शीघ्र ही बदल जाती है अस्तु सूरत-शक्ल के बारे में कोई कुछ कह नहीं सकेगा, परन्तु जब पुरानी बातें निकलेंगी और मुन्दर कुछ जबाब न दे सकेगी तब कठिन होगा। अतएव लक्ष्मीदेवी का कुछ हाल, उसके लड़कपन की कैफियत, उसके रिश्तेदारों और सखी-सहेलियों के नाम और उनकी तथा उनके घरों की अवस्था से मुन्दर को पूरी तरह जानकारी हो जानी चाहिए। अगर वह सब हाल हम बलभद्रसिंह से पूछेंगे तो वह कदापि न बतायेगा, हाँ, अगर किसी दूसरे आदमी को बलभद्रसिंह बनाया जाय और वह कुछ दिनों तक लक्ष्मीदेवी के साथ रह कर इन बातों का पता लगावे तब चल सकता है, इत्यादि बातों को सोच कर ही दारोगा ने उपरोक्त चालाकी की और कृतकार्य भी हुआ अर्थात् दो ही चार महीने में नकली बलभद्रसिंह को लक्ष्मीदेवी का पूरा-पूरा हाल मालूम हो गया। उसने सब हाल दारोगा से कहा और दारोगा ने मुन्दर को सिखा-पढ़ा दिया।

जब इन बातों से दारोगा की दिलजमई हो गई तो उसने नकली बलभद्रसिंह को कैदखाने से बाहर कर दिया और फिर मुद्दत तक लक्ष्मीदेवी को अकेले ही कैद की तकलीफ उठानी पड़ी।

9

एक दिन लक्ष्मीदेवी उस कैदखाने में बैठी हुई अपनी किस्मत पर रो रही थी कि दाहिनी तरफ वाली कोठरी में से एक नकाबपोश को निकलते देखा। लक्ष्मीदेवी ने समझा कि यह वही नकाबपोश है जिसने मेरे बाप की जान बचाई थी, मगर तुरन्त ही उसे मालूम हो गया कि यह कोई दूसरा है क्योंकि उसके और इसके डील-डौल में बहुत फर्क था। जब नकाबपोश जंगले के पास आया, तब लक्ष्मीदेवी ने पूछा, "तुम कौन हो और यहाँ क्यों आये हो ?"

नकाबपोश—मैं अपना परिचय तो नहीं दे सकता परन्तु इतना कह सकता हूँ कि बहुत दिनों से मैं इस फिक्र में था कि इस कैदखाने से किसी तरह तुमको निकाल दूँ मगर मौका न मिल सका, आज उसका मौका मिलने पर यहाँ आया हूँ, बस विलम्ब न करो और उठो।

इतना कह नकाबपोश ने जंगला खोल दिया।

लक्ष्मीदेवी—और मेरे पिता ?

नकाबपोश—मुझे मालूम नहीं कि वे कहाँ कैद हैं या किस अवस्था में हैं, यदि मुझे उनका पता लग जायगा तो मैं उन्हें भी छुड़ाऊँगा।

यह सुनकर लक्ष्मीदेवी चुप हो रही और कुछ सोच-विचार कर आँखों से आँसू टपकाती हुई जंगले के बाहर निकली। नकाबपोश उसे साथ लिये हुए उसी कोठरी में घुसा जिसमें से वह स्वयं आया था। अब लक्ष्मीदेवी को मालूम हुआ कि यह एक सुरंग का मुहाना है। बहुत दूर तक नकाबपोश के पीछे जा और कई दरवाजे लाँघ कर उसे आसमान दिखाई दिया और मैदान की ताजी हवा भी मयस्सर हुई। उस समय नकाबपोश ने पूछा, "कहो, अब तुम क्या करोगी और कहाँ जाओगी ?"

लक्ष्मीदेवी—मैं नहीं कह सकती कि कहाँ जाऊँगी और क्या करूँगी बल्कि डरती हूँ कि कहीं फिर दारोगा के कब्जे में न पड़ जाऊँ, हाँ, यदि तुम मेरे साथ कुछ और भी नेकी करो और मुझे मेरे घर तक पहुँचाने का बन्दोबस्त कर दो तो अच्छा हो।

नकाबपोश—(ऊँची साँस लेकर) अफसोस, तुम्हारा घर बर्बाद हो गया और इस समय वहाँ कोई नहीं है। तुम्हारी दूसरी माँ अर्थात् तुम्हारी मौसी मर गई, तुम्हारी दोनों छोटी बहिनें राजा गोपालसिंह के यहाँ आ पहुँची हैं और मायारानी को, जो तुम्हारे बदले में गोपालसिंह के गले मढ़ी गई है, अपनी सगी बहिन समझ कर उसी के साथ रहती हैं।

लक्ष्मीदेवी—मैंने तो सुना था कि मेरे बदले में मुन्दर राजरानी बनाई गई है।

नकाबपोश—हाँ, वही मुन्दर अब मायारानी के नाम से प्रसिद्ध हो रही है।

लक्ष्मीदेवी—क्या मैं अपनी बहिनों से या राजा गोपालसिंह से मिल सकती हूँ ?

नकाबपोश—नहीं।

लक्ष्मीदेवी—क्यों ?

नकाबपोश—इसलिए कि अभी महीना भर भी नहीं हुआ कि राजा गोपालसिंह का भी इन्तकाल हो गया। अब तुम्हारी फरियाद सुननेवाला वहाँ कोई नहीं है और यदि तुम वहाँ जाओगी और मायारानी को कुछ मालूम हो जायगा तो तुम्हारी जान कदापि न बचेगी।

इतना सुनकर लक्ष्मीदेवी अपनी बदकिस्मती पर रोने लगी और वह नकाबपोश उसे समझाने-बुझाने लगा। अन्त में लक्ष्मीदेवी ने कहा, "अच्छा, फिर तुम्हीं बताओ कि मैं कहाँ जाऊँ और क्या करूँ?"

नकाबपोश—(कुछ देर सोचकर) तो तुम मेरे ही घर चलो। मैं तुम्हें अपनी ही बेटी समझूंगा और परवरिश करूँगा।

लक्ष्मीदेवी—मगर तुम तो अपना परिचय तक नहीं देते!

नकाबपोश—(ऊँची साँस लेकर) खैर अब तो परिचय देना ही पड़ा और कहना ही पड़ा कि मैं तुम्हारे बाप का दोस्त 'इन्द्रदेव' हूँ।

इतना कहकर नकाबपोश ने चेहरे से नकाब उतारी और पूर्ण चन्द्र की रोशनी ने उसके चेहरे के हर एक रग-रेशे को अच्छी तरह दिखा दिया। लक्ष्मीदेवी उसे देखते ही पहचान गई और दौड़कर उसके पैरों पर गिर पड़ी। इन्द्रदेव ने उसे उठा कर उसका सिर छाती से लगा लिया और तब उसे अपने घर ले जाकर गुप्त रीति से बड़ी खातिरदारी के साथ अपने यहाँ रक्खा।

लक्ष्मीदेवी का दिल फोड़े की तरह पका हुआ था। वह अपनी नई जिन्दगी में तरह-तरह की तकलीफें उठा चुकी थी। अब भी वह अपने बाप को खोज निकालने की फिक्र में लगी हुई थी और इसके अतिरिक्त उसका ज्यादा ख़याल इस बात पर था कि किसी तरह मुझे अपने दुश्मनों से बदला लेना चाहिए। इस विषय पर उसने बहुत-कुछ विचार किया और अन्त में यह निश्चय किया कि इन्द्रदेव से ऐयारी सीखनी चाहिए। क्योंकि वह खूब जानती थी कि इन्द्रदेव ऐयारी के फन में बड़ा ही होशियार है। आखिर उसने अपने दिल का हाल इन्द्रदेव से कहा और इन्द्रदेव ने भी उसकी राय पसन्द की तथा दिलोजान से कोशिश करके उसे ऐयारी सिखाने लगा। यद्यपि वह दारोगा का गुरुभाई था तथापि दारोगा की करतूतों ने उसे हद से ज्यादा रंजीदा कर दिया था और उसे इस बात की कुछ भी परवाह न थी कि लक्ष्मीदेवी ऐयारी के फन में होशियार हो कर दारोगा से बदला लेगी। निःसन्देह इन्द्रदेव ने बड़ी मर्दानगी की और दोस्ती का हक जैसा चाहिए था वैसा ही निबाहा। उसने बड़ी मुस्तैदी के साथ लक्ष्मीदेवी को ऐयारी की विद्या सिखाई, बड़े-बड़े ऐयारों के किस्से सुनाये, एक-से-एक बढ़े-चढ़े नुस्खे सिखलाये, और ऐयारी के गूढ़ तत्वों को उसके दिल में नक्श (अंकित) कर दिया। थोड़े ही दिनों में लक्ष्मीदेवी पूरी ऐयारा हो गई और इन्द्रदेव की मदद से अपना नाम तारा रख कर मैदान की हवा खाने और दुश्मनों से बदला लेने की फिक्र में घूमने लगी।

लक्ष्मीदेवी ने तारा बनकर जो-जो काम किये, उन सब में इन्द्रदेव की राय लेती रही और इन्द्रदेव भी बराबर उसकी मदद और खबरदारी करते रहे।

यद्यपि इन्द्रदेव ने लक्ष्मीदेवी की जान बचाई, उसे अपनी लड़की के समान पाल

कर सब लायक किया, और बहुत दिनों तक अपने साथ रक्खा मगर उनके दो-एक सच्चे प्रेमियों के सिवाय लक्ष्मीदेवी का हाल और किसी को मालूम न हुआ, और इन्द्रदेव ने भी किसी को उसकी सूरत तक न देखने दी। इस बीच में पच्चीसों दफा कम्बख्त दारोगा इन्द्रदेव के घर गया और इन्द्रदेव ने भी अपने दिल का भाव छिपा कर हर तरह से उसकी खातिरदारी की, मगर दारोगा तक को इस बात का पता न लगा कि जिस लक्ष्मीदेवी को मैंने कैद किया था वह इन्द्रदेव के घर में मौजूद है और इस लायक हो रही है कि कुछ दिनों के बाद हमीं लोगों से बदला ले।

लक्ष्मीदेवी का तारा नाम इन्द्रदेव ही ने रक्खा था। जब तारा हर तरह से होशियार हो गई और वर्षों की मेहनत से उसकी सूरत-शक्ल में भी बहुत बड़ा फर्क पड़ गया तब इन्द्रदेव ने उसे आज्ञा दी कि तू मायारानी के घर जाकर अपनी बहिन कमलिनी से मिल, जो बहुत ही नेक और सच्ची है, मगर अपना असली परिचय न देकर उसके साथ मोहब्बत पैदा कर और ऐसा उद्योग कर कि उसमें और मायारानी में लड़ाई हो जाय और वह उस घर से निकल कर अलग हो जाय, फिर जो कुछ होगा देखा जायगा। केवल इतना ही नहीं, इन्द्रदेव ने उसे एक प्रशंसापत्र भी दिया जिसमें यह लिखा हुआ था —

"मैं तारा को अच्छी तरह जानता हूँ। यह मेरी धर्म की लड़की है। इसकी चाल-चलन बहुत ही अच्छी है और नेक तथा धार्मिक लोगों के लिए यह विश्वास करने योग्य है।"

इन्द्रदेव ने तारा को यह भी कह दिया था कि मेरा यह पत्र सिवाय कमलिनी के के और किसी को न दिखाना और जब इस बात का निश्चय हो जाय कि वह तुझ पर मुहब्बत रखती है तब उसको एक दफा किसी तरह से मेरे घर लेकर आना, फिर जैसा होगा मैं समझ लूँगा।

आखिर ऐसा ही हुआ अर्थात् तारा इन्द्रदेव के वल पर निडर होकर मायारानी के महल में चली गई और कमलिनी की नौकरी कर ली। उसे पहचानना तो दूर रहा, किसी को इस बात का शक भी न हुआ कि यह लक्ष्मीदेवी है।

तीन महीने के अन्दर उसने कमलिनी को अपने ऊपर मोहित कर लिया और मायारानी के इतने ऐब दिखाए कि कमलिनी को एक सायत के लिए भी मायारानी के पास रहना कठिन हो गया। जब उसने अपने बारे में तारा से राय ली तब तारा ने उसे इन्द्रदेव से मिलने के लिए कहा और इस बारे में बहुत जोर दिया। कमलिनी ने तारा की बात मान ली और तारा उसे इन्द्रदेव के पास ले आई। इन्द्रदेव ने कमलिनी की बड़ी खातिर की और जहाँ तक बन पड़ा उसे उभाड़ कर खुद इस बात की प्रतिज्ञा की कि 'यदि तू मेरा भेद गुप्त रक्खेगी तो मैं वराबर तेरी मदद करता रहूँगा।"

उन दिनों तालाब के बीच वाला तिलिस्मी मकान बिल्कुल उजाड़ पड़ा हुआ था और सिवाय इन्द्रदेव के उसका भेद किसी को मालूम न था। इन्द्रदेव ही के बताने से कमलिनी ने उस मकान में अपना डेरा डाला और हर तरह से निडर होकर वहाँ रहने लगी और इसके बाद जो कुछ हुआ, हमारे प्रेमी पाठकों को मालूम ही है या हो जायगा।

10

भूतनाथ जब राजा गोपालसिंह से बिदा हुआ, तो अपने शागिर्द को साथ लिये हुए शहर से बाहर निकला और बातचीत करता हुआ आधी रात जाते-जाते वह एक घने जंगल के बीचोंबीच में पहुँचा जहाँ एक साधारण ढंग की कुटी बनी हुई थी और उसके दरवाजे पर दो आदमी भी बैठे हुए धीरे-धीरे बातचीत कर रहे थे। वे दोनों भूतनाथ को देखते ही उठ खड़े हुए और सलाम करके बोले—

एक—क्या राजा गोपालसिंह से आपका कुछ काम निकला ?

भूतनाथ—कुछ भी नहीं।

दूसरा—(आश्चर्य से) सो क्यों ?

भूतनाथ—ठहरो, जरा दम ले लूं तो कहूँ—और सब लोग कहाँ गये हैं ?

एक—घूमने-फिरने गये हैं, आते ही होंगे !

भूतनाथ—अच्छा, कुछ खाने-पीने के लिए हो तो लाओ।

इतना सुनते ही एक आदमी कुटी के अन्दर चला गया और एक लम्बा-चौड़ा कम्बल ला कुटी के बाहर बिछा कर फिर अन्दर लौट गया। भूतनाथ उसी कम्बल पर बैठ गया। दूसरा आदमी कुछ खाने की चीजें और जल से भरा हुआ लोटा ले आया और उस आदमी को, जो भूतनाथ के साथ-ही-साथ यहाँ तक आया था, इशारा करके कुटी के अन्दर ले गया। भूतनाथ खा-पीकर निश्चिन्त हुआ ही था कि उसके बाकी आदमी भी जो कि इधर-उधर घूमने के लिए गए थे, आ पहुँचे और भूतनाथ को सलाम करने के बाद इशारा पाकर उसके सामने बैठ कर बातचीत करने लगे। इस जगह यह लिखने की कोई जरूरत नहीं कि इन लोगों में क्या-क्या बातें हुईं। रात भर सलाह और बातचीत करने के बाद भूतनाथ उन लोगों को समझा-बुझा और कई काम करने के लिए ताकीद करके सवेरा होते-होते अकेला वहाँ से रवाना हो गया और इन्द्रदेव के मकान की तरफ चल निकला।

दोपहर से कुछ ज्यादा दिन ढल चुका था जब भूतनाथ इन्द्रदेव की पहाड़ी पर जा पहुँचा और उस खोह के बाहर खड़ा होकर जो इन्द्रदेव के मकान में जाने का दरवाजा था इधर-उधर देखने लगा। किसी को न देखा तो एक पत्थर की चट्टान पर बैठ गया क्योंकि वह इन्द्रदेव के मकान में पहुँचने का रास्ता नहीं जानता था। हाँ, यह बात उसे जरूर मालूम थी कि इन्द्रदेव की आज्ञा के बिना या जब तक इन्द्रदेव का कोई आदमी अपने साथ न ले जाय कोई उस सुरंग को पार करके इन्द्रदेव के पास नहीं पहुँच सकता। इसके पहले भी इन्द्रदेव के पास जाने का भूतनाथ को मौका मिला था, मगर हर दफा इन्द्रदेव का आदमी भूतनाथ की आँखों पर पट्टी बाँध कर ही उसे खोह के अन्दर ले गया था।

भूतनाथ घण्टे भर तक उसी चट्टान पर बैठा रहा, इसके बाद इन्द्रदेव का एक आदमी खोह के बाहर निकला जो भूतनाथ को अच्छी तरह पहचानता था और भूतनाथ

भी उसे जानता था। उस आदमी ने साहब-सलामत करने के बाद भूतनाथ से पूछा, "कहिये, आप कहाँ से आये ?"

भूतनाथ—आपके मालिक इन्द्रदेव से मिलने के लिए आया हूँ और बड़ी देर से यहाँ बैठा हूँ।

आदमी—तो क्या आपकी इत्तिला करनी होगी ?

भूतनाथ—अवश्य।

आदमी—अच्छा तो आप थोड़ी देर तक और तकलीफ कीजिये, मैं अभी जाकर खबर करता हूँ।

इतना कहकर वह आदमी तुरन्त लौट गया। एक घण्टे के बाद वह और भी दो आदमियों को अपने साथ लिये हुए आया और भूतनाथ से बोला, "चलिये, मगर आँखों पर पट्टी बँधवाने की तकलीफ आपको उठानी पड़ेगी।" इसके जवाब में भूतनाथ यह कहकर उठ खड़ा हुआ, "सो तो मैं पहले ही से जानता हूँ।"

भूतनाथ की आँखों पर पट्टी बाँध दी गई और वे तीनों आदमी उसे अपने साथ लिये हुए इन्द्रदेव के पास जा पहुँचे। इन्द्रदेव के स्थान और उसके मकान की कैफियत हम पहले लिख चुके हैं इस लिए यहाँ पुनः न लिखकर असल मतलब पर ध्यान देते हैं।

जिस समय भूतनाथ इन्द्रदेव के सामने पहुँचा, उस समय इन्द्रदेव अपने कमरे में मसनद के सहारे बैठे हुए कोई ग्रंथ पढ़ रहे थे। भूतनाथ को देखते ही उन्होंने मुस्कुराकर कहा, "आओ-आओ भूतनाथ, अबकी तो बहुत दिनों पर मुलाकात हुई है!"

भूतनाथ—(सलाम करके) बेशक बहुत दिनों में मुलाकात हुई है। क्या कहूँ, जमाने के हेर-फेर ने ऐसे-ऐसे कुढंगे कामों में फँसा दिया और अभी तक फँसा रखा है कि मेरी कमजोर जान को किसी तरह छुटकारे का दिन नसीब नहीं होता और इसी मे आज बहुत दिनों पर आपके भी दर्शन हुए हैं।

इन्द्रदेव—(हँसकर) तुम्हारी और कमजोर जान! जो भूतनाथ हजारों मजबूत आदमियों को भी नीचा दिखाने की ताकत रखता है वह कहे कि 'मेरी कमजोर जान!'

भूतनाथ—बेशक ऐसा ही है। यद्यपि मैं अपने को बहुत-कुछ कर गुजरने लायक समझता था, मगर आजकल ऐसी आफत में जान फँसी हुई है कि अक्ल कुछ काम नहीं करती।

इन्द्रदेव—क्या, बात है? कुछ कहो भी तो!

भूतनाथ—मैं यही सब कहने और आपसे ममद माँगने के लिए तो आया ही हूँ।

इन्द्रदेव—मदद माँगने के लिए!

भूतनाथ—जी हाँ, आपसे बहुत बड़ी मदद की मुझे आशा है।

इन्द्रदेव—सो कैसे? क्या तुम नहीं जानते कि मायारानी का तिलिस्मी दारोगा मेरा गुरुभाई है और वह तुम्हें दुश्मनी की निगाह से देखता है?

भूतनाथ—इन बातों को मैं खूब जानता हूँ और इतना जानने पर भी आपसे मदद लेने के लिए आया हूँ।

इन्द्रदेव—यह तुम्हारी भूल है।

भूतनाथ—नहीं मेरी भूल कदापि नहीं है, यद्यपि आप दारोगा के गुरुभाई हैं, मगर मैं इस बात को भी अच्छी तरह जानता हूँ कि आपके और उसके मिजाज में उलटे-सीधे का फर्क है, और मैं जिस काम में आपसे मदद लिया चाहता हूँ, वह नेक और धर्म का काम है।

इन्द्रदेव—(कुछ सोचकर) अगर तुम यह समझ कर कि मैं तुम्हारी मदद नहीं करूँगा, अपना मतलब कह सकते हो तो कहो, जैसा होगा मैं जवाब दूंगा।

भूतनाथ—यह तो मैं समझ ही नहीं सकता कि आपसे किसी तरह की मदद नहीं मिलेगी, मदद मिलेगी और जरूर मिलेगी क्योंकि आपसे और बलभद्रसिंह से दोस्ती थी और उस दोस्ती का बदला आप उस तरह नहीं अदा कर सकते जिस तरह दारोगा साहब ने किया था।

इस समय उस कमरे में वे तीनों आदमी भी मौजूद थे जो भूतनाथ को अपने साथ यहाँ तक लाये थे, इन्द्रदेव ने उन तीनों को बिदा करने के बाद कहा—

इन्द्रदेव—क्या तुम उस बलभद्रसिंह के बारे में मुझसे मदद लिया चाहते हो जिसे मरे आज कई वर्ष बीत चुके हैं ?

भूतनाथ—जी हाँ, उसी बलभद्रसिंह के बारे में, जिसकी लड़की तारा बनकर कमलिनी के साथ रहने वाली लक्ष्मीदेवी है और जिसे आप चाहे मरा हुआ समझते हैं, मगर मैं मरा हुआ नहीं समझता।

इन्द्रदेव—(आश्चर्य से) क्या तारा ने अपना भेद प्रकट कर दिया ! और क्या तुम्हें कोई ऐसा सबूत मिला है जिससे समझा जाए कि बलभद्रसिंह अभी तक जीता है ?

भूतनाथ—जी, तारा का भेद यकायक प्रकट हो गया है जिसे मैं भी नहीं जानता था कि वह लक्ष्मीदेवी है, और बलभद्रसिंह के जीते रहने का सबूत भी मुझे मिल गया, मगर आपने तारा का नाम इस ढंग से लिया, जिससे मालूम होता है कि आप तारा का असल भेद पहले ही से जानते थे।

इन्द्रदेव—नहीं-नहीं, मैं भला क्योंकर जानता था कि तारा लक्ष्मीदेवी है। यह तो आज तुम्हारे ही मुँह से मालूम हुआ है। अच्छा तुम पहले यह तो कह जाओ कि तारा का भेद क्योंकर प्रकट हुआ, तुम किस मुसीबत में पड़े हो, और इस बात का क्या सबूत तुम्हारे पास है कि बलभद्रसिंह अभी तक जीते हैं ? क्या बलभद्रसिंह जान-बूझकर कहीं छिपे हुए हैं या किसी की कैद में हैं ?

भूतनाथ—नहीं-नहीं, बलभद्रसिंह जान-बूझकर छिपे हुए नहीं हैं बल्कि कहीं कैद हैं। मैं उन्हें छुड़ाने की फिक्र में लगा हूँ और इसी काम में आपसे मदद लिया चाहता हूँ क्योंकि अगर बलभद्रसिंह का पता लग गया तो आपको दो जानें बचाने का पुण्य मिलेगा।

इन्द्रदेव—दूसरा कौन ?

भुननाथ—दूसरा मैं, क्योंकि अगर बलभद्रसिंह का पता न लगेगा तो निश्चय है कि मैं भी मारा जाऊँगा।

इन्द्रदेव—अच्छा, तुम पहले अपना पूरा हाल कह जाओ !

इतना सुनकर भूतनाथ ने अपना हाल उस जगह से, जब भगवनिया के सामने

नकली बलभद्रसिंह से उससे मुलाकात हुई थी कहना शुरू किया और इन्द्रदेव बड़े गौर से उसे सुनते रहे। भूतनाथ ने कैदियों की हालत में अपना रोहतासगढ़ पहुँचना, कृष्णजिन्न से मुलाकात होना, मायारानी और दारोगा इत्यादि की गिरफ्तारी, राजा वीरेन्द्रसिंह के आगे मुकदमे की पेशी, कृष्णजिन्न के पेश किये हुए अनूठे कलमदान की कैफियत, असली बलभद्रसिंह को खोज निकालने के लिए अपनी रिहाई और राजा गोपालसिंह के पास से बिना कुछ मदद पाये बैरंग लौट आने का हाल सब पूरा-पूरा इन्द्रदेव से कह सुनाया। इन्द्रदेव थोड़ी देर तक चुपचाप कुछ सोचते रहे। भूतनाथ ने देखा कि उनके चेहरे का रंग थोड़ी-थोड़ी देर में बदलता है और कभी लाल कभी सफेद और कभी जर्द होकर उनके दिल की अवस्था का थोड़ा-बहुत हाल प्रकट करता है।

इन्द्रदेव—(कुछ देर बाद) मगर तुम्हारे इस किस्से में कोई ऐसा सबूत नहीं मिला जिससे बलभद्रसिंह का अभी तक जीते रहना साबित होता हो।

भूतनाथ—क्या मैंने आपसे अभी नहीं कहा कि असली बलभद्रसिंह के जीते रहने का मुझे शक हुआ और कृष्ण जिन्न ने मेरे उस शक को यह कह कर विश्वास के साथ बदल दिया कि 'बेशक असली बलभद्रसिंह अभी तक कहीं कैद है और तू जिस तरह हो सके उसका पता लगा।''

इन्द्रदेव—हाँ, यह तो तुमने कहा, मगर मैं यह तो नहीं जानता कि कृष्णजिन्न कौन है और उसकी बातों पर कहाँ तक विश्वास करना चाहिए।

भूतनाथ—अफसोस, आपने कृष्ण जिन्न की कार्रवाई पर अच्छी तरह ध्यान नहीं दिया जो मैं अभी आपसे कह चुका हूँ। यद्यपि मैं स्वयं उसे नहीं जानता परन्तु जिस समय कृष्णजिन्न ने वह अनूठा कलमदान पेश किया, जिसे देखते ही नकली बलभद्रसिंह की आधी जान निकल गई, जिस पर निगाह पड़ते ही लक्ष्मीदेवी बेहोश हो गई, जिसे एक झलक ही में मैं पहचान गया, जिस पर मीनाकारी की तीन तस्वीरें बनी हुई थीं, और जिस पर बिचली तस्वीर के नीचे मीनाकारी के मोटे खूबसूरत अक्षरों में 'इन्दिरा' लिखा हुआ था, उसी समय मैं समझ गया कि यह साधारण मनुष्य नहीं है।

इन्द्रदेव—(चौंक कर) क्या कहा! क्या लिखा हुआ था?—'इन्दिरा!'

और यह कहने के साथ ही इन्द्रदेव के चेहरे का रंग उड़ गया तथा आश्चर्य ने उस पर अपना दखल जमा लिया।

भूतनाथ—हाँ-हाँ, 'इन्दिरा'—बेशक यही लिखा हुआ था।

अब इन्द्रदेव अपने को किसी तरह सम्हाल न सका। वह घबड़ा कर उठ खड़ा हुआ और धीरे-धीरे निम्नलिखित बातें कहता हुआ इधर-उधर घूमने लगा—

''ओफ,मुझे धोखा हुआ! वाह रे दारोगा, तूने इन्द्रदेव ही पर अपना हाथ साफ किया, जिसने तेरे सैकड़ों कसूर माफ किये और फिर भी तेरे रोने-पीटने और बड़ी-बड़ी कसमें खाने पर विश्वास करके तुझे राजा वीरेन्द्रसिंह की कैद से छुड़ाया! वाह रे जैपाल तुझे तो इस तरह तड़पा-तड़पाकर मारूँगा कि गन्दगी पर बैठने वाली मक्खियों को भी तेरे हाल पर रहम आवेगा! लक्ष्मीदेवी का बाप बनकर चला था मायारानी और दारोगा की मदद करने! वाह रे कृष्ण जिन्न, ईश्वर तेरा भला करे! मगर इसमें भी कोई शक

नहीं कि तुझको ये बातें हाल ही में मालूम हुई हैं। आह, मैंने वास्तव में धोखा खाया। लक्ष्मीदेवी की बहुत ही प्यारी इन्दिरा! अच्छा-अच्छा, ठहर जा, देख तो सही मैं क्या करता हूँ। भूतनाथ ने यद्यपि बहुत से बुरे काम किये हैं परन्तु अब वह उनका प्रायश्चित्त भी बड़ी खूबी के साथ कर रहा है। (भूतनाथ की तरफ देखकर) अच्छा-अच्छा, मैं तुम्हारा साथ दूँगा, मगर अभी नहीं, जब तक मैं उस कलमदान को अपनी आँखों से न देख लूँगा तब तक मेरा जी ठिकाने न होगा।"

भूतनाथ—(जो बड़े गौर से इन्द्रदेव का बड़बड़ाना सुन रहा था) हाँ-हाँ, आप उसे देख सकते हैं, मेरे साथ रोहतासगढ़ चलिये।

इन्द्रदेव—तुम्हारे साथ चलने की कोई आवश्यकता नहीं, तुम इसी जगह रहो, मैं अकेला ही जाऊँगा और बहुत जल्द ही लौट आऊँगा।

इतना कहकर इन्द्रदेव ने ताली बजाई और आवाज के साथ ही अपने दो आदमियों को कमरे के अन्दर आते देखा। इन्द्रदेव अपने आदमियों से यह कह कर कि "तुम लोग भूतनाथ को खातिरदारी के साथ यहाँ रखो, जब तक कि मैं एक छोटे सफर से न लौट आऊँ" कमरे के बाहर हो गये और तब दूसरे कमरे में जिसकी ताली वे अपने पास ही रखा करते थे, ताला खोल कर चले गये। इस कमरे में खूँटियों के सहारे तरह-तरह के कपड़े, ऐयारी के बहुत से बटुए, रंग-बिरंग के नकाब, एक से एक बढ़कर नायाब और बेशकीमत हर्बे और कमरबन्द वगैरह लटक रहे थे और एक तरफ लोहे तथा लकड़ी के छोटे-बड़े कई सन्दूक भी रखे हुए थे। इन्द्रदेव ने अपने मतलब का एक जोड़ा (बेशकीमत पोशाक) खूँटी से उतार कर पहन लिया और जो कपड़े पहले पहने हुए थे, उतारकर एक तरफ रख दिये। सुर्ख रंग की नकाब उतार कर चेहरे पर लगाई, ऐयारी का बटुआ बगल में लटकाने के बाद बेशकीमती हर्बों से अपने को दुरुस्त किया, और इसके बाद लोहे के एक सन्दूक में से कुछ निकाल कर कमर में रख कमरे के बाहर निकल आये, कमरे का ताला बन्द किया और तब बिना भूतनाथ से मुलाकात किये ही वहाँ से रवाना हो गये।

11

रोहतासगढ़ में महल के अन्दर एक खूबसूरत सजे हुए कमरे में राजा वीरेन्द्रसिंह ऊँची गद्दी के ऊपर बैठे हुए हैं, बगल में तेजसिंह और देवीसिंह बैठे हैं, तथा सामने की तरफ किशोरी, कामिनी, लक्ष्मीदेवी, कमलिनी, लाड़िली और कमला अदब के साथ सिर झुकाये बैठी हैं। आज राजा वीरेन्द्रसिंह अपने दोनों ऐयारों के सहित यहाँ बैठकर उन सभी की बीती हुई दुःखभरी कहानी बड़े गौर से कुछ सुन चुके हैं और बाकी सुन रहे हैं। दरवाजे पर भैरोंसिंह और तारासिंह खड़े पहरा दे रहे हैं। किसी लौंडी तक को भी वहाँ आने की आज्ञा नहीं है। किशोरी, कामिनी, कमलिनी, कमला और लक्ष्मीदेवी का हाल सुन चुके हैं, इस समय लाड़िली अपना किस्सा कह रही है।

लाड़िली अपना किस्सा कहते-कहते बोली—

लाड़िली—जब मायारानी की आज्ञानुसार धनपत और मैं नानक और किशोरी के साथ दुश्मनी करने के लिए जमानिया से निकलीं तो शहर के बाहर होकर हम दोनों अलग-अलग हो गईं। इत्तिफाक की बात है कि धनपत सूरत बदल कर इसी किले में आ रही और मैं भी घूमत-फिरती, भेष बदले हुए किशोरी का यहाँ होना सुनकर इसी किले में आ पहुँची और हम दोनों ही ने रानी साहिबा की नौकरी कर ली। उस समय मेरा नाम लाली था। यद्यपि इस मकान में मेरी और धनपत की मुलाकात हुई और बहुत दिनों तक हम दोनों आदमी एक ही जगह रहे भी, मगर न तो मैंने धनपत को पहचाना जो कुन्दन के नाम से यहाँ रहती थी और न धनपत ही ने मुझे पहचाना। (ऊँची साँस लेकर) अफसोस, मुझे उस समय का हाल कहते शर्म मालूम होती है, क्योंकि मैं बेचारी निर्दोष किशोरी के साथ दुश्मनी करने के लिए तैयार थी। यद्यपि मुझे किशोरी की अवस्था पर रहम आता था मगर मैं लाचार थी, क्योंकि मायारानी के कब्जे में थी और इस बात को खूब समझती थी कि यदि मैं मायारानी का हुक्म न मानूँगी तो निःसन्देह वह मेरा सिर काट लेगी।

इतना कहकर लाड़िली रोने लगी।

वीरेन्द्रसिंह—(दिलासा देते हुए) बेटी, अफसोस करने को कोई जगह नहीं है। यह तो बनी-बनाई बात है कि यदि कोई धर्मात्मा या नेक आदमी शैतान के कब्जे में पड़ा हुआ होता है तो उसे झक मार कर शैतान की बात माननी पड़ती है। मैं खूब समझता हूँ और विश्वास दिला चुका हूँ कि तू नेक है तेरा कोई दोष नहीं, जो कुछ किया कम्बख्त दारोगा तथा मायारानी ने किया, अस्तु तू कुछ चिन्ता मत कर और अपना हाल कह।

आँचल से आँसू पोंछ कर लाड़िली ने फिर कहना शुरू किया—

लाडिली—मैं चाहती थी कि किशोरी को अपने कब्जे में कर लूँ और तिलिस्मी तहखाने की राह से बाहर होकर इसे मायारानी के पास ले जाऊँ तथा धनपत का भी इरादा यही था। इस सबब से कि यहाँ का तहखाना एक छोटा-सा तिलिस्म है और जमानिया के तिलिस्म से सम्बन्ध रखता है, यहाँ के तहखाने का बहुत-कुछ हाल मायारानी को मालूम है और उसने मुझे और धनपत को बता दिया था। अस्तु, किशोरी को लेकर यहाँ के तहखाने की राह से निकल जाना मेरे या धनपत के लिए कोई बड़ी बात न थी। इसके अतिरिक्त यहाँ एक बुढ़िया रहती थी जो रिश्ते में राजा दिग्विजयसिंह की बूआ होती थी। वह बड़ी ही सीधी नेक तथा धर्मात्मा थी और बड़ी सीधी चाल बल्कि फकीरी ढंग पर रहा करती थी। मैंने सुना है कि वह मर गई, अगर जीती होती तो आपसे मुलाकात करा देती। खैर, मुझे यह बात मालूम हो चुकी थी कि वह बुढ़िया यहाँ के तहखाने का हाल बहुत ज्यादा जानती है अतएव मैंने उससे दोस्ती पैदा कर ली और तब मुझे मालूम हुआ कि वह किशोरी पर दया करती है और चाहती है कि यह किसी तरह यहाँ से निकलकर राजा वीरेन्द्रसिंह के पास पहुँच जाय। मैंने उसके दिल में विश्वास दिला दिया कि किशोरी को यहाँ से निकाल कर चुनार पहुँचा देने के विषय में जी-जान से कोशिश करूँगी और इसीलिए उस बुढ़िया ने भी यहाँ के तहखाने का बहुत-सा हाल

मुझसे कहा बल्कि उस राह से निकल जाने की तरकीब भी बताई मगर धनपत जो कुन्दन के नाम से यहीं रहती थी बराबर मेरे काम में बाधा डाला करती और मैं भी इस फिक्र में लगी थी कि किसी तरह उसे दबाना चाहिए जिसमें वह मेरा मुकाबला न कर सके।

एक दिन आधी रात के समय मैं अपने कमरे से निकल कर कुन्दन के कमरे की तरफ चली। जब उसके पास पहुँची तो किसी आदमी के पैर की आहट मिली जो कुन्दन की तरफ जा रहा था। मैं रुक गई और वह आदमी कुछ आगे बढ़कर कुन्दन के मकान के पास पहुँचा जिसमें कुन्दन रहती थी। उसकी कुर्सी बहुत ऊँची थी, पाँच सीढ़ियाँ चढ़ कर सहन में पहुँचना होता था और उसके बाद कमरे के अन्दर जाने का दरवाजा था। वह कमरा अभी तक मौजूद है, शायद आप उसे देखें। सीढ़ियों के दोनों बगल चमेली की घनी टट्टी थी, मैं उसी टट्टी में छिपकर उस आदमी के लौट आने की राह देखने लगी जो मेरे सामने ही उस मकान में गया था। आधा घण्टे के बाद वह आदमी कमरे के बाहर निकला, उस समय कुन्दन भी उसके साथ थी। जब वह सहन की सीढ़ियाँ उतरने लगा तो कुन्दन ने उसे रोक कर धीरे से कहा, "मैं फिर कहे देती हूँ कि आपसे मुझे बड़ी उम्मीद है। जिस तरह आप गुप्त राह से इस किले के अन्दर आते हैं, उसी तरह मुझे किशोरी के सहित निकाल तो ले जायेंगे ?" इसके जवाब में उस आदमी ने कहा, "हाँ-हाँ, इस बात का तो मैं तुमसे वादा ही कर चुका हूँ, अब तुम किशोरी को अपने काबू में करने का उद्योग करो, मैं तीसरे-चौथे दिन यहाँ आकर तुम्हारी खबर ले जाया करूँगा।" इस पर कुन्दन ने फिर कहा, "मगर मुझे इस बात की खबर पहले ही हो जाया करे कि आज आप आधी रात के समय यहाँ आवेंगे तो अच्छा हो।" इसके जवाब में उस आदमी ने अपनी जेब में से एक नारंगी निकालकर कुन्दन के हाथ में दी और कहा, "इसी रंग की नारंगी उस दिन तुम बाग के उत्तर और पश्चिम वाले कोने में सन्ध्या के समय देखोगी जिस दिन तुमसे मिलने के लिए मैं यहाँ आने वाला होऊँगा।" कुन्दन ने वह नारंगी उसके हाथ से ले ली। सीढ़ियों के दोनों तरफ फूलों के गमले रक्खे हुए थे, उनमें से एक गमले में कुन्दन ने वह नारंगी रख दी और उस आदमी के साथ ही साथ थोड़ी दूर तक उसे पहुँचाने की नीयत से आगे की तरफ बढ़ गई। मैं छिपे-छिपे सब कुछ देख-सुन रही थी। जब कुन्दन आगे बढ़ गई और उस जगह निराला हुआ तब मैं झाड़ी के अन्दर से निकली और गमले में से उस नारंगी को लेकर जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाती हुई अपने मकान में चली आई। किशोरी अपना हाल कहते समय आपसे कह चुकी है 'कि एक दिन मैंने नारंगी दिखाकर कुन्दन को दबा लिया था।' यह वही नारंगी थी जिसे देखकर कुन्दन समझ गई कि मेरा भेद लाली को मालूम हो गया, यदि वह राजा साहब को इस बात की इत्तिला दे देगी और उस आदमी को, जो पुनः मेरे पास आने वाला है और जिसे इस बात की खबर नहीं है, गिरफ्तार करा देगी तो मैं मारी जाऊँगी, अस्तु उसे मुझसे दबना ही पड़ा क्योंकि वास्तव में यदि मैं चाहती तो कुन्दन के मकान में उस आदमी को गिरफ्तार करा देती, और उस समय महाराज दिग्विजयसिंह दोनों का सिर काटे बिना न रहते।

वीरेन्द्रसिंह—ठीक है, अब मैं समझ गया, अच्छा तो फिर यह भी मालूम हुआ

कि वह आदमी जो कुन्दन के पास आया करता था कौन था ?

लाड़िली—पीछे तो मालूम हो ही गया कि वह शेरसिंह थे और उन्होंने कुन्दन के बारे में धोखा खाया।

देवीसिंह—(वीरेन्द्रसिंह से) मैंने एक दफे आपसे अर्ज किया था कि शेरसिंह ने कुन्दन के बारे में धोखा खाने का हाल 'मुझसे खुद बयान' किया था और लाली को नीचा दिखाने या दबाने की नीयत से खून से लिखी किताब तथा 'आँचल पर गुलामी की दस्तावेज' वाला जुमला भी शेरसिंह ही ने कुन्दन को बताया था और शेरसिंह ने छिपकर किसी दूसरे आदमी की बातचीत से वह हाल मालूम किया था।

वीरेन्द्रसिंह—ठीक है, मगर यह नहीं मालूम हुआ कि शेरसिंह ने छिप कर जिन लोगों की बातचीत सुनी थी, वे कौन थे ?

देवीसिंह—हाँ, इसका हाल मालूम न हुआ, शायद लाड़िली जानती हो।

लाड़िली—जी हाँ जब मैं यहाँ से लौटकर मायारानी के पास गई तब मुझे मालूम हुआ कि वे लोग मायारानी के दोनों ऐयार, बिहारीसिंह और हरनामसिंह, थे जो हम लोगों का पता लगाने तथा राजकुमारों को गिरफ्तार करने की नीयत से इस तरफ आये हुए थे।

वीरेन्द्रसिंह—ठीक है, अच्छा तो अब हम यह सुनना चाहते हैं कि 'खून से लिखी किताब' और 'गुलामी की दस्तावेज' से क्या मतलब था और तू इन शब्दों को सुनकर क्यों डरी थी ?

लाड़िली—खून से लिखी किताब को तो आप जानते ही हैं जिसका दूसरा नाम 'रिक्तगन्थ' है और जो आजकल आपके कुँअर इन्द्रजीतसिंह जी के कब्जे में है।

वीरेन्द्र—हाँ-हाँ, सो क्यों न जानेंगे, वह तो हमारी ही चीज है और हमारे ही यहाँ से चोरी गई थी।

लाड़िली—जी हाँ, तो उन शब्दों के विषय में भी मैंने बहुत बड़ा धोखा खाया। अगर मैं कुन्दन को पहचान जाती तो मुझे उन शब्दों से डरने की आवश्यकता न थी। खून से लिखी किताब अर्थात् रिक्तगन्थ से जितना संबंध मुझे था उतना ही कुन्दन को भी मगर कुन्दन ने समझा कि मैं भूतनाथ के रिश्तेदारों में से हूँ जिसने रिक्तगन्थ की चोरी की थी और मैंने यह सोचा कि कुन्दन को मेरा असल हाल मालूम हो गया, वह जान गई कि मैं मायारानी की बहिन लाड़िली हूँ और राजा दिग्विजयसिंह को धोखा देकर रहती हूँ। मैं इस बात को खूब जानती थी कि यह रोहतासगढ़ का तहखाना जमानिया के तिलिस्म से संबंध रखता है और यदि राजा दिग्विजयसिंह के हाथ रिक्तगन्थ लग जाय तो वह बड़ा ही खुश हो क्योंकि वह रिक्तगन्थ का मतलब खूब जानता है और उसे यह भी मालूम था कि भूतनाथ ने रिक्तगन्थ की चोरी की थी और उसके हाथ से मायारानी रिक्तगन्थ ले लेने के उद्योग में लगी हुई थी और उस उद्योग में सबसे भारी हिस्सा मैंने ही लिया था। यह सब हाल उसे कम्बख्त दारोगा की जुबानी मालूम हुआ था क्योंकि वह राजा दिग्विजयसिंह से मिलने के लिए बराबर आया करता था और उससे मिला हुआ था। निःसन्देह अगर मेरा हाल राजा दिग्विजयसिंह को मालूम हो

जाता तो वह मुझे कैद कर लेता और रिक्तगन्थ के लिए मेरी बड़ी दुर्दशा करता। बस इसी खयाल ने मुझे बदहवास कर दिया और मैं ऐसा डरी कि तन-बदन की सुध जाती रही। क्या दिग्विजयसिंह कभी इस बात का सोचता था कि उसकी दारोगा से दोस्ती है और दारोगा लाड़िली का पक्षपाती है? कभी नहीं, वह बड़ा मतलबी और खोटा था।

वीरेन्द्रसिंह—बेशक ऐसा ही है और तुम्हारा डरना बहुत वाजिब था, मगर हाँ, एक बात तो तुमने कही ही नहीं।

लाड़िली—वह क्या ?

वीरेन्द्रसिंह—'आँचल पर गुलामी की दस्तावेज' से क्या मतलब था ?

राजा वीरेन्द्रसिंह की यह बात सुनकर लाड़िली शर्मा गई और उसने अपने दिल की अवस्था को रोककर सिर नीचा कर लिया। जब राजा वीरेन्द्रसिंह ने पुनः टोका तब हाथ जोड़कर बोली, "आशा है कि महाराजा साहब इसका जवाब चाहने के लिए जिद न करेंगे और मेरा यह अपराध क्षमा करेंगे। मैं इसका जवाब अभी नहीं देना चाहती और बहाना करना या झूठ बोलना भी पसन्द नहीं करती !"

लाड़िली की बात सुनकर राजा वीरेन्द्रसिंह चुप हो रहे और कोई दूसरी बात पूछा ही चाहते थे कि भैरोंसिंह ने कमरे के अन्दर पैर रक्खा।

वीरेन्द्रसिंह—(भैरों से) क्या बात है ?

भैरोंसिंह—बाहर से खबर आई है कि मायारानी के दारोगा के गुरुभाई इन्द्रदेव जिनका हाल मैं एक दफे अर्ज कर चुका हूँ, महाराज का दर्शन करने के लिए हाजिर हुए हैं। उन्हें ठहराने की कोशिश की गई थी मगर वह कहते हैं कि मैं पल-भर भी नहीं अटक सकता और शीघ्र ही मुलाकात की आशा रखता हूँ तथा मुलाकात भी महल के अन्दर लक्ष्मीदेवी के सामने करूँगा। यदि इस बात में महाराजा साहब को उज्र हो तो लक्ष्मीदेवी से राय लें और जैसा वह कहे वैसा करें।

इसके पहले कि वीरेन्द्रसिंह कुछ सोचें या लक्ष्मीदेवी से राय लें लक्ष्मीदेवी अपनी खुशी को न रोक सकी, उठ खड़ी हुई और हाथ जोड़कर बोली, "महाराज से मैं सविनय प्रार्थना करती हूँ कि इन्द्रदेवजी को इसी जगह आने की आज्ञा दी जाय। वे मेरे धर्म के पिता हैं, मैं अपना किस्सा कहते समय अर्ज कर चुकी हूँ कि उन्होंने ही मेरी जान बचाई थी, वे हम लोगों के सच्चे खैरख्वाह और भलाई चाहने वाले हैं।"

वीरेन्द्रसिंह—बेशक-बेशक, हम उन्हें इसी जगह बुलायेंगे, हमारी लड़कियों को उनसे पर्दा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। (भैरोंसिंह की तरफ देखकर) तुम स्वयं जाओ और उन्हें शीघ्र इसी जगह ले आओ।

"बहुत अच्छा" कहकर भैरोंसिंह चला गया और थोड़ी ही देर में इन्द्रदेव को अपने साथ लिये हुए आ पहुँचा। लक्ष्मीदेवी उन्हें देखते ही उनके पैरों पर गिर पड़ी और आँसू बहाने लगी। इन्द्रदेव ने उसके सिर पर हाथ फेर कर आशीर्वाद दिया, कमलिनी और लाड़िली ने भी उन्हें प्रणाम किया और राजा वीरेन्द्रसिंह ने सलाम का जवाब देने के बाद उन्हें बड़ी खातिर से अपने पास बैठाया।

वीरेन्द्रसिंह—(मुस्कुराते हुए) कहिये आप कुशल से तो हैं ! राह में कुछ तकलीफ तो नहीं हुई ?

इन्द्रदेव—(हाथ जोड़कर) आपकी कृपा से मैं बहुत अच्छा हूँ, सफर में हजार तकलीफ उठाकर आने वाला भी आपका दर्शन पाते ही कृतार्थ हो जाता है, फिर मेरी क्या बात है जिसे इस सफर पर ध्यान देने की छुट्टी अपने खयालों की उलझन की बदौलत बिल्कुल ही न मिली ।

वीरेन्द्रसिंह—तो मालूम होता है कि आप किसी भारी काम के लिए यहाँ आये हैं। (हँसकर) क्या अबकी फिर दारोगा साहब को छुड़ाकर ले जाने का इरादा है ?

इन्द्रदेव—(शर्मिन्दगी के साथ हँसकर) जी नहीं, अब मैं उस कम्बख्त की कुछ भी मदद नहीं कर सकता, जिसे गुरुभाई समझकर आपके कैदखाने से छुड़ाया था और आइन्दा नेकनीयती के साथ जिन्दगी बिताने की जिससे मैंने कसम ले ली थी। अफसोस, दिन-दिन उसकी शैतानियों का पता लगता ही जाता है ।

वीरेन्द्रसिंह—इधर का हाल तो आपने नहीं सुना होगा ?

इन्द्रदेव—जी भूतनाथ की जुबानी मैं सब हाल सुन चुका हूँ और इस सबब से ही हाजिर हुआ हूँ । मुझे यह देखकर बड़ी खुशी हुई कि लक्ष्मीदेवी को अपनायत के ढंग पर आपके सामने बैठने की इज्जत मिली है और वह बहुत तरह के दुःख सहने के बाद अब हर तरह से प्रसन्न और सुखी होना चाहती है ।

वीरेन्द्रसिंह—निःसन्देह लक्ष्मीदेवी को मैं अपनी लड़की के समान देख रहा हूँ और उसके साथ तुमने जो कुछ नेकी की है उसका हाल भी उसी की जुबानी सुनकर बहुत प्रसन्न हूँ । इस समय मेरे दिल में तुमसे मिलने की इच्छा हो रही थी और किसी को तुम्हारे पास भेजने के विचार में ही था कि तुम आ पहुँचे । बलभद्रसिंह और भूतनाथ के मामले ने तो हम लोगों को अजब दुविधा में डाल रखा है, अब कदाचित् तुम्हरी जुबानी उनका खुलासा हाल मालूम हो जाय ।

इन्द्रदेव—निःसन्देह वह एक आश्चर्य की घटना हो गई है जिसकी मुझे कुछ भी आशा न थी ।

लक्ष्मीदेवी—(इन्द्रदेव से) मेरे प्यारे चाचा ! (लक्ष्मी इन्द्रदेव को चाचा कहके ही पुकारा करती थी) जब भूतनाथ की जुबानी आप सब हाल सुन चुके हैं तो निःसन्देह मेरी तरह आपको भी इस बात का विश्वास हो गया कि मेरे बदकिस्मत पिता अभी तक जीते हैं, मगर कहीं कैद हैं ।

इन्द्रदेव—बेशक ऐसा ही है ।

वीरेन्द्रसिंह—तो क्या भूतनाथ उन्हें खोज निकालेगा ?

इन्द्रदेव—इसमें मुझे सन्देह है, क्योंकि वह सब तरफ से लाचार होकर मुझसे मदद माँगने गया था और उसी की जुबानी सब हाल सुनकर मैं यहाँ आया हूँ ।

वीरेन्द्रसिंह—तो तुम इस काम में उसको मदद दोगे ?

इन्द्रदेव—अवश्य मदद दूँगा ! सचाई तो यह है कि इस समय बलभद्रसिंह को खोज निकालने की चाह बनिस्बत भूतनाथ के मुझको बहुत ज्यादा है और उनके जीते

रहने का विश्वास भी सभी से ज्यादा मुझी को हुआ, इसी तरह से बलभद्रसिंह का पता लगाने में मेरी बुद्धि जितना काम कर सकती है, उतनी भूतनाथ की नहीं। (ऊँची साँस लेकर) अफसोस, आज के दो दिन पहले मुझे इस बात का स्वप्न में भी गुमान न था कि अपने प्यारे दोस्त बलभद्रसिंह के जीते रहने की खबर मेरे कानों तक पहुँचेगी और मुझे उनका पता लगाना होगा !

वीरेन्द्रसिंह—तुम्हारे ऐसा कहने से यह पाया जाता है कि बनिस्बत हम लोगों के तुमको भूतनाथ की बातों का ज्यादा यकीन हुआ है। और अगर ऐसा ही है तो आज के बहुत दिन पहले तुमको या किसी और को इस बात की इत्तिला न देने का इलजाम भी भूतनाथ पर लगाया जायगा !

इन्द्रदेव—जी नहीं, इस घटना के पहले भूतनाथ को भी बलभद्रसिंह के जीते रहने का विश्वास न था। हाँ, कुछ शक-सा हो गया था, उस शक को यकीन के दर्जे तक पहुँचाने के लिए भूतनाथ ने बहुत उद्योग किया और वही उद्योग इस समय उसका दुश्मन हो रहा है। सच तो यह है कि अगर इसके पहले बलभद्रसिंह के जीते रहने की खबर भूतनाथ देता भी तो मुझे विश्वास न होता और मैं उसे झूठा या दगाबाज समझता।

वीरेन्द्रसिंह—(मुस्कुराकर) तुम्हारी,,बातें तो और भी उलझन पैदा करती हैं। मालूम होता है कि भूतनाथ की बातों के अतिरिक्त और भी कोई सच्चा सबूत बलभद्रसिंह के जीते रहने के बारे में तुम्हें मिला है और भूतनाथ वास्तव में उन दोषों का दोषी नहीं है जो कि उसकी दस्तखती चिट्ठियों के पढ़ने से मालूम हुआ है।

इन्द्रदेव—बेशक ऐसा ही है।

लक्ष्मीदेवी—(ताज्जुब से) तो क्या किसी और ने भी मेरे पिता के जीते रहने की खबर आपको दी है ?

इन्द्रदेव—नहीं।

लक्ष्मीदेवी—तो आज कैसे भूतनाथ के कहने का इतना विश्वास आपको हुआ जब कि आज के पहले उसके कहने का कुछ भी असर न होता ?

वीरेन्द्रसिंह—मैं भी यही सवाल तुमसे करता हूँ।

इन्द्रदेव—भूतनाथ के इस कहने ने "कृष्णजिन्न ने एक कलमदान आपके सामने पेश किया था जिस पर मीनाकारी की तीन तस्वीरें बनी हुई थीं और उसे देखते ही नकली बलभद्रसिंह बदहवास हो गया"—मुझे असली बलभद्रसिंह के जीते रहने का विश्वास दिला दिया। क्या यह बात ठीक है ? क्या कृष्ण जिन्न ने कोई ऐसा कलमदान पेश किया है ?

वीरेन्द्रसिंह—हाँ, एक कलमदान···

लक्ष्मीदेवी—(बात काटकर) हाँ-हाँ, मेरे प्यारे चाचा, वही कलमदान जो मेरी बहुत ही प्यारी चाची ने मुझे विवाह के···

इतना कहते-कहते लक्ष्मीदेवी का गला भर आया और वह रोने लगी।

इन्द्रदेव—(व्याकुलता से) मैं उस कलमदान को शीघ्र ही देखना चाहता हूँ। (तेजसिंह से) आप कृपा कर उसे शीघ्र ही मँगवाइये।

तेजसिंह—(अपने बटुए में से कलमदान निकालकर और इन्द्रदेव के हाथ में देकर) लीजिए हाजिर है। मैं इसे हर वक्त अपने पास रखता हूँ, और उस समय की राह देखता हूँ जब इसके अद्भुत रहस्य का पता हम लोगों को लगेगा।

इन्द्रदेव—(कलमदान को अच्छी तरह देखकर) निःसन्देह भूतनाथ ने जो कुछ कहा ठीक है। अफसोस, कम्बख्तों ने बड़ा धोखा दिया। अच्छा, ईश्वर मालिक है!

लक्ष्मीदेवी—क्यों, यह वही कलमदान है न?

इन्द्रदेव—हाँ, तुम इसे वही कलमदान समझो। (क्रोध से लाल-लाल आँखें करके) ओफ, अब मुझसे बरदाश्त नहीं हो सकता और न मैं ऐसे काम में विलम्ब कर सकता हूँ! (वीरेन्द्रसिंह से) क्या आप इस काम में मेरी सहायता कर सकते हैं?

वीरेन्द्रसिंह—जो कुछ मेरे किये हो सकता है, मैं उसे करने के लिए तैयार हूँ। मुझे बड़ी खुशी होगी जब मैं अपनी आँखों से बलभद्रसिंह को सही-सलामत देखूँगा।

इन्द्रदेव—और आप मुझ पर विश्वास भी कर सकते हैं?

वीरेन्द्रसिंह—हाँ, मैं तुम पर उतना ही विश्वास करता हूँ जितना इन्द्रजीत और आनन्द पर।

इन्द्रदेव—(हाथ जोड़ और गद्गद होकर) अब मुझे विश्वास हो गया कि अपने दोनों प्रेमियों को शीघ्र देखूँगा।

वीरेन्द्रसिंह—(आश्चर्य से) दूसरा कौन?

लक्ष्मीदेवी—(चौंककर) ओह, मैं समझ गई, हे ईश्वर, यह क्या, क्या मैं अपनी बहुत ही प्यारी 'इन्दिरा' को भी देखूँगी!

इन्द्रदेव—हाँ, यदि ईश्वर चाहेगा तो ऐसा ही होगा।

वीरेन्द्रसिंह—अच्छा यह बताओ कि अब तुम क्या चाहते हो?

इन्द्रदेव—मैं नकली बलभद्रसिंह, दारोगा और मायारानी को देखना चाहता हूँ और साथ ही इसके इस बात की आज्ञा चाहता हूँ कि उन लोगों के साथ मैं जैसा बर्ताव करना चाहूँ कर सकूँ या उन तीनों में से किसी को यदि आवश्यकता हो तो अपने साथ ले जा सकूँ।

इन्द्रदेव की बात सुनकर वीरेन्द्रसिंह ने ऐसे ढंग से तेजसिंह की तरफ देखा और इशारे से कुछ पूछा कि सिवाय उनके और तेजसिंह के किसी दूसरे को मालूम न हुआ और जब तेजसिंह ने भी इशारे में ही कुछ जवाब दे दिया तब इन्द्रदेव की तरफ देखकर कहा, "वे तीनों कैदी सबसे बढ़कर लक्ष्मीदेवी के गुनहगार हैं जो तुम्हारी और हमारी धर्म की लड़की है। इसलिए उन कैदियों के विषय में जो कुछ तुमको पूछना या करना हो, उसकी आज्ञा लक्ष्मीदेवी से ले लो, हमें किसी तरह का उज्र नहीं है।"

लक्ष्मीदेवी—(प्रसन्न होकर) यदि महाराज की मुझ पर इतनी कृपा है तो मैं कह सकती हूँ कि उन कैदियों में से, जिनकी बदौलत मेरी जिन्दगी का सबसे कीमती हिस्सा बर्बाद हो गया, जिसे मेरे चाचा चाहें, साथ ले जायें।

वीरेन्द्रसिंह—बहुत अच्छा! (इन्द्रदेव से) क्या उन कैदियों को यहाँ हाजिर करने के लिए हुक्म दिया जाय?

इन्द्रदेव—वे सब कहाँ रखे गए हैं ?

वीरेन्द्रसिंह—यहाँ के तिलिस्मी तहखाने में।

इन्द्रदेव—(कुछ सोचकर) उत्तम तो यही होगा कि मैं उस तहखाने ही में उन कैदियों को देखूँ और उनसे बातें करूँ, तब जिसकी आवश्यकता हो उसे अपने साथ ले जाऊँ।

वीरेन्द्रसिंह—जैसी तुम्हारी मर्जी, अगर कहो तो हम भी तुम्हारे साथ तहखाने में चलें।

इन्द्रदेव—आप जरूर चलें। यदि यहाँ के तहखाने की कैफियत आपने अच्छी तरह देखी न हो तो मैं आपको तहखाने की सैर भी कराऊँगा वल्कि ये लड़कियाँ भी साथ रहें तो कोई हर्ज नहीं। परन्तु यह काम मैं रात्रि के समय करना चाहता हूँ और इस समय केवल इसी बात की जाँच करना चाहता हूँ कि भूतनाथ ने मुझसे जो-जो बातें कही थीं, वे सब सच हैं या झूठ।

वीरेन्द्रसिंह—ऐसा ही होगा।

इसके बाद बहुत देर तक इन्द्रदेव, लक्ष्मीदेवी, कमलिनी, किशोरी, लाड़िली, तेजसिंह और वीरेन्द्रसिंह इत्यादि में बातें होती रहीं और बीती हुई बातों को इन्द्रदेव बड़े गौर से सुनते रहे। इसके बाद भोजन का समय आया और दो-तीन घण्टे के लिए सब कोई जुदा हुए। राजा वीरेन्द्रसिंह की इच्छानुसार इन्द्रदेव की बड़ी खातिर की गई और वह जब तक अकेले रहे, बलभद्रसिंह और कृष्णजिन्न के विषय में गौर करते रहे। जब संध्या हुई, सब कोई फिर उसी जगह इकट्ठे हुए और बातचीत होने लगी। इन्द्रदेव ने राजा वीरेन्द्रसिंह से पूछा, "कृष्णजिन्न का असल हाल आपको मालूम हुआ या नहीं ? क्या उसने अपना परिचय आपको दिया ?"

वीरेन्द्रसिंह—पहले तो उसने अपने को बहुत छिपाया, मगर भैरोंसिंह ने गुप्त रीति से पीछा करके उसका हाल जान लिया। जब कृष्ण जिन्न को मालूम हो गया कि भैरोंसिंह ने उसे पहचान लिया तब उसने भैरोंसिंह को बहुत-कुछ ऊँच-नीच समझाकर इस बात की प्रतिज्ञा करा ली कि सिवाय मेरे और तेजसिंह के वह कृष्णजिन्न का असल हाल किसी से न कहे और न हम तीनों में से कोई किसी चौथे को उसका भेद बतावे। पर अब मैं देखता हूँ तो कृष्णजिन्न का असल हाल तुमको भी मालूम होना उचित जान पड़ता है पर साथ ही मैं अपने ऐयार की की हुई प्रतिज्ञा को भी तोड़ना नहीं चाहता।

इन्द्रदेव—निःसन्देह कृष्णजिन्न का हाल जानना मेरे लिए आवश्यक है परन्तु मैं भी यह नहीं पसन्द करता कि भैरोंसिंह या आपकी मंडली में से किसी की प्रतिज्ञा भंग हो। आप इसके लिए चिन्ता न करें, मैं कृष्णजिन्न को पहचाने बिना नहीं रह सकता, बस एक दफे सामना होने की देर है।

वीरेन्द्रसिंह—मेरा भी यही विश्वास है।

इन्द्रदेव—अच्छा तो अब उन कैदियों के पास चलना चाहिए।

वीरेन्द्रसिंह—चलो, हम तैयार हैं। (तेजसिंह, देवीसिंह, लक्ष्मीदेवी, कमलिनी और किशोरी इत्यदि की तरफ इशारा करके) इन सबको भी लेते चलें ?

इन्द्रदेव—जी हाँ, मैं तो पहले ही अर्ज कर चुका हूँ, बल्कि ज्योतिषीजी तथा भैरोंसिह को भी लेते चलिए।

इतना सुनते ही राजा वीरेन्द्रसिंह उठ खड़े हुए और सब को साथ लिए हुए तहखाने की तरफ रवाना हुए। जगन्नाथ ज्योतिषी को बुलाने के लिए देवीसिंह भेज दिये गये।

ये लोग धीरे-धीरे जब तक तहखाने के दरवाजे पर पहुंचे तब तक जगन्नाथ ज्योतिषी भी आ गये और सब लोग एक साथ मिलकर तहखाने के अन्दर गये।

इस तहखाने के अन्दर जाने वाले रास्ते का हाल हम पहले लिख चुके हैं इसलिए पुनः लिखने की आवश्यकता न जानकर केवल मतलब की बातें ही लिखते हैं।

ये सब लोग तहखाने के अन्दर जाकर उसी दालान में पहुँचे जिसमें तहखाने के दारोगा साहब रहा करते थे और जिसके पीछे की तरफ कई कोठरियाँ थीं। इस समय भैरोंसिंह और देवीसिंह अपने हाथ में मशाल लिए हुए थे, जिसकी रोशनी से बखूबी उजाला हो गया था और वहाँ की हरएक चीज साफ-साफ दिखाई दे रही थी। वे लोग इन्द्रदेव के पीछे-पीछे एक कोठरी के अन्दर घुसे जिसमें सदर दरवाजे के अलावा एक दरवाजा और भी था। सब लोग उस दरवाजे में घुसकर दूसरे खण्ड में जा पहुँचे जहाँ बीचोंबीच में छोटा-सा चौक था उसके चारों तरफ दालान और दालानों के बाद बहुत-सी लोहे के सींखचों से बनी हुई जंगलेदार ऐसी कोठरियाँ थीं जिनके देखने से यह साफ मालूम होता था कि यह कैदखाना है और इन कोठरियों में रहने वाले आदमियों को स्वप्न में भी रोशनी नसीब न होती होगी।

इन्हीं सींखचे वाली कोठरियों में से एक में दारोगा, दूसरे में मायारानी और तीसरी में नकली बलभद्रसिंह कैद था। जब ये लोग यकायक उस कैदखाने में पहुँचे और उजाला हुआ तो तीनों कैदी, जो अब तक एक दूसरे को भी नहीं देख सकते थे, ताज्जुब की निगाहों से इन लोगों को देखने लगे। जिस समय दारोगा की निगाह इन्द्रदेव पर पड़ी उसके दिल में यह खयाल पैदा हुआ कि या तो अब हमको इस कैदखाने में छुट्टी ही मिलेगी या इससे भी ज्यादा दुःख भोगना पड़ेगा।

इन्द्रदेव पहले मायारानी की तरफ गया जिसका रंग एकदम से पीला पड़ गया था और जिसकी आँखों के सामने मौत की भयानक सूरत हरदम फिरा करती थी। दो-तीन पल तक मायारानी को देखने के बाद इन्द्रदेव उस कोठरी के सामने आया जिसमें नकली बलभद्रसिंह कैद था। उसकी सूरत देखते ही इन्द्रदेव ने कहा, "ऐ मेरे लड़कपन के दोस्त बलभद्रसिंह, मैं तुम्हें सलाम करता हूँ। आज ऐसे भयानक कैदखाने में तुम्हें देखकर मुझे बड़ा रंज होता है। तुमने क्या कसूर किया था जो यहाँ भेजे गये?"

नकली बलभद्रसिंह—मैं कुछ नहीं जानता कि मुझ पर क्या दोष लगाया गया है। मैं तो अपनी लड़कियों से मिलकर बहुत खुश हुआ था, मगर अफसोस, राजा साहब ने इन्साफ करने के पहले ही मुझे कैदखाने में भेज दिया।

भैरोंसिंह—राजा साहब ने तुम्हें कैदखाने में नहीं भेजा, बल्कि तुमने खुद कैदखाने में आने का बन्दोबस्त किया। महाराज ने तो मुझे ताकीद की थी कि तुम्हें इज्जत

और खातिरदारी के साथ रखूं, मगर जब तुमने इन्साफ होने के पहले भागने का उद्योग किया तो लाचार ऐसा करना पड़ा।

इन्द्रदेव—नहीं-नहीं, अगर ये वास्तव में मेरे दोस्त बलभद्रसिंह हैं तो इनके साथ ऐसा न करना चाहिए।

बलभद्रसिंह—मैं वास्तव में बलभद्रसिंह हूँ। क्या लक्ष्मीदेवी मुझे नहीं पहचानती जिसके साथ मैं एक ही कैदखाने में कैद था?

इन्द्रदेव—लक्ष्मीदेवी तो खुद तुमसे दुश्मनी कर रही है। वह कहती है कि यह बलभद्रसिंह नहीं है बल्कि जयपालसिंह है।

इतना सुनते ही नकली बलभद्रसिंह चौंक उठा और उसके चेहरे पर डर तथा घबराहट की निशानी दिखाई देने लगी। वह समझ गया कि इन्द्रदेव मुझ पर दया करने के लिए नहीं आया, बल्कि मुझे सताने के लिए आया है। कुछ देर तक सोचने के बाद उसने इन्द्रदेव से कहा—

बलभद्रसिंह—यह बात लक्ष्मीदेवी तो नहीं कह सकती, बल्कि तुम ही स्वयं कहते हो।

इन्द्रदेव—अगर ऐसा भी हो तो क्या हर्ज है? तुम इस बात का क्या जवाब देते हो?

बलभद्रसिंह—झूठी बात का जो कुछ जवाब हो सकता है, वही मेरा जवाब है।

इन्द्रदेव—तो क्या तुम जयपालसिंह नहीं हो?

बलभद्रसिंह—मैं जानता भी नहीं कि जयपाल किस जानवर का नाम है।

इन्द्रदेव—अच्छा, जयपाल नहीं तो बालेसिंह!

बालेसिंह का नाम सुनते ही नकली बलभद्रसिंह फिर घबरा गया और मौत की भयानक सूरत उसकी आँखों के सामने दिखाई देने लगी। उसने कुछ जवाब देने का इरादा किया मगर बोल न सका। उसकी ऐसी अवस्था देखकर इन्द्रदेव ने तेजसिंह से कहा, "दारोगा और मायारानी को भी इस कोठरी में लाना चाहिए जिसमें मेरी बातों से तीनों बेईमानों के दिल का पता लगे।" यह बात तेजसिंह ने भी पसन्द की और बात की बात में तीनों कैदी एक साथ कर दिए गये और तब इन्द्रदेव ने दारोगा से पूछा, "आपको इस आदमी का नाम बताना होगा जो आपके बगल में कैदियों की तरह बैठा हुआ है।"

दारोगा—मैं इसे नहीं जानता और जब वह स्वयं कह रहा है कि बलभद्रसिंह है तो मुझसे क्यों पूछते हो?

इन्द्रदेव—तो क्या आप बलभद्रसिंह की सूरत-शक्ल भूल गये जिसकी लड़की को आपने मुन्दर के साथ बदल कर हद से ज्यादा दुःख दिया?

दारोगा—मुझे उसकी सूरत याद है मगर जब वह मेरे यहाँ कैद था तब आप ही ने इसे जहर की पुड़िया खिलाई थी जिसके असर से निःसन्देह इसे मर जाना चाहिए था मगर न मालूम क्योंकर बच गया, फिर भी उस जहर की तासीर ने इसका तमाम बदन बिगाड़ दिया और इस लायक न रक्खा कि कोई पहचाने और बलभद्रसिंह के नाम से इसे पुकारे।

दारोगा की बातें सुनकर इन्द्रदेव की आँखें मारे क्रोध के लाल हो गईं और उसने दाँत पीस कर कहा—

इन्द्रदेव—कम्बख्त बेईमान ! तू चाहता है कि अपने साथ मुझे भी लपेटे ! मगर ऐसा नहीं हो सकता, तेरी इन बातों से लक्ष्मीदेवी और राजा वीरेरेन्द्रसिंह का दिल मुझसे नहीं फिर सकता। इसका सबब अगर तू जानता तो ऐसी बातें कदापि न कहता। खैर, वह मैं तुझसे बयान करता हूँ, सुन, तेरे दिये हुए जहर से मैंने ही बलभद्रसिंह की जान बचाई थी, और अगर तू बलभद्रसिंह को किसी दूसरी जगह न छिपा दिए होता या उसका हाल मुझे मालूम हो जाता तो बेशक मैं उसे भी तेरे कैदखाने से निकाल लेता, मगर फिर भी वह शख्स मैं ही हूँ जिसने लक्ष्मीदेवी को तुझ बेईमान और विश्वासघाती के पंजे से छुड़ा कर वर्षों अपने घर में इस तरह रक्खा कि तुझे कुछ भी मालूम न हुआ और मेरे ही सबब से लक्ष्मीदेवी आज इस लायक हुई कि तुझसे अपना बदला ले।

दारोगा—मगर ऐसा नहीं हो सकता।

यद्यपि इन्द्रदेव की बात सुनकर आश्चर्य और डर से दारोगा के रोंगटे खड़े हो गये मगर फिर भी न मालूम किस भरोसे पर वह बोल उठा कि 'मगर ऐसा नहीं हो सकता' और उसके इस कहने ने सभी को आश्चर्य में डाल दिया।

इन्द्रदेव—(दारोगा से) मालूम होता है कि तेरा घमण्ड अभी टूटा नहीं और तुझे अब भी किसी की मदद पहुँचने और अपने बचने की आशा है।

दारोगा—बेशक ऐसा ही है।

अब इन्द्रदेव अपने क्रोध को वर्दाश्त न कर सका और उसने कोठरी के अन्दर घुस कर दारोगा के बाएँ गाल पर ऐसी चपत लगाई कि वह तिलिमिला कर जमीन पर लुढ़क गया क्योंकि हथकड़ी और बेड़ी के कारण उसके हाथ और पैर मजबूर हो रहे थे। इसके बाद इन्द्रदेव ने नकली बलभद्रसिंह का बदन नंगा कर डाला और अपनी कमर से चमड़े का एक तस्मा खोलकर मारना और पूछना शुरू किया, "बता, तू जयपाल है या नहीं और बलभद्रसिंह कहाँ है ?

यद्यपि तस्मे की मार खाकर नकली बलभद्रसिंह बिना जल की मछली की तरह तड़पने लगा मगर मुँह से सिवाय 'हाय' के कुछ भी न बोला। इन्द्रदेव उसे और भी मारना चाहता था मगर इसी समय एक गम्भीर आवाज ने उसका हाथ रोक दिया और वह ध्यान देकर उसे सुनने लगा, आवाज यह थी—

"होशियार ! होशियार !"

इस आवाज ने केवल इन्द्रदेव ही को नहीं बल्कि उन सब ही को चौंका दिया जो वहाँ मौजूद थे। इन्द्रदेव कैदखाने की कोठरी में से बाहर निकल आया और छत की तरफ सिर उठा कर देखने लगा, जिधर से वह आवाज आई थी। मशाल की रोशनी बखूबी हो रही थी जिससे छत का एक सूराख, जिसमें आदमी का सिर बखूबी आ सकता था साफ दिखाई पड़ता था। सभी को बिश्वास हो गया कि वह आवाज इसी में से आई है।

दो-चार पल तक सभी ने राह देखी मगर फिर आवाज सुनाई न दी। आखिर

इन्द्रदेव ने पुकार कर कहा, "अभी कौन बोला था ?

फिर आवाज आई—हम !

इन्द्रदेव—तुमने क्या कहा था ?

आवाज—होशियार, होशियार।

इन्द्रदेव—क्यों ?

आवाज—दुश्मन आ पहुँचा और तुम लोग मुसीबत में फँसना चाहते हो।

इन्द्रदेव—तुम कौन हो ?

आवाज—कोई तुम लोगों का हितू।

इन्द्रदेव—कैसे समझा जाय कि तुम हम लोगों के हितू हो और जो कुछ कहत हो वह सच है ?

आवाज—हितू होने का सबूत इस समय देना कठिन है मगर इस बात का सबूत मिल सकता है कि हमने जो कुछ कहा है वह सच है।

इन्द्रदेव—इसका क्या सबूत है ?

आवाज—बस इतना ही कि इस तहखाने से निकलने के सब दरवाजे बन्द हो गये और अब आप लोग बाहर नहीं जा सकते।

अब तो सभी का कलेजा दहल उठा और आश्चर्य से एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। तेजसिंह ने देवीसिंह और भैरोंसिंह की तरफ देखा और वे दोनों उसी समय इस बात का पता लगाने चले गये कि तहखाने के दरवाजे वास्तव में बन्द हो गए या नहीं, इसके बाद इन्द्रदेव ने फिर छत की तरफ मुँह करके कहा, "हाँ, तो क्या तुम बता सकते हो कि वे लोग कौन हैं जिन्होंने तहखाने में हम लोगों को घेरने का इरादा किया है ?"

आवाज—हाँ, बता सकते हैं।

इन्द्रदेव—अच्छा उनके नाम बताओ।

आवाज—कमलिनी के तिलिस्मी मकान से छूटकर भागे शिवदत्त, माधवी और मनोरमा तथा उन्हीं तीनों की मदद से छूटा हुआ दिग्विजयसिंह का लड़का कल्याणसिंह, जो इस तिलिस्मी तहखाने का हाल उतना ही जानता है जितना उसका बाप जानता था।

इन्द्रदेव—वह तो चुनार में कैद था।

आवाज—हाँ, कैद था मगर छुड़ाया गया जैसा कि मैंने कहा।

इन्द्रदेव—तो क्या वे लोग हम सभी को नुकसान पहुँचा सकते हैं ?

आवाज—सो तो तुम्हीं लोग जानो, मैंने केवल तुम लोगों को होशियार कर दिया, अब जिस तरह अपने को बचा सको, बचाओ।

इन्द्रदेव—(कुछ सोचकर) उन चारों के साथ और कोई भी है ?

आवाज—हाँ, एक हजार के लगभग फौज भी इसी तहखाने की किसी गुप्त राह से किले के अन्दर घुस कर अपना दखल जमाना चाहती है।

इन्द्रदेव—इतनी मदद उन सभी को कहाँ से मिली ?

आवाज—इसी कम्बख्त मायारानी की बदौलत।

इन्द्रदेव—क्या तुम भी उन्हीं लोगों के साथ हो ?

आवाज—नहीं।

इन्द्रदेव—तब तुम कौन हो ?

आवाज—एक दफा तो कह चुका कि तुम्हारा कोई हितू हूँ।

इन्द्रदेव—अगर हितू हो तो हम लोगों की कुछ मदद भी कर सकते हो !

आवाज—कुछ भी नहीं।

इन्द्रदेव—क्यों ?

आवाज—मजबूरी से।

इन्द्रदेव—मजबूरी कैसी ?

आवाज—वैसी ही।

इन्द्रदेव—क्या तुम हम लोगों की मदद किए बिना ही इस तहखाने के बाहर चले जाओगे ?

आवाज—नहीं, क्योंकि रास्ता बन्द है।

इतना सुनकर इन्द्रदेव चुप हो गया और कुछ देर तक सोचता रहा, इसके बाद राजा वीरेन्द्रसिंह का इशारा पाकर फिर बातचीत करने लगा।

इन्द्रदेव—तुम अपना नाम क्यों नहीं बताते ?

आवाज—व्यर्थ समझ कर।

इन्द्रदेव—क्या हम लोगों के पास भी नहीं आ सकते ?

आवाज—नहीं।

इन्द्रदेव—क्यों ?

आवाज—रास्ता नहीं है।

इन्द्रदेव—तो क्या तुम यहाँ से निकलकर बाहर भी नहीं जा सकते ?

इस बात का जवाब कुछ भी न मिला, इन्द्रदेव ने पुनः पूछा मगर फिर भी जवाब न मिला। इतने ही में छत पर धमधमाहट की आवाज इस तरह आने लगी जैसे पचासों आदमी चारों तरफ दौड़ते-उछलते या कूदते हों। उसी समय इन्द्रदेव ने राजा वीरेन्द्रसिंह की तरफ देख कर कहा, "अब मुझे निश्चय हो गया कि इस गुप्त मनुष्य का कहना ठीक है और इस छत के ऊपर वाले खंड में ताज्जुब नहीं कि दुश्मन आ गये हों और यह उन्हीं के पैरों की धमधमाहट हो।" राजा वीरेन्द्रसिंह इन्द्रदेव की बात का कुछ जवाब दिया ही चाहते थे कि उसी मोखे में से जिसमें से गुप्त मनुष्य के बातचीत की आवाज आ रही थी, और बहुत से आदमियों के बोलने की आवाजें आने लगीं। साफ सुनाई देता था कि बहुत से आदमी आपस में लड़-भिड़ रहे हैं और तरह-तरह की बातें कर रहे हैं।

"कहाँ है ? कोई तो नहीं ! जरूर है ! यही है ! यही है ! पकड़ो ! पकड़ो ! तेरी ऐसी की तैसी, तू हमें क्या पकड़ेगा ? नहीं अब तू बच के कहाँ जा सकता है !" इत्यादि आवाजें कुछ देर तक सुनाई देती रहीं, और इसके बाद उसी मोखे में से बिजली की तरह चमक दिखाई देने लगी। उसी समय "हाय रे, यह क्या, जले-जले, मरे-मरे, देव-देव, भूत-है-भूत, देवता, काल-है-काल, अग्निदेव है, अग्निदेव, कुछ नहीं, जाने दो, जाने दो, हम नहीं, हम नहीं !" इत्यादि आवाजें भी सुनाई देने लगीं, जिनसे बेचारे

किशोरी और कामिनी का कोमल कलेजा दहलने लगा, और थरथर काँपने लगीं। राजा वीरेन्द्रसिंह और तेजसिंह वगैरह भी घबराकर सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिए।

इन्द्रदेव—दुश्मनों के आने में कोई शक नहीं !

वीरेन्द्रसिंह—खैर, क्या हर्ज है, लड़ाई से हम लोग डरते नहीं, अगर कुछ खयाल है तो केवल इतना ही कि तहखाने में पड़े रह कर बेबसी की हालत में जान न दे देनी न पड़े क्योंकि दरवाजों के बन्द होने की खबर सुनाई देती है। अगर दुश्मन लोग आ गये तब कोई हर्ज नहीं क्योंकि जिस राह से वे लोग आवेंगे, वही राह हम लोगों के निकल जाने के लिए भी होगी, हाँ पता लगाने में जो कुछ विलम्ब हो। (रुककर) लो, भैरों और देवीसिंह भी आ गये ! (दोनों ऐयारों से) कहो, क्या खबर है ?

देवीसिंह—दरवाजे बन्द हैं।

भैरोंसिंह—किले के बाहर निकल जाने वाला दरवाजा भी बन्द है ?

तेजसिंह—खैर, कोई चिन्ता नहीं, अब तो दुश्मन का आ जाना ही हमारे लिए बेहतर है।

इन्द्रदेव—कहीं ऐसा न हो कि हम लोग तो दुश्मनों से लड़ने के फेर में रह जायँ और दुश्मन लोग तीनों कैदियों को छुड़ा ले जायँ। अस्तु, पहले कैदियों का बन्दोबस्त करना चाहिए और इससे भी ज्यादा जरूरी (किशोरी, कामिनी इत्यादि की तरफ इशारा करके) इन लड़कियों की हिफाजत है।

कमलिनी—मुझे छोड़कर और सभी की फिक्र कीजिये क्योंकि तिलिस्मी खंजर अपने पास रख कर भी छिपे रहना मैं पसन्द नहीं करती, मैं लड़ूँगी और अपने खंजर की करामात देखूँगी।

वीरेन्द्रसिंह—नहीं-नहीं, हम लोगों के रहते हमारी लड़कियों को हौसला करने की कोई जरूरत नहीं है।

इन्द्रदेव—कोई हर्ज नहीं, आप कमलिनी के लिए चिन्ता न करें। मैं खुशी से देखना चाहता हूँ कि वर्षों मेहनत करके मैंने जो कुछ विद्या इसे सिखाई है उससे यह कहाँ तक फायदा उठा सकती है, खैर देखिये, मैं सभी का बन्दोवस्त कर देता हूँ।

इतना कहकर इन्द्रदेव ने ऐयारों की तरफ देखा और कहा, "इन कैदियों की आँखों पर शीघ्र पट्टी बाँधिये।" सुनने के साथ ही विना कुछ सबब पूछे भैरोंसिंह, तारासिंह और देवीसिंह जंगले के अन्दर चले गये और बात-की-बात में तीनों कैदियों की आँखों पर पट्टियाँ बांध दीं। इसके बाद इन्द्रदेव ने छत की तरफ देखा, जहाँ लोहे की बहुत-सी कड़ियाँ लटक रही थीं। उन कड़ियों में से एक कड़ी को इन्द्रदेव ने उछल कर पकड़ लिया और लटकते हुए ही तीन-चार झटके दिये जिससे वह कड़ी नीचे की तरफ खिंच आई और इन्द्रदेव का पैर जमीन के साथ लग गया। वह कड़ी लोहे की एक जंजीर के साथ बँधी हुई थी जो खिंचने के साथ ही नीचे तक खिंच आई और जंजीर खिंच जाने से एक कोठरी का दरवाजा ऊपर की तरफ चढ़ गया जैसे पुल का तख्ता जंजीर खींचने से ऊपर की तरफ चढ़ जाता है। यह कोठरी उसी दालान में दीवार के साथ इस ढंग से बनी हुई थी कि दरवाजा बन्द रहने की हालत में इस बात का कुछ भी पता नहीं लग

सकता था कि यहाँ पर कोठरी है ।

जब कोठरी का दरवाजा खुल गया तब इन्द्रदेव ने कमलिनी को छोड़ के बाकी औरतों को उस कोठरी के अन्दर कर देने के लिए तेजसिंह से कहा और तेजसिंह ने ऐसा ही किया । जब सब औरतें कोठरी के अन्दर चली गईं तब इन्द्रदेव ने हाथ से कड़ी छोड़ दी । तुरन्त ही उस कोठरी का दरवाजा बन्द हो गया और वह कड़ी छत के साथ इस तरह चिपक गई जैसे छत में कोई चीज लटकाने के लिए जड़ी हो ।

इसके बाद इन्द्रदेव ने तीनों कैदियों को भी वहाँ से निकाल ले जाकर किसी दूसरी जगह बन्द कर देने का इरादा किया, मगर ऐसा करने का समय न मिला क्योंकि उसी समय पुनः 'सावधान-सावधान !' की आवाज आई और कैदखाने वाली कोठरी के बाहर बहुत से आदमियों के आ पहुँचने की आहट मिली । अतएव हमारे बहादुर लोग कमलिनी के सहित बाहर निकल आये । राजा वीरेन्द्रसिंह और तेजसिंह ने म्यान से तलवारें निकाल लीं, कमलिनी ने तिलिस्मी खंजर सम्हाला, ऐयारों ने कमन्द और खंजर को दुरुस्त किया, और इन्द्रदेब ने अपने बटुए में से छोटे-छोटे चार गेंद निकाले और लड़ने के लिए हर तरह से मुस्तैद होकर सभी के साथ कोठरी के बाहर निकल आया ।

राजा वीरेन्द्रसिंह, उनके ऐयारों और इन्द्रदेव को विश्वास हो गया था कि उस गुप्त मनुष्य ने जो कुछ कहा वह सब ठीक है और शिवदत्त, माधवी और मनोरमा के साथ ही-साथ दिग्विजयसिंह का लड़का कल्याणसिंह और ऐयार लोग इस बात की फिक्र में थे कि जिस तरह हो सके चारों ही को नहीं तो कल्याणसिंह और शिवदत्त को तो जरूर ही पकड़ लेना चाहिए परन्तु वे लोग ऐसा न कर सके, क्योंकि कोठरी के बाहर निकलते ही जिन लोगों ने उन पर वार किया था वे सब के सब अपने चेहरों पर नकाब डाले हुए थे और इसलिए उनमें से अपने मतलब के आदमियों को पहचानना बड़ा कठिन था । इन्द्रदेव ने जल्दी के साथ कमलिनी से कहा, "तू हम लोगों के पीछे इसी दरवाजे के बीच में खड़ी रह, जब कोई तुझ पर हमला करे या इस कैदखाने के अन्दर जाने लगे तो अपने तिलिस्मी खंजर से उसको रोकना" और कमलिनी ने ऐसा ही किया ।

जब हमारे बहादुर लोग कैदखाने वाली कोठरी से बाहर निकले तो देखा कि उन पर हमला करने वाले सैकड़ों नकाबपोश हाथों में नंगी तलवारें लिए आ पहुँचे और 'मार-मार' कहकर तलवारें चलाने लगे तथा हमारे बहादुर लोग भी जो यद्यपि गिनती में उनसे बहुत कम थे दुश्मनों के वारों का जवाब देने और अपने वार करने लगे । हमारे दोनों ऐयारों ने मशालें जमीन पर फेंक दीं क्योंकि दुश्मनों के साथ बहुत-सी मशालें थीं जिनकी रोशनी से दुश्मनों के साथ-ही-साथ हमारे बहादुरों का काम भी अच्छी तरह चल सकता था ।

इसमें कोई शक नहीं कि दुश्मनों ने जी तोड़कर लड़ाई की और राजा वीरेन्द्रसिंह वगैरह को गिरफ्तार करने का बहुत उद्योग किया, मगर कुछ भी न कर सके और हमारे बहादुर वीरेन्द्रसिंह तथा आफत के परकाले उनके ऐयारों ने ऐसी बहादुरी दिखाई कि दुश्मनों के छक्के छूट गये । राजा वीरेन्द्रसिंह की न रुकने वाली तलवार ने तीस-आदमियों को उस लोक का रास्ता दिखाया, ऐयारों ने कमन्दों की उलझन में डालकर

पचासों को जमीन पर सुलाया जो अपने ही साथियों के पैरों-तले रौंदे जाकर बेकाम हो गये। इन्द्रदेव ने जो चारों गेंद निकाले थे उन्होंने तो अजीब ही तमाशा दिखाया। इन्द्रदेव ने उन गेंदों को बारी-बारी से दुश्मनों के बीच में फेंका जो ठेस लगने के साथ ही आवाज देकर फट गए और उनमें से निकले हुए आग के शोलों नें बहुतों को जलाया और बेकाम किया। जब दुश्मनों ने देखा कि हम राजा वीरेन्द्रसिंह और उनके साथियों का कुछ भी न कर सके और उन्होंने हमारे बहुत से साथियों को मारा और बेकाम कर दिया, तो वे लोग भागने की फिक्र में लगे। मगर वहाँ से भाग जाना भी असम्भव था क्योंकि वहाँ से निकल भागने का रास्ता उन्हें मालूम न था। कल्याणसिंह जिस राह से उन सब को इस तहखाने में लाया था उसे यदि बन्द भी न कर देता तो उस घूम-घुमौवे और पेचीले रास्ते का पता लगाकर निकल जाना कठिन था।

आधी घड़ी से ज्यादा देर तक मौत का बाजार गर्म रहा। दुश्मन लोग मारे जाते थे और ऐयारों को सरदारों के गिरफ्तार करने की फिक्र थी, इसी बीच में तहखाने के ऊपरी हिस्से से किसी औरत के चिल्लाने की आवाज आने लगी और सभी का ध्यान उसी तरफ चला गया। तेजसिंह ने भी उसे कान लगाकर सुना और कहा, "ठीक किशोरी की आवाज मालूम पड़ती है !"

"हाय रे, मुझे बचाओ, अब मेरी जान न बचेगी, दुहाई राजा वीरेन्द्रसिंह की !"

इस आवाज ने केवल तेजसिंह ही को नहीं, बल्कि राजा वीरेन्द्रसिंह को भी परेशान कर दिया। वह ध्यान देकर उस आवाज को सुनने लगे। इसी बीच में एक दूसरे आदमी की आवाज भी उसी तरफ से आने लगी। राजा वीरेन्द्रसिंह और उनके साथियों ने पहचान लिया कि यह उसी की आवाज है जो कैदखाने की कोठरी में कुछ देर पहले गुप्त रीति से बातें कर रहा था और जिसने दुश्मनों के आने की खबर दी थी। वह आवाज यह थी—

"होशियार होशियार, देखो यह चाण्डाल बेचारी किशोरी को पकड़े लिए जाता है। हाय, बेचारी किशोरी को बचाने की फिक्र करो ! रह तो जा नालायक, पहले मेरा मुकाबला कर ले !!"

इस आवाज ने राजा वीरेन्द्रसिंह, तेजसिंह इन्द्रदेव और उनके साथियों को बहुत ही परेशान कर दिया और वे लोग घबराकर चारों तरफ देखने तथा सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिए।

12

हम ऊपर लिख आये हैं कि इन्द्रदेव ने भूतनाथ को अपने मकान से बाहर न जाने दिया और अपने आदमियों को यह ताकीद करके कि भूतनाथ को हिफाजत और खातिरदारी के साथ रक्खें, रोहतासगढ़ की तरफ रवाना हो गया।

यद्यपि भूतनाथ इन्द्रदेव के मकान में रोक लिया गया और वह भी उस मकान से बाहर जाने का रास्ता न जानने के कारण लाचार और चुप हो रहा, मगर समय और आवश्यकता ने वहाँ उसे चुपचाप बैठने न दिया और मकान से बाहर निकलने का मौका उसे मिल ही गया।

जब इन्द्रदेव रोहतासगढ़ की तरफ रवाना हो गया, उसके दूसरे दिन दोपहर के समय सरयूसिंह, जो इन्द्रदेव का बड़ा विश्वासी ऐयार था, भूतनाथ के पास आया और बोला, "क्यों भूतनाथ, तुम चुपचाप बैठे क्या सोच रहे हो हो ?"

भूतनाथ—बस मैं अपनी बदनसीबी पर रोता और झख मारता हूँ, मगर इसके साथ ही इस बात को सोच रहा हूँ कि आदमी को दुनिया में किस ढंग से रहना चाहिए।

सरयूसिंह—क्या तुम अपने को बदनसीब समझते हो ?

भूतनाथ—क्यों नहीं ! तुम जानते हो कि वर्षों से मैं राजा वीरेन्द्रसिंह का काम कैसी ईमानदारी और नेकनीयती के साथ कर रहा हूँ। और क्या यह बात तुमसे छिपी हुई है कि उस सेवा का बदला आज मुझे क्या मिल रहा है ?

सरयूसिंह—(पास बैठकर) मैं सब-कुछ जानता हूँ, मगर भूतनाथ, मैं फिर भी यह कहने से बाज न आऊँगा कि आदमी को कभी हताश न होना चाहिए और हमेशा बुरे कामों की तरफ से अपने दिल को रोककर नेक काम में तन-मन-धन से लगे रहना चाहिए। ऐसा करने वाला निःसन्देह सुख भोगता है चाहे बीच-बीच में उसे थोड़ी बहुत तकलीफ भी क्यों न उठानी पड़े। अस्तु, आज-कल के दुःखों से तुम हताश मत हो जाओ और राजा वीरेन्द्रसिंह तथा उनकी तरह सज्जन लोगों के साथ नेकी करने से अपने दिल को मत रोको। तुम तो ऐयार हो और ऐयारों में भी नामी ऐयार, फिर भी दो चार दुष्टों की अनोखी कार्रवाइयों से आ पड़ने वाली आफतों को न सहकर उदास हो जाओ तो बड़े आश्चर्य की बात है।

भूतनाथ--नहीं मेरे दोस्त, मैं हताश होने वाला आदमी नहीं हूँ, मैं तो केवल समय का हेर-फेर देखकर अफसोस कर रहा हूँ। निःसन्देह मुझसे दो-एक काम बुरे हो गए और उसका बदला भी मैं पा चुका हूँ, मगर फिर भी मेरा दिल यह कहने से बाज नहीं आता कि तेरे माथे से कलंक का टीका अभी तक साफ नहीं हुआ, अतएव तू नेकी करता जा और भूलता जा।

सरयूसिंह—शाबाश, मैं केवल तुम्ही को नहीं बल्कि तुम्हारे दिल को भी अच्छी तरह जानता हूँ और वे बातें भी मुझसे छिपी हुई नहीं हैं जिनका इलजाम तुम पर लगाया गया है। यद्यपि मैं एक ऐसे सरदार का ऐयार हूँ जो किसी के नेक-बद से सरोकार नहीं रखता और इस स्थान को देखने वाला कह सकता है कि वह दुनिया के पर्दे के बाहर रहता है मगर फिर भी मैं काम ज्यादा न होने के सबब से घूमता-फिरता और नामी ऐयारों की कार्रवाइयों को देखा-सुना करता हूँ और यही सबब है कि मैं उन भेदों को भी कुछ जानता हूँ जिसका इल्जाम तुम पर लगाया गया है।

भूतनाथ—(आश्चर्य से) क्या तुम उन भेदों को जानते हो ?

सरयूसिंह—बखूबी तो नहीं, मगर कुछ-कुछ।

भूतनाथ—तो मेरे दोस्त, तुम मेरी मदद क्यों नहीं करते ? तुम मुझे इस आफत से क्यों नहीं छुड़ाते ? आखिर हम तुम एक ही पाठशाला के पढ़े-लिखे हैं, क्या लड़कपन की दोस्ती पर ध्यान देते तुम्हें शर्म आती है या क्या तुम इस लायक नहीं हो ?

सरयूसिंह—(हँसकर) नहीं-नहीं, ऐसा खयाल न करो, मैं तुम्हारी मदद जरूर करूँगा, अभी तक तो तुम्हें किसी से मदद लेने की आवश्यकता भी नहीं पड़ी थी और जब आवश्यकता आ पड़ी है तो मदद करने के लिए हाजिर भी हो गया हूँ ।

भूतनाथ—(मुस्कुरा कर) तब तो मुझे खुश होना चाहिए, मगर जब तक तुम्हारा मालिक रोहतासगढ़ से लौटकर न आ जाये, तब तक हम लोग कुछ भी न कर सकेंगे ।

सरयू—क्यों न कर सकेंगे ?

भूतनाथ —इसलिए कि तुम्हारा मालिक मुझे यहाँ कैद कर गया है । मैं इसे कैद ही समझता हूँ, जब कि यहाँ से बाहर निकलने की आज्ञा नहीं है ।

सरयू—यह कोई बात नहीं है, अगर जरूरत आ पड़े तो मैं तुम्हें इस मकान के बाहर कर दूंगा, चाहे बाहर होने का रास्ता अपने मालिक के नियमानुसार न बताऊँ ।

भूतनाथ—(प्रसन्नता से हाथ उठाकर) ईश्वर, तू धन्य है । अब आशा-लता ने जिसमें सुन्दर और सुगन्धित फूल लगे हुए हैं, मुझे फिर घेर लिया । (सरयू से) अच्छा दोस्त, तो अब बताओ कि मुझे क्या करना चाहिए ?

सरयू—सबके पहले मनोरमा को अपने कब्जे में लाना चाहिए ।

भूतनाथ—(कुछ सोच कर) ठीक कहते हो, मेरी भी एक दफे यही इच्छा हुई थी, मगर क्या तुम इस बात को नहीं जानते कि शिवदत्त, मनोरमा और—

सरयू—(बात काट कर) मैं खूब जानता हूँ कि शिवदत्त, माधवी और मनोरमा को कमलिनी के कैदखाने से निकल भागने का मौका मिला और वे लोग भाग गए ।

भूतनाथ—तब ?

सरयू—मगर आज एक खबर ऐसी सुनने में आई है जो आश्चर्य और उत्कंठा बढ़ाने वाली है और हम लोगों को चुपचाप बैठे रहने की आज्ञा नहीं देती ।

भूतनाथ—वह क्या ?

सरयू—यही कि कम्बख्त मायारानी की मदंद पाकर शिवदत्त, माधवी और मनोरमा ने, जो पहले ही अमीर थे, अपनी ताकत बहुत बढ़ा ली और सबके पहले उन्होंने यह काम किया कि राजा दिग्विजयसिंह के लड़के कल्याणसिंह को कैद से छुड़ा लिया, जिसकी खबर राजा वीरेन्द्रसिंह को अभी तक नहीं हुई, और यह भी तुम जानते ही हो कि रोहतासगढ़ के तहखाने का भेद कल्याणसिंह उतना ही जानता है जितना उसका बाप जानता था ।

भूतनाथ—बेशक-बेशक, अच्छा तब ?

सरयू—अब उन लोगों ने यह सुनकर कि राजा वीरेन्द्रसिंह, तेजसिंह इत्यादि ऐयार तथा किशोरी, कामिनी, कमलिनी, कमला और लाड़िली वगैरह सभी रोहतासगढ़ में मौजूद हैं, गुप्त रीति से रोहतासगढ़ पहुँचने का इरादा किया है ।

भूतनाथ—बेशक कल्याणसिंह उन लोगों को तहखाने की गुप्त राह से किले के अन्दर ले जा सकता है और उसका नतीजा निःसन्देह बहुत बुरा होगा।

सरयू—मैं भी यही सोचता हूँ, तिस पर मजा यह है कि वे लोग अकेले नहीं हैं, बल्कि हजार फौजी सिपाहियों को भी उन लोगों ने अपना साथी बनाया है।

भूतनाथ—और रोहतासगढ़ के तहखाने में इससे दूने आदमी भी हों, तो सहज ही में समा सकते हैं, मगर मेरे दोस्त, यह खबर तुमने कहाँ से और क्योंकर पाई ?

सरयू—मेरे चेलों ने जो प्रायः बाहर घूमा करते हैं, यह खबर मुझे सुनाई है।

भूतनाथ—तो क्या यह मालूम नहीं हुआ कि शिवदत्त, माधवी, मनोरमा और कल्याणसिंह तथा उनके साथी किस राह से जा रहे हैं और कहाँ हैं ?

सरयू—हाँ, यह भी मालूम हुआ है, वे लोग बराबर घाटी की राह से और जंगल ही जंगल जा रहे हैं।

भूतनाथ—(कुछ देर तक गौर करके) मौका तो अच्छा है !

सरयू—बेशक अच्छा है।

भूतनाथ—तब ?

सरयू—चलो, हम-तुम दोनों मिलकर कुछ करें !

भूतनाथ—मैं तैयार हूँ, मगर इस बात को सोच लो कि ऐसा करने पर तुम्हारा मालिक रंज तो न होगा !

सरयू—सब सोचा-समझा है, हमारा मालिक भी रोहतासगढ़ ही गया हुआ है और वह भी राजा वीरेन्द्रसिंह का पक्षपाती है।

भूतनाथ—खैर, तो अब विलम्ब करना अपने अमूल्य समय को नष्ट करना है। (ऊँची साँस लेकर) ईश्वर न करे शिवदत्त के हाथ कहीं किशोरी लग जाये, अगर ऐसा हुआ तो अबकी दफे वह बेचारी कदापि न बचेगी।

सरयू—मैं भी यही सोच रहा हूँ, अच्छा तो अब तैयार हो जाओ, मगर मैं नियमानुसार तुम्हारी आँखों पर पट्टी बाँध कर बाहर ले जाऊँगा।

भूतनाथ—कोई चिन्ता नहीं, हाँ, यह तो कहो कि मेरे ऐयारों के बटुए में कई मसालों की कमी हो गई है, क्या तुम उसे पूरा कर सकते हो ?

सरयू—हाँ-हाँ, जिन-जिन चीजों की जरूरत हो ले लो, यहाँ किसी बात की कमी नहीं है।

13

दोपहर दिन का समय है। गर्म-गर्म हवा के झपेटों से उड़ी हुई जमीन की मिट्टी केवल आसमान ही को गँदला नहीं कर रही है बल्कि पथिकों के शरीरों को भी अपना-सा करती और आँखों को इतना खुलने नहीं देती है जिसमें रास्ते को अच्छी तरह देखकर

तेजी के साथ चलें और किसी घने पेड़ के नीचे पहुँच कर अपने थके-माँदे शरीर को आराम दें। ऐसे ही समय में भूतनाथ, सरयूसिंह और सरयूसिंह का एक चेला आँखों को मिट्टी और गर्द से बचाने के लिए अपने-अपने चेहरों पर बारीक कपड़ा डाले रोहतासगढ़ की तरफ तेजी के साथ कदम बढ़ाये चले जा रहे हैं। हवा के झपेटे आगे बढ़ने में रोक-टोक करते हैं, मगर ये तीनों अपनी धुन के पक्के इस तरह चले जा रहे हैं कि बात तक नहीं करते, हाँ, उस सामने के घने जंगल की तरफ इनका ध्यान अवश्य है जहाँ आधी घड़ी के अन्दर ही पहुँचकर सफर की हरारत मिटा सकते हैं। उन तीनों ने अपनी चाल और भी तेज की और थोड़ी ही देर बाद उसी जंगल में एक घने पेड़ के नीचे बैठकर थकावट मिटाते दिखाई देने लगे।

सरयू—(रूमाल से मुँह पोंछकर) यद्यपि आज का सफर दुखःदायी हुआ परन्तु हम लोग ठीक समय पर ठिकाने पहुँच गये।

भूतनाथ—अगर दुश्मनों का डेरा अभी तक इसी जंगल में हो तो मैं भी ऐसा ही कहूँगा।

सरयू—बेशक वे लोग अभी तक इसी जंगल में होंगे क्योंकि मेरे शागिर्द ने उनके दो दिन तक यहाँ ठहरने की खबर दी थी और वह जासूसी का काम बहुत अच्छे ढंग से करता है।

भूतनाथ—तब हम लोगों को कोई ऐसा ठिकाना ढूँढ़ना चाहिए, जहाँ पानी हो और अपना भेष अच्छी तरह बदल सकें।

सरयू—जरा-सा और आराम कर लें, तब उठें।

भूतनाथ—क्या हर्ज है।

थोड़ी देर तक ये तीनों उसी पेड़ के नीचे बैठे बातचीत करते रहे और इसके बाद उठकर ऐसे ठिकाने पहुँचे, जहाँ साफ जल का सुन्दर चश्मा बह रहा था। उसी चश्मे के जल से बदन साफ करने के बाद तीनों ऐयारों ने आपस में कुछ सलाह करके अपनी सूरतें बदलीं और वहाँ से उठकर दुश्मनों की टोह में इधर-उधर घूमने लगे तथा संध्या होने के पहले ही उन लोगों का पता लगा लिया जो दौ-सौ आदमियों के साथ उसी जंगल में टिके हुए थे। जब रात हुई और अंधकार ने अपना दखल चारों तरफ अच्छी तरह जमा लिया, तो ये तीनों उस लश्कर की तरफ रवाना हुए।

शिवदत्त और कल्याणसिंह तथा उनके साथियों ने जंगल के मध्य में डेरा जमाया हुआ था। खेमा या कनात का नाम-निशान न था, बड़े-बड़े और घने पेड़ों के नीचे शिवदत्त और कल्याणसिंह मामूली बिछावन पर बैठे हुए बातें कर रहे थे और उनसे थोड़ी ही दूर पर उनके संगी-साथी और सिपाही लोग अपने-अपने काम तथा रसोई बनाने की फिक्र में लगे हुए थे। जिस पेड़ के नीचे शिवदत्त और कल्याणसिंह थे, उससे तीस या चालीस गज की दूरी पर दो पालकियाँ पेड़ों की झुरमुट के अन्दर रखी हुई थीं और उनमें माधवी तथा मनोरमा विराज रही थीं और इन्हीं के पीछे की तरफ बहुत से घोड़े पेड़ों के साथ बँधे हुए घास चर रहे थे।

शिवदत्त और कल्याणसिंह एकान्त में बैठे बातचीत कर रहे थे। उनसे थोड़ी ही

दूर पर एक जवान, जिसका नाम धन्नूसिंह था, हाथ में नंगी तलवार लिए हुए पहरा दे रहा था और यही जवान उन दो-सौ सिपाहियों का अफसर था जो इस समय जंगल में मौजूद थे । रात हो जाने के कारण कहीं-कहीं रोशनी हो रही थी और एक लालटेन उस जगह जल रही थी, जहाँ शिवदत्त और कल्याणसिंह बैठे हुए आपस में बातें कर रहे थे ।

शिवदत्त—हमारी फौज ठिकाने पहुँच गई होगी ।

कल्याणसिंह—बेशक ।

शिवदत्त—क्या इतने आदमियों का रोहतासगढ़ तहखाने के अन्दर समा जाना सम्भव है ?

कल्याणसिंह—(हँस कर) इसके दूने आदमी भी अगर हों तो उस तहखाने में अँट सकते हैं ।

शिवदत्त—अच्छा तो उस तहखाने में घुसने के बाद क्या-क्या करना होगा ?

कल्याणसिंह—उस तहखाने के अन्दर चार कैदखाने हैं, पहले उन कैदखानों को देखेंगे, अगर उनमें कोई कैदी होगा तो उसे छुड़ा कर अपना साथी बनावेंगे । मायारानी और उसका दारोगा भी उन्हीं कैदखानों में से किसी में जरूर होंगे और छूट जाने पर उन दोनों से बड़ी मदद मिलेगी ।

शिवदत्त—बेशक बड़ी मदद मिलेगी, अच्छा तब ?

कल्याणसिंह—अगर उस समय वीरेन्द्रसिंह वगैरह तहखाने की सैर करते हुए मिल जायेंगे, तो मैं उन लोगों के बाहर निकलने का रास्ता बन्द करके फँसाने की फिक्र करूँगा तथा आप फौजी सिपाहियों को लेकर किले के अन्दर चले जाइयेगा, और मर्दानगी के साथ किले में अपना दखल कर लीजियेगा ।

शिवदत्त—ठीक है मगर यह कब संभव है कि उस समय वीरेन्द्रसिंह वगैरह तहखाने की सैर करते हुए हम लोगों को मिल जायें ?

कल्याणसिंह—अगर न मिलेंगे तो न सही, उस अवस्था में हम लोग एक साथ किले के अन्दर आना दखल ज्मावेंगे और वीरेन्द्रसिंह तथा उनके ऐयारों को गिरफ्तार कर लेंगे । यह तो आप सुन ही चुके हैं कि इस समय रोहतासगढ़ किले में फौजी सिपाही पाँच सौ से ज्यादा नहीं हैं, सो भी बेफिक्र बैठे होंगे और हम लोग यकायक हर तरह से तैयार जा पहुँचेंगे । मगर मेरा दिल यही गवाही देता है कि वीरेन्द्रसिंह वगैरह को हम लोग तहखाने में सैर करते हुए अवश्य देखेंगे क्योंकि वीरेन्द्रसिंह ने, जहाँ तक सुना गया है, अभी तक तहखाने की सैर नहीं की, अबकी दफे जो वह वहाँ गए हैं, तो जरूर तहखाने की सैर करेंगे और तहखाने की सैर दो-एक दिन में नहीं हो सकती, आठ-दस दिन अवश्य लगेंगे, और सैर करने का समय भी रात ही को ठीक होगा, इसी से कहते हैं कि अगर वे लोग तहखाने में मिल जायें, तो ताज्जुब नहीं ।

शिवदत्त—अगर ऐसा हो तो क्या बात है । मगर सुनो तो, कदाचित् वीरेन्द्रसिंह तहखाने में मिल गए तो तुम तो उनके फँसाने की फिक्र में लगोगे और मुझे किले के अन्दर घुसकर दखल जमाना होगा । मगर मैं उस तहखाने के रास्ते को जानता ही नहीं । तुम कह चुके हो कि तहखाने में आने-जाने के लिए कई रास्ते हैं और वे पेचीले हैं अतः

ऐसी अवस्था में मैं क्या कर सकूंगा ?

कल्याणसिंह—ठीक है मगर आपको तहखाने के कुछ रास्तों का हाल और वहाँ आने-जाने की तरकीब मैं सहज ही में समझा सकता हूँ।

शिवदत्त—सो कैसे ?

कल्याणसिंह ने अपने पास पड़े हुए एक बटुए में से कलम-दवात और कागज निकाला और लालटेन को जो कुछ हट कर जल रही थी पास रखने के बाद कागज पर तहखाने का नक्शा खींचकर समझाना शुरू किया। उसने ऐसे ढंग से समझाया कि शिवदत्त को किसी तरह का शक न रहा और उसने कहा, "अब तो मैं बखूबी समझ गया।" उसी समय बगल से यह आवाज आई, "ठीक है, मैं भी समझ गया।"

वह पेड़ बहुत मोटा और जंगली लताओं के चढ़े होने से खूब घना हो रहा था। शिवदत्त और कल्याणसिंह की पीठ जिस पेड़ की तरफ थी, उसी की आड़ में कुछ देर से खड़ा एक आदमी उन दोनों की बातचीत सुन रहा और छिपकर उस नक्शे को भी देख रहा था। जब उसने कहा कि 'ठीक है, मैं भी समझ गया' तब ये दोनों चौंके और घूमकर पीछे की तरफ देखने लगे, मगर एक आदमी के भागने की आहट के सिवाय और कुछ भी मालूम न हुआ।

कल्याणसिंह—लीजिये श्रीगणेश हो गया, निसःन्देह वीरेन्द्रसिंह के ऐयारों को हमारा पता लग गया।

शिवदत्त—रात तो ऐसी ही मालूम होती है, लेकिन कोई चिन्ता नहीं, देखो हम बन्दोबस्त करते हैं।

कल्याणसिंह—अगर हम ऐसा जानते तो आपके ऐयारों को दूसरा काम सुपुर्द करके आगे बढ़ने की राय कदापि न देते।

शिवदत्त—धन्नूसिंह को बुलाना चाहिए।

इतना कहकर शिवदत्त ने ताली बजाई मगर कोई न आया और न किसी ने कुछ जवाब दिया। शिवदत्त को ताज्जुब मालूम हुआ और उसने कहा, "अभी तो हाथ में नंगी तलवार लिये यहाँ पहरा दे रहा था, फिर चला कहाँ गया ?" कल्याणसिंह ने जफील बजाई जिसकी आवाज सुनकर कई सिपाही दौड़ आये और हाथ जोड़ कर सामने खड़े हो गये। शिवदत्त ने एक सिपाही से पूछा, "धन्नू कहाँ गया है ?"

सिपाही—मालूम नहीं हुजूर, अभी तो इसी जगह पर टहल रहे थे।

शिवदत्त—देखो कहाँ है, जल्द बुलाओ।

हुक्म पाकर वे सब चले गए और थोड़ी ही देर में वापस आकर बोले, "हुजूर, करीब में तो कहीं पता नहीं लगता।"

शिवदत्त—बड़े आश्चर्य की बात है। उसे दूर जाने की आज्ञा किसने दी ?

इतने ही में हाँफता-काँपता धन्नूसिंह भी आ मौजूद हुआ जिसे देखते ही शिवदत्त ने पूछा, "तुम कहाँ चले गये थे !"

धन्नूसिंह—महाराज, कुछ न पूछिये, मैं तो बड़ी आफत में फँस गया था !

शिवदत्त—सो क्या ? और तुम बदहवास क्यों हो रहे हो ?

धन्नूसिंह—मैं इसी जगह पर घूम-घूम कर पहरा दे रहा था कि एक लड़के ने जिसे मैंने आज के सिवाय पहले कभी देखा न था आकर कहा, "एक औरत तुमसे कुछ कहना चाहती है।" यह सुन कर मुझे ताज्जुब हुआ और मैंने उससे पूछा, "वह औरत कौन है, कहाँ है और मुझ से क्या कहना चाहती है?" इसके जवाब में लड़का बोला, "सो सब मैं कुछ नहीं जानता, तुम खुद चलो और जो कुछ वह कहती है सुन लो, इसी जगह पास ही में तो है।" इतना सुन कर ताज्जुब करता हुआ मैं उस लड़के के साथ चला और थोड़ी ही दूर पर एक औरत को देखा। (काँप कर) क्या कहूँ, ऐसा दृश्य तो आज तक मैंने देखा ही न था।

शिवदत्त—अच्छा-अच्छा कहो, वह औरत कैसी और किस उम्र की थी?

धन्नूसिंह—कृपानिधान, वह बड़ी भयानक औरत थी। काला-रंग, बड़ी-बड़ी लाल आँखें, और हाथ में लोहे का एक डंडा लिये हुए थी जिसमें बड़े-बड़े काँटे लगे थे और उसके चारों तरफ बड़े-बड़े और भयानक शक्ल के कुत्ते मौजूद थे जो मुझे देखते ही गुर्राने लगे। उस औरत ने कुत्तों को डाँटा जिससे वे चुप हो रहे, मगर चारों तरफ से मुझे घेर कर खड़े हो गये। डर के मारे मेरी अजब हालत हो गई। उस औरत ने मुझसे कहा, "आपने हाथ की तलवार म्यान में कर ले नहीं तो ये कुत्ते तुझे फाड़ खायेंगे।" इतना सुनते ही मैंने तलवार म्यान में कर ली और इसके साथ ही वे कुत्ते मुझसे कुछ दूर हट कर खड़े हो गए। (लम्बी साँस लेकर)ओफ-ओह! इतने भयानक और बड़े कुत्ते मैंने आज तक नहीं देखे थे!

शिवदत्त—(आश्चर्य और भय से) अच्छा-अच्छा, आगे चलो, तब क्या हुआ?

धन्नूसिंह—मैंने डरते-डरते उस औरत से पूछा—"आपने मुझे क्यों बुलाया?" उस औरत ने कहा, "मैं अपनी बहिन मनोरमा से मिलना चाहती हूँ उसे बहुत जल्द मेरे पास ले आ!"

शिवदत्त—(आश्चर्य से) अपनी बहिन मनोरमा से!

धन्नूसिंह—जी हाँ। मुझे यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि मुझे स्वप्न में भी इस बात का गुमान न हो सकता था कि मनोरमा की बहिन ऐसी भयानक राक्षसी होगी! और महाराज, उसने आपको और कुँअर साहब को भी अपने पास बुलाने के लिए कहा।

कल्याणसिंह—(चौंक कर) मुझे और महाराज को?

धन्नूसिंह—जी हाँ।

शिवदत्त—अच्छा, तब क्या हुआ?

धन्नूसिंह—मैंने कहा कि तुम्हारा सन्देशा मनोरमा को अवश्य दे दूँगा, मगर महाराज और कुँअर साहब तुम्हारे कहने से यहाँ नहीं आ सकते।

कल्याणसिंह—तब उसने क्या कहा?

धन्नूसिंह—बस, मेरा जवाब सुनते ही वह बिगड़ गई और डाँट कर बोली, "ओ कम्बख्त! खबरदार! जो मैं कहती हूँ वह तुझे और तेरे महाराज को करना ही होगा!" (काँप कर) महाराज, उसके डाँटने के साथ ही एक कुत्ता उछल कर मुझ पर

चढ़ बैठा। अगर वह औरत अपने कुत्ते को न डाँटती और न रोकती तो बस मैं आज ही समाप्त हो चुका था ! (गर्दन और पीठ के कपड़े दिखाकर) देखिए मेरे तमाम कपड़े उस कुत्ते के बड़े-बड़े नाखूनों की बदौलत फट गए और बदन भी छिल गया, देखिये, यह मेरे ही खून से मेरे कपड़े तर हो गये हैं।

शिवदत्त—(भय और घबराहट से)ओफ-ओह धन्नूसिंह, तुम तो जख्मी हो गये! तुम्हारे पीठ पर के कपड़े सब लहू से तर हो रहे हैं !

धन्नूसिंह—जी हाँ महाराज, बस आज मैं काल के मुँह से निकलकर आया हूँ, मगर अभी तक मुझे इस बात का विश्वास नहीं होता कि मेरी जान बचेगी।

कल्याणसिंह—सो क्यों ?

धन्नूसिंह—जवाब देने के लिए लौट कर मुझे फिर उसके पास जाना होगा।

कल्याणसिंह—सो क्यों ? अगर न जाओ तो क्या हो ? क्या हमारी फौज में भी आकर वह उत्पात मचा सकती है ?

इतने ही में दो-तीन भयानक कुत्तों के भौंकने की आवाज थोड़ी ही दूर पर से आई जिसे सुनते ही धन्नूसिंह थर-थर काँपने लगा। शिवदत्त तथा कल्याणसिंह भी डर कर उठ खड़े हुए और काँपते हुए उस तरफ देखने लगे। उसी समय बदहवास और घबराई हुई मनोरमा भी वहाँ आ पहुँची और बोली, "अभी मैंने भूतनाथ की सूरत देखी है, वह बेखौफ मेरी पालकी के पास आकर कह गया है कि आज तुम लोगों की जान लिये बिना मैं नहीं रह सकता ! अब क्या होगा ? उसका बेखौफ यहाँ चले तक आना मामूली बात नहीं है !"

चन्द्रकान्ता सन्तति

चौदहवाँ भाग

1

धन्नूसिंह की बातों ने शिवदत्त और कल्याणसिंह को ऐसा बदहवास कर दिया कि उन्हें बात करना मुश्किल हो गया। शिवदत्त सोच रहा था कि कुछ देर की सच्ची मोहलत मिले तो मनोरमा से उसकी बहिन का हाल पूछे, मगर उसी समय घबराई हुई मनोरमा खुद ही वहाँ आ पहुँची और उसने जो कुछ कहा वह और भी परेशान करने वाली बात थी। आखिर शिवदत्त ने मनोरमा से पूछा, "क्या तुमने अपनी आँखों से भूतनाथ को देखा?"

मनोरमा—हाँ, मैंने स्वयं देखा और उसने वह बात मुझी से कही थी जो मैं आप से कह चुकी हूँ?

शिवदत्त—क्या वह तुम्हारी पालकी के पास आया था?

मनोरमा—हाँ, मैं माधवी से बातें कर रही थी कि वह निडर होकर हम लोगों के पास आ पहुँचा और धमका कर चला गया।

शिवदत्त—तो तुमने आदमियों को ललकारा क्यों नहीं?

मनोरमा—आप भूतनाथ को नहीं जानते कि वह कैसा भयानक आदमी है? क्या वे तीन-चार आदमी भूतनाथ को गिरफ्तार कर लेते जो मेरी पालकी के पास थे?

शिवदत्त—ठीक है, वह बड़ा ही भयानक ऐयार है, दो-चार क्या, दस-पाँच आदमी भी उसे गिरफ्तार नहीं कर सकते। मैं तो उसके नाम से काँप जाता हूँ। ओफ, वह समय मुझे कदापि नहीं भूल सकता जब उसने 'रूहा' बनकर मुझे अपने चंगुल में फँसा लिया था[1], अपने चेले को भीमसेन की सूरत में ऐसा बनाया कि मैं भी पहचान ही न सका। मगर बड़े आश्चर्य की बात यह है कि आज वह असली सूरत में तुम्हें दिखाई पड़ा। उसका इस तरह चले आना मामूली बात नहीं है।

मनोरमा—जितना मैं उसका हाल जानती हूँ आप उसका सोलहवाँ हिस्सा भी

1. देखिए चन्द्रकान्ता सन्तति, छठवाँ भाग, दूसरा बयान।

न जानते होंगे, और यही सबब है कि इस समय डर के मारे मेरा कलेजा काँप रहा है, फिर जहाँ तक मैं खयाल करती हूँ वह अकेला भी नहीं है।

शिवदत्त—नहीं-नहीं, वह अकेला कदापि न होगा। (धन्नूसिंह की तरफ इशारा करके) इसने भी एक ऐसी ही भयानक खबर मुझे सुनाई है।

मनोरमा—(ताज्जुब से) वह क्या ?

शिवदत्त—इसका हाल धन्नूसिंह की जुबानी ही सुनना ठीक होगा। (धन्नूसिंह से) हाँ, तुम जरा उन बातों को दोहरा तो जाओ !

धन्नूसिंह—बहुत खूब।

इतना कहकर धन्नूसिंह उन बातों को ऐसे ढंग से दोहरा गया कि मनोरमा का कलेजा काँप उठा और शिवदत्त तथा कल्याणसिंह पर पहले से भी ज्यादा असर पड़ा।

शिवदत्त—(मनोरमा से) क्या वास्तव में वह तुम्हारी बहिन है ?

मनोरमा—राम-राम, ऐसी भयानक राक्षसी मेरी बहिन हो सकती है ? असल बात तो यह है कि मैं अकेली हूँ, मेरी न कोई बहिन है, न भाई।

धन्नूसिंह—तब जरा खड़े-खड़े उसके पास चली चलो और जो कुछ वह पूछे, उसका जवाब दे दो।

मनोरमा—(रंज होकर) मैं क्यों उसके पास जाने लगी ! जाकर कह दो कि मनोरमा नहीं आती।

धन्नूसिंह—(खैरखाही दिखाने के ढंग से) मालूम होता है कि तुम अपने साथ ही साथ हमारे मालिक पर भी आफत लाना चाहती हो। (शिवदत्त से) महाराज, उस राक्षसी ने जितनी बातें मुझसे कहीं मैं अदब के खयाल से अर्ज नहीं कर सकता, तथापि एक बात केवल आप ही से कहने की इच्छा है।

धन्नूसिंह की बात सुनकर मनोरमा को डर के साथ ही साथ क्रोध भी चढ़ आया और वह कड़ी निगाह से धन्नूसिंह की तरफ देखकर बोली, "महाराज के खैरखाह एक तुम्हीं तो दिखाई देते हो ! इतनी बड़ी फौज की अफसरी करने के लिए क्यों मरे जाते हो जो एक औरत के सामने जाने की हिम्मत नहीं है ?"

धन्नूसिंह—मेरी हिम्मत तो लाखों आदमियों के बीच घुसकर तलवार चलाने की है, मगर केवल तुम्हारे सबब से अपने मालिक पर आफत लाने और अपनी जान देने का हौसला कोई बेवकूफ आदमी भी नहीं कर सकता। (शिवदत्त से) तिस पर भी महाराज जो आज्ञा दें उसे करने के लिए मैं तैयार हूँ। यदि आग में कूद पड़ने के लिए भी कहें तो क्षण-भर देर लगाने पर लानत भेजता हूँ, परन्तु मेरी बात सुनकर तब जो चाहें आज्ञा दें !

इतना सुनकर शिवदत्त उठ खड़ा हुआ और धन्नूसिंह को अपने पीछे आने का इशारा करके दूर चला गया जहाँ से उनकी बातचीत कोई दूसरा नहीं सुन सकता था।

शिवदत्त—हाँ धन्नूसिंह, अब कहो, क्या कहते हो ?

धन्नूसिंह—महाराज क्षमा करें, रंज न हों ! मैं सरकार का नमकख्वार गुलाम हूँ इसलिए सिवाय सरकार की भलाई के मुझे और कुछ भी नहीं सूझता। मैं यह नहीं चाहता मनोरमा के सबब से, जो आपकी कुछ भी भलाई नहीं कर सकती, बल्कि आपके सबब

से अपने को फायदा पहुँचा सकती है, आप किसी आफत में फँस जायें। मैं सच कहता हूँ, कि वह भयानक औरत साधारण नहीं मालूम होती। उसने कसम खाकर कहा था कि "मैं केवल एक पहर तक राजा शिवदत्त का मुलाहिजा करूँगी, इसके अन्दर अगर मनोरमा मेरे पास न भेजी जायगी या अलग न कर दी जायगी तो राजा शिवदत्त को इस दुनिया से उठा दूँगी और अपने कुत्तों को जो आदमी के खून के हरदम प्यासे रहते हैं···!" बस महाराज, अब आगे कहने से अदब जबान रोकती है। (काँपकर) ओफ वे भयानक कुत्ते जो शेर का कलेजा फाड़कर खा जायें ! (रुककर) फिर मनोरमा की ज़ुबानी भी आप सुन ही चुके हैं कि भूतनाथ यकायक यहाँ पहुँचकर मनोरमा से क्या कह गया है, इसलिए (हाथ जोड़कर) मैं अर्ज करता हूँ कि किसी भी बहाने मनोरमा को अपने से अलग कर दें। सरकार खूब समझते हैं कि जिस काम के लिए जा रहे हैं उसमें सिवाय कुँअर कल्याणसिंह के और कोई भी मदद नहीं कर सकता, फिर एक मामूली औरत के लिए अपना हर्ज या नुकसान करना उचित नहीं, आगे महाराज मालिक हैं जो चाहें करें।

शिवदत्त—तुम्हारा कहना बहुत ठीक है, मैं भी यही सोच रहा हूँ।

जिस जगह खड़े होकर ये दोनों बातें कर रहे थे, वहाँ एकदम निराला था, कोई आदमी पास न था। शिवदत्त ने अपनी बात पूरी भी न थी कि यकायक भूतनाथ वहाँ आ पहुँचा और कड़ाई के ढंग से शिवदत्त की तरफ देखकर बोला, "इस अँधेरे में शायद तुम मुझे न पहचान सको इसलिए मैं अपना नाम भूतनाथ बताकर तुम्हें होशियार करता हूँ कि घण्टे भर के अन्दर मेरी खूराक मनोरमा को मेरे हवाले करो या अपने साथ से अलग कर दो, नहीं तो जीता न छोड़ूँगा !" इतना कहकर बिना कुछ जवाब सुने भूतनाथ वहाँ से चला गया और शिवदत्त उसकी तरफ देखता ही रह गया।

शिवदत्त एक दफे भूतनाथ के हाथ में पड़ चुका था और भूतनाथ ने जो सलूक उसके साथ किया था उसे वह कदापि भूल नहीं सकता था बल्कि भूतनाथ के नाम ही से उसका कलेजा काँपता था, इसलिए वहाँ यकायक भूतनाथ के आ पहुँचने से वह काँप उठा और धन्नूसिंह की तरफ देखकर बोला, "निःसन्देह यह बड़ा ही भयानक ऐयार है !"

धन्नूसिंह—इसीलिए मैं अर्ज करता हूँ कि एक साधारण औरत के लिए इस भयानक ऐयार और उस राक्षसी को अपना दुश्मन बना लेना उचित नहीं है।

शिवदत्त—तुम ठीक कहते हो, अच्छा आओ मैं कल्याणसिंह से राय मिलाकर इसका बन्दोबस्त करता हूँ।

धन्नूसिंह को साथ लिए हुए शिवदत्त अपने ठिकाने पहुँचा जहाँ कल्याणसिंह और मनोरमा को छोड़ गया था। मनोरमा को यह कहकर वहाँ से बिदा कर दिया कि—'तुम अपने ठिकाने जाकर बैठो, हम यहाँ से कूच करने का बन्दोबस्त करते हैं और निश्चय हो जाने पर तुमको बुलावेंगे' और जब वह चली गई और वहाँ केवल ये ही तीन आदमी रह गये तब बातचीत होने लगी।

शिवदत्त ने धन्नूसिंह की जुबानी जो कुछ सुना था और धन्नूसिंह की जो कुछ राय हुई थी वह सब तथा बातचीत के समय यकायक भूतनाथ के आ पहुँचने और धमकाकर चले जाने का पूरा हाल कल्याणसिंह से कहा और पूछा कि—अब आपकी क्या राय होती

है ?' कुंअर कल्याणसिंह ने कहा, "मैं धन्नूसिंह की राय पसन्द करता हूँ। मनोरमा के लिए अपने को आफत में फँसाना बुद्धिमानी का काम नहीं है, अस्तु किसी मुनासिब ढंग से उसे अलग ही कर देना चाहिए।"

शिवदत्त—तिस पर भी अगर जान बचे तो समझें कि ईश्वर की बड़ी कृपा हुई।

कल्याणसिंह—सो क्या ?

शिवदत्त—मैं यह सोच रहा हूँ कि भूतनाथ का यहाँ आना केवल मनोरमा ही के लिए नहीं है। ताज्जुब नहीं कि हम लोगों का कुछ भेद भी उसे मालूम हो और वह हमारे काम में बाधा डाले।

कल्याणसिंह—ठीक है, मगर काम आधा हो चुका है, केवल हमारे और आपके वहाँ पहुँचने भर की देर है। यदि भूतनाथ हम लोगों का पीछा भी करेगा तो रोहतासगढ़ तहखाने के अन्दर हमारी मर्जी के बिना वह कदापि नहीं जा सकता और जब तक वह मनोरमा को ले जाकर कहीं रखने या अपना कोई काम निकालने का बन्दोबस्त करेगा तब तक तो हम लोग रोहतासगढ़ में पहुँचकर जो कुछ करना है, कर गुजरेंगे।

शिवदत्त—ईश्वर करे ऐसा ही हो, अच्छा अब यह कहिये कि मनोरमा को किस ढंग से अलग करना चाहिए ?

कल्याणसिंह – (धन्नूसिंह से) तुम बहुत पुराने और तजुर्बेकार आदमी हो, तुम ही बताओ कि क्या करना चाहिए ?

धन्नूसिंह—मेरी तो यही राय है कि मनोरमा को बुलाकर समझा दिया जाय कि 'अगर तुम हमारे साथ रहोगी तो भूतनाथ तुम्हें कदापि न छोड़ेगा, सो तुम मर्दानी पोशाक पहनकर धन्नूसिंह के (हमारे) साथ शिवदत्तगढ़ की तरफ चली जाओ, वह तुम्हें हिफाजत के साथ वहाँ पहुँचा देगा, जब हम लौटकर तुमसे मिलेंगे तो जैसा होगा, किया जायेगा। अगर तुम अपने आदमियों को साथ ले जाना चाहोगी तो भूतनाथ को मालूम हो जायेगा अतएव तुम्हारा अकेला ही यहाँ से निकल जाना उत्तम है।"

शिवदत्त—ठीक है लेकिन अगर इस बात को मंजूर कर ले तो क्या तुम भी उसी के साथ जाओगे ? तब तो हमारा बड़ा हर्ज होगा !

धन्नू—जी नहीं, मैं चार-पाँच कोस तक उसके साथ चला जाऊँगा, इसके बाद भुलावा देकर उसे छोड़ आपसे आ मिलूँगा।

शिवदत्त—(आश्चर्य से)धन्नूसिंह, क्या तुम्हारी अक्ल में कुछ फर्क पड़ गया है या तुम्हें निसयान (भूल जाने) की बीमारी हो गई है अथवा तुम कोई दूसरे धन्नूसिंह हो गए हो ? क्या तुम नहीं जानते कि मनोरमा ने मुझे किस तरह से रुपये की मदद की है और उसके पास कितनी दौलत है ? तुम्हारी मार्फत मनोरमा से कितने ही रुपये मँगवाये थे ? तो क्या इस हीरे की चिड़िया को मैं छोड़ सकता हूँ ? अगर मुझे ऐसा ही करना होता तो तरद्दुद की जरूरत ही क्या थी, इसी समय कह देते कि हमारे यहाँ से निकल जा !

धन्नूसिंह—(कुछ सोचकर) आपका कहना ठीक है, मैं इन बातों को भूल नहीं गया, मैं खूब जानता हूँ कि वह बेइन्तहा खजाने की चाभी है, मगर मैंने यह बात इसलिए कही कि जब उसके सबब से हमारे सरकार ही आफत में फँस जायेंगे, तो वह हीरे की

चिड़िया किसके काम आवेगी !

शिवदत्त—नहीं-नहीं, तुम इसके सिवाय कोई और तरकीब ऐसी सोचो जिसमें मनोरमा इस समय हमारे साथ से अलग तो जरूर हो जाये, मगर हमारी मुट्ठी से न निकल जाये ।

धन्नूसिंह—(सोचकर) अच्छा, तो एक काम किया जाये ।

शिवदत्त—वह क्या ?

धन्नूसिंह—इसे तो आप निश्चय जानिये कि यदि मनोरमा इस लश्कर से साथ रहेगी तो भूतनाथ के हाथ से कदापि न बचेगी और जैसा कि भूतनाथ कह चुका है वह सरकार के साथ भी बेअदबी जरूर करेगा, इसलिए यह तो अवश्य है कि उसे अलग जरूर किया जाये मगर वह रहे अपने कब्जे ही में । तो बेहतर होगा कि वह मेरे साथ की जाये, मैं जंगल-ही-जंगल एक गुप्त पगडण्डी से जिसे मैं बखूबी जानता हूँ रोहतासगढ़ तक उसे ले जाऊँ और जहाँ आप या कुँअर साहब आज्ञा दें ठहरकर राह देखूं । भूतनाथ को जब मालूम हो जायेगा कि मनोरमा अलग कर दी गई तब वह उसके खोजने की धुन में लगेगा, मगर मुझे नहीं पा सकता । हाँ, एक बात और है, आप भी यहाँ से शीघ्र ही डेरा उठायें और मनोरमा की पालकी इसी जगह छोड़ दें, जिससे मनोरमा को अलग कर देने का विश्वास भूतनाथ को पूरा-पूरा हो जाये ।

कल्याण—हाँ, यह राय बहुत अच्छी है, मैं इसे पसन्द करता हूँ ।

शिवदत्त—मुझे भी पसन्द है, मगर धन्नूसिंह को टिककर राह देखने का ठिकाना बताना आप ही का काम है ।

कल्याण—हाँ-हाँ, मैं बताता हूँ, सुनो धन्नूसिंह !

धन्नूसिंह—जी सरकार !

कल्याण—रोहतासगढ़ पहाड़ी के पूरब की तरफ एक बहुत बड़ा कुआँ है और उस पर एक टूटी-फूटी इमारत भी है ।

धन्नूसिंह—जी हाँ, मुझे मालूम है !

कल्याण—अच्छा तो अगर तुम उस कुएँ पर खड़े होकर पहाड़ की तरफ देखोगे तो टीले का ढंग का एक खण्ड पर्वत दिखाई देगा, जिसके ऊपर सूखा हुआ पुराना पीपल का पेड़ है और उसी पेड़ के नीचे एक खोह का मुहाना है । उसी जगह तुम हम लोगों का इन्तजार करना क्योंकि उसी खोह की राह से हम लोग रोहतासगढ़ तहखाने के अन्दर घुसेंगे, मगर उस झील तक पहुँचने का रास्ता जब तक हम न बतावें, तुम वहाँ नहीं जा सकते । (शिवदत्त से) आप मनोरमा को बुलवाकर सब हाल कहिये । अगर वह मंजूर करे तो हम धन्नूसिंह को रास्ते का हाल समझा दें ।

शिवदत्त—(धन्नूसिंह से) तुम ही जाकर उसे बुला लाओ ।

"बहुत अच्छा" कहकर धन्नूसिंह चला गया और थोड़ी ही देर में मनोरमा को साथ लिये हुआ आ पहुँचा । उसके विषय में जो कुछ राय हो चुकी थी, उसे कल्याणसिंह ने ऐसे ढंग से मनोरमा को समझाया कि उसने कबूल कर लिया और धन्नूसिंह के साथ चले जाना ही अच्छा समझा । कुँअर कल्याणसिंह ने उस ठीले तक पहुँचने का रास्ता धन्नूसिंह

को अच्छी तरह समझा दिया। दो घोड़े चुपचुपाते ही तैयार किये गये, मनोरमा ने मर्दानी पोशाक पालकी के अन्दर बैठकर पहनी और घोड़े पर सवार हो धन्नूसिंह से साथ रवाना हो गई। धन्नूसिंह की सवारी का घोड़ा बनिस्बत मनोरमा के घोड़े से तेज और ताकतवर था।

2

मनोरमा और धन्नूसिंह घोड़ों पर सवार होकर तेजी के साथ वहाँ से रवाना हुए और चार कोस तक बिना कुछ बातचीत किए चले आए। जब ये दोनों एक ऐसे मैदान में पहुँचे जहाँ बीचोंबीच में एक बहुत बड़ा आम का पेड़ और उसके चारों तरफ आधा कोस का मैदान साफ था यहाँ तक कि सरपत, जंगली बेर या पलास का भी कोई पेड़ न था जिसका होना जंगल या जंगल के आसपास आवश्यक समझा जाता है, तब धन्नूसिंह ने अपने घोड़े का मुँह उसी आम के पेड़ की तरफ यह कहके फेरा—"मेरे पेट में कुछ दर्द हो रहा है इसलिए थोड़ी देर तक इस पेड़ के नीचे ठहरने की इच्छा होती है।"

मनोरमा—ठहर तो जाओ, मगर खौफ है कि कहीं भूतनाथ न आ पहुँचे।

धन्नूसिंह—अब भूतनाथ के आने की आशा छोड़ो क्योंकि जिस राह से हम लोग आये हैं वह भूतनाथ को कदापि मालूम न होगी। मगर मनोरमा, तुम तो भूतनाथ से इतना डरती हो कि···

मनोरमा—(बात काटकर) भूतनाथ निःसन्देह ऐसा ही भयानक ऐयार है। पर थोड़े ही दिन की बात है कि जिस तरह आज मैं भूतनाथ से डरती हूँ उससे ज्यादा भूतनाथ मुझसे डरता था।

धन्नूसिंह—हाँ, जब तक उसके कागजात तुम्हारे या नागर के कब्जे में थे !

मनोरमा—(चौंककर, ताज्जुब से) क्या यह हाल तुमको मालूम है ?

धन्नूसिंह—हाँ, बहुत अच्छी तरह।

मनोरमा—सो कैसे ?

इतने ही में वे दोनों उस पेड़ के नीचे पहुँच गये और धन्नूसिंह यह कहकर घोड़े से नीचे उतर गया कि 'अब जरा बैठ जायें तो कहें।'

मनोरमा भी घोड़े से नीचे उतर पड़ी। दोनों घोड़े लम्बी बागडोर के सहारे पेड़ के साथ बाँध दिए और जीनपोश बिछाकर दोनों आदमी जमीन पर बैठ गये। रात आधी से ज्यादा जा चुकी थी और चन्द्रमा की विमल चाँदनी, जिसका थोड़ी ही देर पहले कहीं नाम-निशान भी न था, बड़ी खूबी के साथ चारों तरफ फैल रही थी।

मनोरमा—हाँ, अब बताओ कि भूतनाथ के कागजात का हाल तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?

धन्नूसिंह—मैंने भूतनाथ की ही जुबानी सुना था।

मनोरमा—हैं ! क्या तुमसे और भूतनाथ से जान-पहचान है ?

धन्नूसिंह—बहुत अच्छी तरह ।

मनोरमा—तो भूतनाथ ने तुमसे यह भी कहा होगा कि उसने अपने कागजात नागर के हाथ से कैसे पाये !

धन्नूसिंह—हाँ, भूतनाथ ने मुझसे वह किस्सा भी बयान किया था, क्या तुमको वह हाल मालूम नहीं हुआ ?

मनोरमा—मुझे वह हाल कैसे मालूम होता ? मैं तो मुद्दत तक कमलिनी के कैदखाने में सड़ती रही और जब वहाँ से छूटी तो दूसरे ही फेर में पड़ गई । मगर तुम जब वह सब हाल जानते ही हो तो फिर जान-बूझकर ऐसा सवाल क्यों करते हो ?

धन्नूसिंह—ओफ, पेट का दर्द ज्यादा होता जा रहा है ! जरा देर ठहरो तो मैं तुम्हारी बातों का जवाब दूँ ।

इतना कहकर धन्नूसिंह चुप हो गया और घण्टे भर से ज्यादा देर तक बातों का सिलसिला बन्द रहा । धन्नूसिंह यद्यपि इतनी देर तक चुप रहा मगर बैठा ही रहा और मनोरमा की तरफ से इस तरह होशियार और चौकन्ना रहा जैसे किसी दुश्मन की तरफ से होना वाजिब था । साथ ही इसके धन्नूसिंह की निगाह मैदान की तरफ भी इस ढंग से पड़ती रही जैसे किसी के आने की उम्मीद हो । मनोरमा उसके इस ढंग पर आश्चर्य कर रही थी । यकायक उस मैदान में दो आदमी बड़ी तेजी के साथ दौड़ते हुए उसी तरफ आते दिखाई पड़े जिधर मनोरमा और धन्नूसिंह का डेरा जमा हुआ ।

मनोरमा—ये दोनों कौन हैं जो इस तरफ आ रहे हैं ?

धन्नूसिंह—यही बात मैं तुमसे पूछना चाहता था मगर जब तुमने पूछ ही लिया तो कहना पड़ा कि इन दोनों में एक तो भूतनाथ है ।

मनोरमा—क्या तुम मुझसे दिल्लगी कर रहे हो ?

धन्नूसिंह—नहीं, कदापि नहीं ।

मनोरमा—तो फिर ऐसी बात क्यों कहते हो ?

धन्नूसिंह—इसलिए कि मैं वास्तव में धन्नूसिंह नहीं हूँ ।

मनोरमा—(चौंककर) तब तुम कौन हो ?

धन्नूसिंह—भूतनाथ का दोस्त और इन्द्रदेव का ऐयार सरयूसिंह ।

इतना सुनते ही मनोरमा का रंग बदल गया और उसने बड़ी फुर्ती से अपना दाहिना हाथ सरयूसिंह की तरफ बढ़ाया, मगर सरयूसिंह पहले ही से होशियार और चौकन्ना था, उसने चालाकी से मनोरमा की कलाई पकड़ ली ।

मनोरमा की उँगली में उसी तरह के जहरीले नगीने वाली अँगूठी थी, जैसी कि नागर की उँगली में थी और जिसने भूतनाथ को मजबूर कर दिया था तथा जिसका हाल इस उपन्यास के सातवें भाग में हम लिख आये हैं । उसी अँगूठी से मनोरमा ने नकली धन्नूसिंह को मारना चाहा मगर न हो सका, क्योंकि उसने मनोरमा की कलाई पकड़ ली और उसी समय भूतनाथ और सरयूसिंह का शागिर्द भी वहाँ आ पहुँचे । अब मनोरमा ने अपने को काल के मुँह में समझा और वह इतनी डरी कि जो उन ऐयारों ने कहा बेउज्र

करने के लिए तैयार हो गई।

भूतनाथ के हाथ से क्षमा-प्रार्थना की सहायता से छूटने की आशा मनोरमा को कुछ भी न थी, इसीलिए जब तक भूतनाथ ने उससे किसी तरह का सवाल न किया वह भी कुछ न बोली और बेउज्र हाथ-पैर बँधवाकर कैदियों की तरह मजबूर हो गई। इसके बाद भूतनाथ तथा सरयूसिंह में यों बातचीत होने लगी—

भूतनाथ—अब क्या करना होगा ?

सरयूसिंह—अब यही करना होगा कि तुम इसे अपने घोड़े पर सवार करा के घर ले जाओ और हिफाजत के साथ रखकर शीघ्र लौट जाओ।

भूतनाथ—और उस धन्नूसिंह के बारे में क्या किया जाये जिसे आप गिरफ्तार करने के बाद बेहोश करके डाल आए हैं ?

सरयूसिंह—(कुछ सोचकर) अभी उसे अपने कब्जे ही में रखना चाहिए क्योंकि मैं धन्नूसिंह की सूरत में राजा शिवदत्त के साथ रोहतासगढ़ तहखाने के अन्दर जाकर इन दुष्टों की चालबाजियों को जहाँ तक हो सके, बिगाड़ना चाहता हूँ। ऐसी अवस्था में अगर वह छूट जायेगा तो केवल काम ही नहीं बिगड़ेगा, बल्कि मैं खुद आफत में फँस जाऊँगा यदि शिवदत्त के साथ रोहतासगढ़ के तहखाने में जाने का साहस करूँगा।

इसके बाद सरयूसिंह ने भूतनाथ से वे बातें कहीं जो उससे शिवदत्त तथा कल्याणसिंह से हुई थीं और जो हम ऊपर लिख आए हैं। उस समय मनोरमा को मालूम हुआ कि नकली धन्नूसिंह ने जिस भयानक कुत्ते वाली औरत का हाल शिवदत्त से कहा और जिसे मनोरमा की बहिन बताया था, वह सब बिलकुल झूठ और बनावटी किस्सा था।

भूतनाथ—(सरयूसिंह से)तब तो आपको दुश्मनों के साथ मिल-जुलकर रोहतासगढ़ तहखाने के अन्दर जाने का बहुत अच्छा मौका मिला है।

सरयूसिंह—हाँ, इसी से मैं कहता हूँ कि उस धन्नूसिंह को अभी अपने कब्जे में ही रखना चाहिए जिसे हम लोगों ने गिरफ्तार किया है।

भूतनाथ—कोई चिन्ता नहीं, मैं लगे हाथ किसी तरह उसे भी अपने घर पहुँचा दूंगा। (शागिर्द की तरफ इशारा करके) इसे तो आप मनोरमा बनाकर अपने साथ ले जाएँगे ?

सरयूसिंह—जरूर ले जाऊँगा और कल्याणसिंह के बताये हुए ठिकाने पर पहुँचकर उन लोगों की राह देखूंगा।

भूतनाथ—और मुझको क्या काम सुपुर्द किया जाता है ?

सरयूसिंह—मुझे इस बात का पता ठीक-ठीक लग चुका है कि शेरअलीखाँ आजकल रोहतासगढ़ में है और कुँअर कल्याणसिंह उससे मदद लिया चाहता है। ताज्जुब नहीं कि अपने दोस्त का लड़का समझकर शेरअलीखाँ उसकी मदद करे, और अगर ऐसा हुआ तो राजा वीरेन्द्रसिंह को बड़ा नुकसान पहुँचेगा।

भूतनाथ—मैं आपका मतलब समझ गया, अच्छा तो इस काम से छुट्टी पाकर मैं बहुत जल्द रोहतासगढ़ पहुँचंगा और शेरअलीखाँ की हिफाजत करूँगा। (कुछ सोचकर) मगर इस बात का खौफ है कि अगर मेरा वहाँ जाना राजा वीरेन्द्रसिंह पर खुल जायेगा

तो कहीं मुझे बलभद्रसिंह का बिना पता लगाये लौट आने के जुर्म में सजा तो न मिलेगी ? (इतना कहकर भूतनाथ ने मनोरमा की तरफ देखा) ।

सरयूसिंह—नहीं-नहीं, ऐसा न होगा, और अगर हुआ भी तो मैं तुम्हारी मदद करूँगा ।

बलभद्रसिंह का नाम सुनकर मनोरमा जो सब बातचीत सुन रही थी चौंक पड़ी और उसके दिल में एक हौल-सा पैदा हो गया । उसने अपने को रोकना चाहा, मगर रोक न सकी और घबराकर भूतनाथ से पूछ बैठी, "बलभद्रसिंह कौन ?"

भूतनाथ—(मनोरमा से) लक्ष्मीदेवी का बाप, जिसका पता लगाने के लिए ही हम लोगों ने तुझे गिरफ्तार किया है ।

मनोरमा—(घबराकर)मुझसे और उससे भला क्या सम्बन्ध ? मैं क्या जानूँ, वह कौन है, कहाँ है और लक्ष्मीदेवी किसका नाम है !

भूतनाथ—खैर, जब समय आवेगा तो सब कुछ मालूम हो जायेगा । (हँसकर) लक्ष्मीदेवी से मिलने के लिए तो तुम लोग रोहतासगढ़ जाते ही थे, मगर बलभद्रसिंह और इन्दिरा से मिलने का बन्दोबस्त अब मैं करूँगा, घबराती काहे को हो !

मनोरमा—(घबराहट के साथ ही बेचैनी से)इन्दिरा, कैसी इन्दिरा ?ओफ !नहीं-नहीं, मैं क्या जानूँ कौन इन्दिरा ! क्या तुम लोगों से उसकी मुलाकात हो गई ?क्या उसने मेरी शिकायत की थी ! कभी नहीं, वह झूठी है, मैं तो उसे प्यार करती थी और अपनी बेटी समझती थी : मगर उसे किसी ने बहका दिया है या बहुत दिनों तक दुःख भोगने के कारण वह पागल हो गई है, या ताज्जुब नहीं कि मेरी सूरत बनाकर किसी ने उसे धोखा दिया हो । नहीं-नहीं, वह मैं न थी कोई दूसरी थी, मैं उसका भी नाम बताऊँगी । (ऊँची साँस लेकर) नहीं-नहीं, इन्दिरा नहीं, मैं तो मथुरा गई हुई थी, वह कोई दूसरी ही थी, भला मैं तेरे साथ क्यों ऐसा करने लगी थी ! ओफ ! मेरे पेट में दर्द हो रहा है, आह, आह, मैं क्या करूँ !

मनोरमा की अजब हालत हो गई । उसका बोलना और बकना पागलों की तरह मालूम पड़ता था जिसे देख भूतनाथ और सरयूसिंह आश्चर्य करने लगे, मगर दोनों ऐयार इतना तो समझ ही गये कि दर्द का बहाना करके मनोरमा अपने असली दिली दर्द को छिपाना चाहती है जो होना कठिन है ।

सरयूसिंह—(भूतनाथ से)खैर अब इसका पाखण्ड कहाँ तक देखोगे, बस, झटपट ले जाओ और अपना काम करो । यह समय अनमोल है और इसे नष्ट न करना चाहिए । (अपने शागिर्द की तरफ इशारा करके) इसे हमारे पास छोड़ जाओ, मैं भी अपने काम की फिक्र में लगूँ ।

भूतनाथ ने बेहोशी की दवा सुँघाकर मनोरमा को बेहोश किया और जिस घोड़े पर वह आई थी उसी पर उसे लाद आप भी सवार हो पूरब का रास्ता लिया । उधर सरयूसिंह अपने चेले को मनोरमा बनाने की फिक्र में लगा ।

3

हमने ऊपर लिखा है कि शेरअलीखाँ को बड़ी खातिरदारी और इज्जत के साथ रोहतासगढ़ में रखा गया क्योंकि उसने अपने कसूरों की माफी माँगी थी और तेजसिंह ने उसे माफी दे भी दी थी। अब हम उस रात का हाल लिखते हैं जिस रात राजा वीरेन्द्रसिंह, तेजसिंह और इन्द्रदेव वगैरह तहखाने के अन्दर गये थे और यकायक आ पड़ने वाली मुसीबत में गिरफ्तार हो गये थे। उन लोगों का किसी काम के लिए तहखाने के अन्दर जाना शेरअलीखाँ को मालूम था मगर उसे इन बातों से कोई मतलब न था, उसे तो सिर्फ इसकी फिक्र थी कि भूतनाथ का मुकदमा खतम हो ले तो वह अपनी राजधानी पटने की तरफ पधारे और इसीलिए वह राजा वीरेन्द्रसिंह की तरफ से रोका भी गया था।

जिस कमरे में शेरअलीखाँ का डेरा था वह बहुत लम्बा-चौड़ा और कीमती असबाब से सजा हुआ था। उसके दोनों तरफ दो कोठरियाँ थीं और बाहर दालान तथा दालान के बाद एक चौखूटा सहन था। उन दोनों कोठरियों में से जो कमरे के दोनों तरफ थीं एक में तो सोने के लिए बेशकीमती मसहरी बिछी हुई थी और दूसरी कोठरी में पहनने के कपड़े तथा सजावट का सामान रहता था। इस कोठरी में एक दरवाजा और भी था जो उस मकान के पिछले हिस्से में जाने का काम देता था, मगर इस समय वह बन्द था और उसकी ताली दारोगा के पास थी। जिस कोठरी में सोने की मसहरी थी उसमें सिर्फ एक ही दरवाजा था और दरवाजे वाली दीवार को छोड़ के उसकी बाकी तीनों तरफ की दीवारें आबनूस की लकड़ी की बनी हुई थीं जिन पर बहुत चमकदार पालिश किया हुआ था। वही अवस्था उस कमरे की भी थी जिसमें शेरअलीखाँ रहता था।

रात डेढ़ पहर से कुछ ज्यादा जा चुकी थी। शेरअली खाँ अपने कमरे में मोटी गद्दी पर लेटा हुआ कोई किताब पढ़ रहा था और सिरहाने की तरफ संगमरमर की छोटी-सी चौकी के ऊपर एक शमादान जल रहा था, इसके अतिरिक्त कमरे में और कोई रोशनी न थी। यकायक सोने वाली कोठरी के अन्दर से एक ऐसी आवाज आई जैसे किसी ने मसहरी के साथ ठोकर खाई हो। शेरअलीखाँ चौंक पड़ा और कुछ देर तक उसी कोठरी की तरफ जिसके आगे पर्दा गिरा हुआ था देखता रहा। जब पर्दे को भी हिलते देखा तो किताब जमीन पर रखकर बैठ गया और उसी समय कल्याणसिंह को पर्दा हटाकर बाहर निकलते देखा। शेरअलीखाँ घबराकर उठ खड़ा हुआ और बड़े गौर से उसे देखकर बोला, "हैं, क्या तुम कुँअर कल्याणसिंह हो?"

कल्याणसिंह—(सलाम करके) जी हाँ।

शेरअलीखाँ—तुम इस कमरे में कब आये और कब इस कोठरी में गये मुझे कुछ भी नहीं मालूम!

कल्याणसिंह—मैं बाहर से इस कमरे में नहीं आया बल्कि इसी कोठरी में से आ रहा हूँ।

शेरअलीखाँ—सो कैसे? इस कोठरी में तो कोई दूसरा रास्ता नहीं है!

कल्याणसिंह—जी हाँ, एक रास्ता है जिसे शायद आप नहीं जानते, मगर पहले मैं दरवाजा बन्द कर लूं।

इतना कहकर कल्याणसिंह दरवाजे की तरफ बढ़ गया और इस कमरे के तीनों दरवाजे बन्द करके शेरअलीखां के पास लौट आया।

शेरअलीखाँ—दरवाजे क्यों बन्द कर दिए ? यह क्या करते हो ?

कल्याणसिंह—जी हाँ, यदि कोई देख लेगा तो मुश्किल होगी।

शेरअलीखाँ—तो इससे मालूम होता है कि तुम राजा वीरेन्द्रसिंह की मर्जी से नहीं छूटे, बल्कि किसी की मदद और चोरी से निकल भागे हो, क्योंकि चुनारगढ में तुम्हारे कैद होने का हाल मैं अच्छी तरह जानता हूँ।

कल्याणसिंह—जी हाँ, ऐसी ही बात है।

शेरअलीखाँ—(बैठकर) अच्छा आओ, मेरे पास बैठ जाओ और कहो कि तुम कैसे छूटे और यहाँ क्योंकर आ पहुँचे ?

कल्याणसिंह—(बैठकर) खुलासा हाल कहने का तो इस समय मौका नहीं है। परन्तु इतना कहना जरूरी है कि अपनी मदद के लिए मुझे राजा शिवदत्त ने छुड़ाया है और अब मैं सहायता लेने के लिए आपके पास आया हूँ। यदि आप मदद देंगे तो मैं आज ही राजा वीरेन्द्रसिंह से अपने बाप का बदला ले लूंगा।

शेरअलीखाँ—(हँस कर) यह तुम्हारी नादानी है। तुम अभी लड़के हो, ऐसे मामलों पर गौर नहीं कर सकते। राजा वीरेन्द्रसिंह के साथ दुश्मनी करना अपने पैर में आप कुल्हाड़ी मारना है, उनसे लड़कर कोई जीत नहीं सकता और न उनके ऐयारों के सामने किसी की चालाकी ही चल सकती है।

कल्याणसिंह—आपका यह कहना ठीक है, मगर इस समय हम लोगों ने राजा वीरेन्द्रसिंह और उनके ऐयारों को हर तरह से मजबूर कर रखा है।

शेरअलीखाँ—सो कैसे ?

कल्याणसिंह—क्या आप नहीं जानते कि वीरेन्द्रसिंह और उनके ऐयार किशोरी, कामिनी इत्यादि को लेकर तहखाने के अन्दर गये हैं ?

शेरअलीखाँ—हाँ, सो तो जानते हैं, मगर इससे क्या ?

कल्याणसिंह—जिस समय वीरेन्द्रसिंह वगैरह तहखाने में गये हैं, उसके पहले ही हम लोग अपनी छोटी सेना सहित तहखाने में पहुँच चुके थे और गुप्त राह से यकायक इस किले में पहुंचकर अपना दखल जमाना चाहते थे, मगर ईश्वर ने उन लोगों को तहखाने ही में पहुँचा दिया जिससे हम लोगों को बड़ा सुभीता हुआ। शिवदत्तसिंह ने तो सेना सहित दुश्मनों को घेर लिया है और मैं एक सुरंग की राह से जिसका दूसरा मुहाना (सोने वाली कोठरी की तरफ इशारा करके) इस कोठरी में निकला है, आपके पास मदद के लिए आया हूँ, आशा है कि उधर शिवदत्तसिंह ने दुश्मनों को काबू में कर लिया होगा या मार डाला होगा और इधर मैं आपकी मदद से किले में अपना अधिकार जमा लूंगा।

शेरअलीखाँ—(कुछ सोचकर) मैं खूब जानता हूँ कि इस तहखाने का और यहाँ के कई पेचीले रास्तों का हाल तुमसे ज्यादा जानने वाला अब और कोई नहीं है।

इसलिए तुम लोगों का तहखाने में राजा वीरेन्द्रसिंह वगैरह को मार डालना तो यद्यपि मुश्किल है। हाँ, घेर लिया हो तो ताज्जुब की बात नहीं है, मगर साथ ही इसके इस बात का भी खयाल करना चाहिए कि यद्यपि राजा वीरेन्द्रसिंह वगैरह इस तहखाने का हाल बखूबी नहीं जानते, परन्तु आज इन्द्रदेव उनके साथ है जिसे हम-तुम अच्छी तरह जानते हैं। क्या तुम्हें उस दिन की बात याद नहीं है जिस दिन तुम्हारे पिता ने हमारे सामने तुमसे कहा था कि यहाँ के तहखाने का हाल हमसे ज्यादा जानने वाला इस दुनिया में यदि कोई है तो केवल इन्द्रदेव !

कल्याणसिंह—(ताज्जुब से) हाँ, मुझे याद है। मगर क्या इन्द्रदेव राजा वीरेन्द्रसिंह के साथ तहखाने में गये हैं और क्या वीरेन्द्रसिंह ने उन्हें अपना दोस्त बना लिया ?

शेरअलीखाँ—हाँ, अतः यह आशा नहीं हो सकती कि वीरेन्द्रसिंह वगैरह तुम लोगों के काबू में आ जायेंगे, दूसरी बात यह है कि तुम अकेले या दो-एक मददगारों को लेकर इस किले में कर ही क्या सकते हो ?

कल्याणसिंह—मैं आपके पास अकेला नहीं आया हूँ बल्कि सौ सिपाही भी साथ लाया हूँ जिन्हें आप आज्ञा देने के साथ ही इसी कोठरी में से निकलते देख सकते हैं। क्या ऐसी हालत में जब कि मालिकों या अफसरों में से यहाँ कोई भी न हो और यहाँ रहने वाली केवल पाँच-सात सौ की फौज बेफिक्र पड़ी हो, हम और आप सौ बहादुरों को साथ लेकर कुछ नहीं कर सकते ? इन्द्रदेव का इस समय वीरेन्द्रसिंह वगैरह के साथ तहखाने में होना बेशक हमारे काम में विघ्न डाल सकता है, मगर मुझे इसकी भी विशेष चिन्ता नहीं है, क्योंकि यदि दुश्मन लोग काबू में न आवेंगे तो हर तरफ से रास्ता बन्द हो जाने के कारण तहखाने के बाहर भी न निकल सकेंगे और भूखे-प्यासे उसी में रहकर मर जायेंगे, और इधर जब आप किले में अपना दखल जमा लेंगे···

शेरअलीखाँ—(बात काटकर) ये सब बातें फिजूल की हैं, मैं जानता हूँ कि तुम अपने को बहादुर और होनहार समझते हो, मगर राजा वीरेन्द्रसिंह के प्रबल प्रताप के चमकते हुए सितारे की रोशनी को अपने हाथ की ओट लगाकर नहीं रोक सकते और न उनकी सचाई, सफाई और नेकियों को भूलकर इस किले का रहनेवाला कोई तुम्हारा साथ ही दे सकता है। बुद्धिमानों को तो जाने दो, यहाँ का एक बच्चा भी राजा वीरेन्द्रसिंह का निकल जाना पसन्द न करेगा। अहा, क्या ऐसा जबान का सच्चा, रहमदिल और नेक राजा कोई दूसरा होगा ? यह राजा वीरेन्द्रसिंह ही का काम था कि उसने मेरे कसूरों को माफ ही नहीं किया बल्कि इज्जत और आबरू के साथ मुझे अपना मेहमान बनाया। मेरी रग-रग में उनके अहसान का खून भरा है, मेरा बाल-बाल उन्हें दुआ देता है, मेरे दिल में उनकी हिम्मत, मर्दानगी, इन्साफ और रहमदिली का दरिया जोश मार रहा है। ऐसे बहादुर शेरदिल राजा के साथ शेरअली कभी दगाबाजी या बेईमानी नहीं कर सकता, बल्कि ऐसे की ताबेदारी अपनी इज्जत, हुर्मत और नामवरी का बायस समझता है। तुम मेरे दोस्त के लड़के हो, मगर मैं यह जरूर कहूँगा कि तुम्हारे बाप ने वीरेन्द्रसिंह के साथ दगाबाजी की ! खैर, जो कुछ हुआ सो हुआ, अब तुम तो ऐसा न करो। मैं तुम्हें पुरानी मोहब्बत और दोस्ती का वास्ता दिलाता हूँ कि तुम ऐसा मत करो। राजा वीरेन्द्रसिंह

दुश्मनी करने योग्य राजा नहीं बल्कि दर्शन करने योग्य हैं ! मैं वादा करता हूँ कि तुम्हारा भी कसूर माफ करा दूंगा और अगर तुमको रोहतासगढ़ की लालच है तो इसे भी तुम राजा वीरेन्द्रसिंह को दावेदारी करके ले सकते हो। वह बड़ा उदार दाता है, यह राज्य दे देना उसके सामने कोई बात नहीं है।

कल्याणसिंह — अफसोस ! मुझे इन शब्दों के सुनने की कदापि आशा न थी जो इस समय आपके मुँह से निकल रहे हैं। मुझे इस बात का ध्यान भी न था कि आज आपको हिम्मत और मर्दानगी से इस तरह खाली देखूँगा। मैं किसी के कहने पर भी विश्वास नहीं कर सकता था कि आपकी रगों में बुजदिली का खून पाऊँगा। मुझे स्वप्न में भी विश्वास नहीं हो सकता कि आपको उसी राजा वीरेन्द्रसिंह की खुशामद करते पाऊँगा जिसके लड़के ने आपकी लड़की को हर तरह से बेइज्जत किया।

शेरअलीखाँ—ओफ, तुम्हारी जली-कटी बातें मेरे दिल को हिलाकर मुझे बेई-मान, दगाबाज या विश्वासघाती की पदवी नहीं दिला सकतीं। उस गौहर की याद मेरे दिल की सच्ची तथा इन्साफपसन्द आँखों को फोड़कर नेकों की दुनिया में मुझको अंधा नहीं बना सकती जो बुजुर्गों की इज्जत को मिट्टी में मिला मेरी बदनामी का झण्डा बन-कर जहरीली हवा में उड़ती हुई आसमान की तरफ बढ़ती ही जाती थी, और जिसका गिरफ्तार होकर सजा पाना बल्कि इस दुनिया से उठ जाना मुझे पसन्द है। किसी नाला-यक के लिए लायक के साथ बुराई करना, किसी अधर्मी के लिए धर्मी का खून करना, किसी बेईमान के लिए ईमान का सत्यानाश करना, और किसी अविश्वासी के लिए विश्वासघात करना शेरअलीखाँ का काम नहीं। मैं समझता था कि तुम्हारे दिल का प्याला सच्ची बहादुरी की शराब से भरा हुआ होगा और तुम दुनिया में नामवरी पैदा कर सकोगे, इसलिए मैं तुम्हारी सिफारिश करने वाला था, मगर अब निश्चय हो गया कि तुम्हारी किस्मत का जहाज शिवदत्त के तूफान में पड़कर एक भारी पहाड़ से टक्कर खाना चाहता है। अब तुम यहाँ से चले जाओ और मुझसे किसी तरह की उम्मीद मत रखो, अगर मैं तुम्हारे बाप का दोस्त न होता और तुम मेरे दोस्त के लड़के न होते···

कल्याणसिंह—अफसोस, मैं आपकी इस समय यह लम्बी-चौड़ी वक्तृता नहीं सुन सकता क्योंकि समय कम है और काम बहुत करना है, बस आप इतना ही बताइये कि मैं आपसे किसी तरह की आशा रखूँ या नहीं ?

शेरअलीखाँ—नहीं, बल्कि इस बात की भी आशा मत रखो कि तुम्हें राजा वीरेन्द्रसिंह के साथ दुश्मनी करते देखकर मैं चुपचाप बैठा रहूँगा।

कल्याणसिंह—(क्रोध में आकर) क्या आप मेरी मदद अगर न करेंगे तो चुप-चाप भी न बैठे रहेंगे ?

शेरअलीखाँ—हरगिज नहीं !

कल्याणसिंह—तो आप मेरे साथ दुश्मनी करेंगे ?

शेरअलीखाँ—अगर ऐसा करें तो हर्ज ही क्या है ? जिसकी लोग इज्जत करते हों या जिसे दुनिया मोहब्बत की निगाह से देखती है, उसके साथ दुश्मनी करना बेशक बुरा है। मगर ऐसे के साथ बेमुरौवती करने में कुछ भी हर्ज नहीं है जिसके हृदय की

आँख फूट गई हो, जिसे दुनिया में किसी तरह की इज्जत हासिल करने का शौक न हो, और जिसे लोग हमदर्दी की निगाह से न देखते हों।

कल्याणसिंह—(दाँत पीसकर)तो फिर सबसे पहले आप ही का बन्दोबस्त करना पड़ेगा !

इसके पहले कि कल्याणसिंह की बात का शेरअलीखाँ कुछ जवाब दे, बाहर से एक आवाज आई—"हाँ, यदि तेरे किए कुछ हो सके !"

इस आवाज ने दोनों को चौंका दिया, मगर कल्याणसिंह ने ज्यादा देर तक राह देखना मुनासिब न जाना और उस कोठरी की तरफ बढ़कर जोर से ताली बजाई। शेर-अलीखाँ समझ गया कि कल्याणसिंह अपने साथियों को बुला रहा है, क्योंकि वह थोड़ी ही देर पहले कह चुका था कि मेरे साथ सौ सिपाही भी आए हैं जो हुक्म देने के साथ ही इस कोठरी में से मेरी ही तरह निकल सकते हैं।

कल्याणसिंह ताली बजाता हुआ कोठरी की तरफ बढ़ा और उसका मतलब समझ कर शेरअलीखाँ ने शीघ्रता से कमरे का दरवाजा अपने मददगारों को बुलाने की नीयत से खोल दिया तथा उसी समय एक नकाबपोश को हाथ में खंजर लिए कमरे के अन्दर पैर रखते देखा। शेरअलीखाँ ने पूछा, "तुम कौन हो ?" नकाबपोश ने जवाब दिया, "तुम्हारा मददगार !"

इससे ज्यादा बातचीत करने का मौका न मिला, क्योंकि कोठरी के अन्दर से कई आदमी हाथों में नंगी तलवारें लिए हुए निकलते दिखाई दिए जिन्हें कल्याणसिंह ने अपनी मदद के लिए बुलाया था।

4

अब हम अपने पाठकों को कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह की तरफ ले चलते हैं जिन्हें जमानिया के तिलिस्म में नहर के किनारे पत्थर की चट्टान पर बैठकर राजा गोपालसिंह से बातचीत करते छोड़ आए हैं।

दोनों कुमार बड़ी देर तक राजा गोपालसिंह से बातचीत करते रहे। राजा साहब ने बाहर का सब हाल दोनों भाइयों से कहा और यह भी कहा कि किशोरी और कामिनी राजी-खुशी के साथ कमलिनी के तालाब वाले मकान में जा पहुँची हैं, अब उनके लिए चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।

किशोरी और कामिनी का शुभ समाचार सुनकर दोनों भाई बड़े प्रसन्न हुए। राजा गोपालसिंह से इन्द्रजीतसिंह ने कहा, "हम चाहते हैं कि इस तिलिस्म से बाहर होकर पहले अपने माँ-बाप से मिल आवें, क्योंकि उनका दर्शन किए बहुत दिन हो गये और वे भी हमारे लिए बहुत उदास होंगे।"

गोपालसिंह—मगर यह तो हो नहीं सकता।

इन्द्रजीतसिंह—सो क्यों ?

गोपालसिंह—जब तक आप बाहर जाने के लिए रास्ता न बना लेंगे बाहर कैसे जायेंगे और जब तक इस तिलिस्म को आप तोड़ न लेंगे, तब तक बाहर जाने का रास्ता कैसे मिलेगा ?

इन्द्रजीतसिंह—जिस रास्ते से आप यहाँ आये हैं या आप जायेंगे, उसी रास्ते से आपके साथ अगर हम लोग भी चले जायें तो कौन रोक सकता है ?

गोपालसिंह—वह रास्ता केवल मेरे ही आने-जाने के लिए है। आप लोगों के लिए नहीं।

इन्द्रजीतसिंह—(हँसकर) क्योंकि आपसे हम लोग ज्यादा मोटे-ताजे हैं, दरवाजे में अँट न सकेंगे !

गोपालसिंह—(हँसकर) आप भी बड़े मसखरे हैं। मेरा मतलब यह नहीं है कि मैं जानबूझकर आपको नहीं ले जाता बल्कि यहाँ के नियमों का ध्यान करके मैंने ऐसा कहा था, आपने तो तिलिस्मी किताब में पढ़ा ही होगा।

इन्द्रजीतसिंह—हाँ, हम पढ़ तो चुके हैं और उससे भी मालूम यही होता है कि हम लोग बिना तिलिस्म तोड़े बाहर नहीं जा सकते। मगर अफसोस कि इस किताब का लिखने वाला हमारे सामने मौजूद नहीं। अगर होता तो पूछते कि क्यों नहीं जा सकते ? जिस राह से राजा साहब आए उसी राह से उनके साथ जाने में क्या हर्ज है ?

गोपालसिंह—किसी तरह का हर्ज होगा तभी तो बुजुर्गों ने ऐसा लिखा है ! कौन ठिकाना, किसी तरह की आफत आ जाए तो जीवन-भर के लिए मैं बदनाम हो जाऊँगा। अस्तु, आपको भी इसके लिए जिद न करनी चाहिए, हाँ यदि अपने उद्योग से आप बाहर जाने का रास्ता बना लें तो बेशक चले जायँ।

इन्द्रजीत—(मुस्कुराकर) बहुत अच्छा, आप जाइए, हम अपने लिए रास्ता ढूँढ़ लेंगे।

गोपालसिंह—(हँसकर) मेरे पीछे-पीछे चलकर ! अच्छा आइए।

यह कहकर गोपालसिंह उठ खड़े हुए और उसी कुएं पर चले गए जिसमें पहले दफे उस वक्त कूद कर गायब हो गए थे जब बुड्ढे की सूरत बनाकर आए थे। दोनों कुमार भी मुस्कुराते हुए उनके पीछे-पीछे गए और पास पहुँचने के पहले ही उन्होंने राजा गोपालसिंह को कुएँ के अन्दर कूद पड़ते देखा। यह कुआँ यद्यपि बहुत चौड़ा था तथापि नीचे के हिस्से में सिवाय अन्धकार के और कुछ भी दिखाई न देता था। दोनों कुमार भी जल्दी से उसी कुएँ पर गए और बारी-बारी से कुछ विलम्ब करके कुएँ के अन्दर कूद पड़े।

हम पहले आनन्दसिंह का हाल लिखते हैं जो इन्द्रजीतसिंह के बाद उस कुएँ में कूदे थे। आनन्दसिंह सोचे हुए थे कि कुएँ में कूदने के बाद अपने भाई से मिलेंगे, मगर ऐसा न हुआ। जब उनका पैर जमीन पर लगा तो उन्होंने अपने को नरम-नरम घास पर पाया जिसकी ऊँचाई या तौल का अन्दाजा नहीं कर सकते थे और उसीके सबब से उन्हें चोट की तकलीफ भी बिलकुल न उठानी पड़ी। अन्धकार के सबब से कुछ मालूम न पड़ता था इसलिए दोनों हाथ आगे बढ़ाकर कुँअर आनन्दसिंह उस कुएँ में घूमने लगे। तब

मालूम हुआ कि नीचे से यह कुआँ बहुत चौड़ा है और उसकी दीवार चिकनी तथा संगीन है। टटोलते और घूमते हुए एक छोटे-से बन्द दरवाजे पर इनका हाथ पड़ा, वहाँ वह ठहर गए और कुछ सोचकर आगे बढ़े। तीन-चार कदम के बाद फिर एक बन्द दरवाजा मिला, उसे भी छोड़ और आगे बढ़े। इसी तरह घूमते हुए इन्हें चार दरवाजे मिले जिनमें दो तो खुले हुए थे और दो बन्द। आनन्दसिंह ने सोचा कि बेशक इन्हीं दोनों दरवाजों में से जो खुले हुए हैं किसी एक दरवाजे में कुँअर इन्द्रजीतसिंह गए होंगे। बहुत सोचने-विचारने के बाद आनन्दसिंह ने भी एक दरवाजे के अन्दर पैर रक्खा मगर दो ही चार कदम आगे गए होंगे कि पीछे से दरवाजा बन्द होने की आवाज आई। उस समय उन्हें विश्वास हो गया कि हमने धोखा खाया, कुँअर इन्द्रजीतसिंह किसी दूसरे दरवाजे के अन्दर गये होंगे और वह दरवाजा भी उनके जाने के बाद इसी तरह बन्द हो गया होगा। अफसोस करते हुए आगे की तरफ बढ़े मगर दो ही चार कदम जाने के बाद अन्धकार के सबब से जी घबड़ा गया। उन्होंने कमर से तिलिस्मी खंजर निकाल उसका कब्जा दबाया जिससे बहुत तेज रोशनी हो गई और वहाँ की हर एक चीज साफ-साफ दिखाई देने लगी। कुमार ने अपने को एक कोठरी में पाया जिसमें चारों तरफ दरवाजे बने थे। उनमें एक दरवाजा तो वही था जिससे कुमार आए थे और बाकी के तीन दरवाजे बन्द थे और उनकी कुण्डियों में ताला लगा हुआ था, मगर उस दरवाजे में कोई ताला या ताले का निशान या जंजीर न थी जिससे कुमार आये थे। चारों तरफ की संगीन दीवारों में कई बड़े-बड़े सूराख थे जिनमें से हवा आती और निकल जाती थी। जिस दरवाजे से कुमार आए थे उसके पास जाकर उसे खोलना चाहा मगर किसी तरह से वह दरवाजा न खुला, तब दूसरे दरवाजे के पास आए, तिलिस्मी खंजर से उसकी जंजीर काटकर दरवाजा खोला और उसके अन्दर गए। यह कोठरी बनिस्बत पहले के तिगुनी लम्बी थी। जमीन और दीवार संगमरमर की बनी हुई थी और हवा आने-जाने के लिए दीवारों में सूराख भी थे।[1] इस कमरे के बीचोंबीच में एक ऊँचा चबूतरा था और उस पर एक बड़ा संदूक, जो असल में बाजा था, रक्खा हुआ था। कुमार के अन्दर आते ही वह बाजा बजने लगा और उसकी सुरीली आवाज ने कुमार का दिल अपनी तरफ खींच लिया। चारों तरफ दीवारों में बड़ी-बड़ी तस्वीरें लगी हुई थीं जिनमें एक तस्वीर बहुत ही बड़ी और जड़ाऊ चौखटे के अन्दर थी। इस तस्वीर में किसी तरह की चमक देखकर कुमार ने अपने खंजर की रोशनी बन्द कर दी। उस समय मालूम हुआ कि यहाँ की सब तस्वीरें इस तरह चमक रही हैं कि उनके देखने के लिए किसी तरह की रोशनी की दरकार नहीं। कुमार उस बड़ी तस्वीर को गौर से देखने लगे। देखा कि जड़ाऊ सिंहासन पर एक बूढ़े महाराज बैठे हैं। उम्र अस्सी वर्ष से कम न होगी, सफेद लम्बी दाढ़ी नाभि तक लटक रही है, जड़ाऊ मुकुट माथे पर चमक रहा है, कपड़ों पर काढ़ी बेलों में मोती और जवाहरात के फूल और बेल-बूटे बने हुए हैं। सामने सोने की चौकी पर एक ग्रन्थ रक्खा हुआ है और पास ही

---

1. हरएक कोठरी या कमरे में, जहाँ जहाँ ये दोनों कुमार गए थे, दीवारों में सूराख देखा, जिनसे हवा आने के लिए रास्ता था।

एक सिंहासन पर मृगछाला बिछाए एक बहुत ही वृद्ध साधु महाशय बैठे हुए हैं जिनके भाव से साफ मालूम होता है कि महात्माजी ग्रन्थ का मतलब महाराज को समझा रहे हैं और महाराज बड़े गौर से सुन रहे हैं। उस तस्वीर के नीचे यह लिखा हुआ था—

"महाराज सूर्यकान्त और उनके गुरु सोमदत्त जिन्होंने इस तिलिस्म को बनाया और इसके कई हिस्से किये। महाराज के दो लड़के थे—एक का नाम धीरसिंह, दूसरे का नाम जयदेवसिंह। जब इस हिस्से की उम्र समाप्त होने पर आवेगी, तब धीरसिंह के खानदान में गोपालसिंह और जयदेवसिंह के खानदान में इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह होंगे और नाते में वे तीनों भाई होंगे। इसलिए इस तिलिस्म के दो हिस्से किये गए जिनमें से आधे का मालिक गोपालसिंह होगा और आधे के मालिक इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह होंगे, लेकिन यदि उन तीनों में मेल न होगा तो इस तिलिस्म से सिवाय हानि के किसी को भी फायदा न होगा अतएव चाहिए कि वे तीनों भाई आपस में मेल रक्खें और इस तिलिस्म से फायदा उठावें। इन तीनों के हाथ से इस तिलिस्म के कुल बारह दर्जों में से सिर्फ तीन टूटेंगे और बाकी के नौ दर्जों के मालिक उन्हीं के खानदान में कोई दूसरे होंगे। इसी तिलिस्म में से कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह को एक ग्रन्थ प्राप्त होगा जिसकी बदौलत वे दोनों भाई चरणाद्रि (चुनारगढ़) के तिलिस्म को तोड़ेंगे···।"

इसके बाद कुछ और भी लिखा हुआ था मगर अक्षर इतने बारीक थे कि पढ़ा नहीं जाता था। यद्यपि उनके पढ़ने का शौक आनन्दसिंह को बहुत हुआ मगर लाचार होकर रह गए। उस तस्वीर के बाईं तरफ जो तस्वीर थी उसके नीचे केवल 'धीरसिंह' लिखा हुआ था और दाहिनी तरफ वाली तस्वीर के नीचे 'जयदेवसिंह' लिखा हुआ था। उन दोनों की तस्वीरें नौजवानी के समय की थीं। उसके बाद क्रमशः और भी तस्वीरें थीं और सभी के नीचे नाम लिखा हुआ था। कुँअर आनन्दसिंह बाजे की सुरीली आवाज सुनते जाते थे और तस्वीरों को भी देखते जाते थे। जब इन तस्वीरों को देख चुके तो अन्त में राजा गोपालसिंह, अपनी और अपने भाई की तस्वीर भी देखी और इस काम में उन्हें कई घंटे लग गए।

इस कमरे में जिस दरवाजे से कुँअर आनन्दसिंह गये थे उसी के ठीक सामने एक दरवाजा और था जो बन्द था और उसकी जंजीर में ताला लगा हुआ था। जब वे घूमते हुए उस दरवाजे के पास गए तब मालूम हुआ कि इसकी दूसरी तरफ से कोई आदमी उस दरवाजे को ठोकर दे रहा है या खोलना चाहता है। कुमार को इन्द्रजीतसिंह का खयाल हुआ और सोचने लगे कि ताज्जुब नहीं कि किसी राह से घूमते-फिरते भाई साहब यहाँ तक आ गए हों। यह खयाल उनके दिल में बैठ गया और उन्होंने तिलिस्मी खंजर से उस दरवाजे की जंजीर काट डाली। दरवाजा खुल गया और एक औरत कमरे के अन्दर आती हुई दिखाई दी जिसके हाथ में एक लालटेन थी और उसमें तीन मोमबत्तियाँ जल रही थीं। यह नौजवान और हसीन औरत इस लायक थी कि अपनी सुघराई, खूबसूरती, नजाकत, सादगी और बाँकपन की बदौलत जिसका दिल चाहे मुट्ठी में कर ले। यद्यपि उसकी उम्र सत्रह-अट्ठारह वर्ष से कम न होगी मगर बुद्धिमानों और विद्वानों की बारीक निगाह जाँच कर कह सकती थी कि इसने अभी तक मदनमहीप की पँचरंगी

बाटिका में पैर नहीं रक्खा और इसकी रसीली कली को समीर के सत्संग से गुदगुदा कर खिल जाने का अवसर नहीं मिला, इसके सतीत्व की अनमोल गठरी पर किसी ने लालच में पड़कर मालिकाना दखल जमाने की नीयत से हाथ नहीं डाला और न इसने अपनी अनमोल अवस्था का किसी के हाथ सट्टा, ठीका या बीमा किया। इसके रूप के खजाने की चौकसी करने वाली बड़ी-वड़ी आँखों के निचले हिस्से में अभी तक ऊदी डोरी नहीं पड़ने पाई थी, और न उसकी गर्दन में स्वर-घंटिका का उभार ही दिखाई देता था। इस गोरी नायिका को देखकर कुँअर आनन्दसिंह भौचक्के से रह गए और ललचाही निगाह से इसे देखने लगे। इस औरत ने भी इन्हें एक दफे तो नजर भरकर देखा मगर साथ ही गर्दन नीची कर ली और पीछे की तरफ हटने लगी तथा धीरे-धीरे कुछ दूर जाकर किसी दीवार या दरवाजे के ओट में हो गई जिससे उस जगह फिर अँधेरा हो गया। आनन्दसिंह आश्चर्य, लालच और उत्कंठा के फेर में पड़े रहे, इसलिए खंजर की रोशनी की सहायता से दरवाजा लाँघ कर वे भी उसी तरफ गए जिधर वह नाजनीन गई थी। अब जिस कमरे में कुँअर आनन्दसिंह ने पैर रक्खा वह बनिस्बत तस्वीरों वाले कमरे के कुछ बड़ा था और उसके दूसरे सिरे पर भी वैसा ही एक दूसरा दरवाजा था जैसा तस्वीर वाले कमरे में था। कुँअर साहब बिना इधर-उधर देखे उस दरवाजे तक चले गये मगर जब उस पर हाथ रक्खा तो बन्द पाया। उस दरवाजे में भी कोई जंजीर या ताला दिखाई न दिया जिसे खोलकर या तोड़कर वे दूसरी तरफ जाते। इससे मालूम हुआ कि इस दरवाजे का खोलना या बन्द करना उस दूसरी तरफ वाले के आधीन है। बड़ी देर तक आनन्दसिंह उस दरवाजे के पास खड़े होकर सोचते रहे, मगर इसके बाद जब पीछे की तरफ हटने लगे तो उस दरवाजे के खोलने की आहट सुनाई दी। आनन्दसिंह रुके और गौर से देखने लगे। इतने ही में एक और आवाज इस ढंग की आई जिसने आनन्दसिंह को विश्वास दिला दिया कि उस तरफ की जंजीर किसी ने तलवार या खंजर से काटी है। थोड़ी ही देर बाद दरवाजा खुला और कुँअर इन्द्रजीतसिंह दिखाई पड़े। आनन्दसिंह को उस औरत के देखने की लालसा हद से ज्यादा थी और कुछ-कुछ विश्वास हो गया था कि अबकी दफे पुनः उसी औरत को देखेंगे, मगर उसके बदले में अपने बड़े भाई को देखा और देखते ही खुश होकर बोले, "मैंने तो समझा था कि आपसे जल्द मुलाकात न होगी परन्तु ईश्वर ने बड़ी कृपा की !"

इन्द्रजीतसिंह—मैं भी यही सोचे हुए था, क्योंकि कुएँ के अन्दर कूदने के बाद जब मैंने एक दरवाजे में पैर रक्खा तो दो-चार कदम जाने के बाद वह बन्द हो गया, तभी मैंने सोचा कि अब आनन्द से मुलाकात होना कठिन है।

आनन्दसिंह—मेरा भी यही हाल हुआ, जिस दरवाजे के अन्दर मैंने पैर रक्खा था वह भी दो ही चार कदम जाने के बाद बन्द हो गया था।

इसके बाद कुँअर इन्द्रजीतसिंह उस कमरे में चले आये जिसमें आनन्दसिंह थे। दोनों भाई एक-दूसरे से मिलकर बहुत खुश हुए और यों बातचीत करने लगे—

आनन्दसिंह—इस कोठरी में आपने किसी को देखा था ?

इन्द्रजीतसिंह—(ताज्जुब से) नहीं तो !

आनन्दसिंह—बड़े आश्चर्य की बात है! (कोठरी के अन्दर झाँककर) कोठरी तो बहुत बड़ी नहीं है।

इन्द्रजीतसिंह—तुम किसे पूछ रहे हो सो कहो?

आनन्दसिंह—अभी-अभी एक औरत हाथ में लालटेन लिए मुझे दिखाई दी थी जो इसी कोठरी में घुस गई और इसके थोड़ी ही देर बाद आप आये हैं।

इन्द्रजीतसिंह—जब से मैं कुएँ में कूदा तब से इस समय तक मैंने किसी दूसरे की सूरत नहीं देखी।

आनन्दसिंह—अच्छा यह कहिए कि आप जब कुएँ में कूदे तब क्या हुआ और यहाँ क्योंकर पहुँचे?

इन्द्रजीतसिंह—कुएँ की तह में पहुँचकर जब मैं टटोलता हुआ दीवार के पास पहुँचा तो एक छोटे से दरवाजे पर हाथ पड़ा। मैं उसके अन्दर चला गया। दो ही चार कदम गया था कि पीछे से दरवाजा बन्द हो जाने की आवाज आई। मैंने तिलिस्मी खंजर हाथ में ले लिया और कब्जा दबाकर रोशनी करने के बाद चारों तरफ देखा तो मालूम हुआ कि कोठरी बहुत छोटी है और सामने की तरफ एक दरवाजा और है। खंजर से जंजीर काटकर दरवाजा खोला तो एक कमरा और नजर आया जिसकी लम्बाई पचीस हाथ से कुछ ज्यादा थी। मगर उस कमरे में जो कुछ मैंने देखा कहने योग्य नहीं है बल्कि इस योग्य है कि तुम्हें अपने साथ ले जाकर दिखाऊँ। वह कमरा बहुत दूर भी नहीं है। (जिस कोठरी में से आये थे, उसे बताकर) इस कोठरी के बाद ही वह कमरा है, चलो तो वहाँ का विचित्र तमाशा तुम्हें दिखावें।

आनन्दसिंह—पहले इस कमरे को देख लीजिये जिसकी सैर मैं कर चुका हूँ।

इन्द्रजीतसिंह—मैं समझ गया, जरूर तुमने भी कोई अनूठा तमाशा देखा होगा। (रुककर) अच्छा चलो, पहले इसी को देख लें।

इतना कहकर आनन्दसिंह के पीछे-पीछे इन्द्रजीतसिंह उस कमरे में गए और जो कुछ उनके छोटे भाई ने देखा था उन्होंने भी बड़े गौर और ताज्जुब के साथ देखा।

इन्द्रजीतसिंह—मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि राजा गोपालसिंह नाते में हमारे भाई होते हैं। (कुछ सोचकर) मगर इस बात की सचाई का कोई और सबूत भी होना चाहिए।

आनन्दसिंह—जब इतना मालूम हुआ है तब और भी कोई-न-कोई सबूत मिल ही जायगा।

इन्द्रजीतसिंह—अच्छा अब हमारे साथ आकर उस कमरे का तमाशा देखो जिसका जिक्र हम कर चुके हैं और इसके बाद सोचो कि हम लोग यहाँ से क्योंकर निकल सकेंगे क्योंकि जिस राह से यहाँ आये हैं वह तो बन्द ही हो गई।

आनन्दसिंह—जी हाँ, हम दोनों भाइयों को धोखा हुआ, गोपालसिंहजी के साथ कोई भी न जा सका।

इन्द्रजीतसिंह—यह कैसे निश्चय हो कि हम लोगों ने धोखा खाया? कदाचित् गोपालसिंह जी इसी राह से आते-जाते हों या यहाँ से बाहर होने के लिए कोई दूसरा

ही रास्ता हो ?

आनन्दसिंह—यह भी हो सकता है, मगर बड़े आश्चर्य की बात है कि खून से लिखी किताब में, जिसे हम लोग अच्छी तरह पढ़ चुके हैं, इस जगह का तथा इन तस्वीरों का हाल कुछ भी नहीं लिखा है।

इन्द्रजीतसिंह इसका कुछ जवाब न देकर यहाँ से रवाना हुआ ही चाहते थे कि बाजे की सुरीली आवाज (जो इस कमरे में बोल रहा था) बन्द हो गई और दो-चार पल तक बन्द रहने बाद पुनः इस ढंग से बोलने लगी जैसे कोई मनुष्य बोलता हो। दोनों कुमारों ने चौंककर उस पर ध्यान दिया तो 'सुनो सुनो सुनो' की आवाज सुनाई पड़ी अर्थात् उस बाजे में से 'सुनो सुनो' की आवाज आ रही थी। दोनों कुमार उत्कंठा के साथ उसके पास गए और ध्यान देकर सुनने लगे। 'सुनो सुनो' की आवाज बहुत देर तक निकलती रही, जिस पर इन्द्रजीतसिंह ने यह कहकर कि 'निःसन्देह यह कोई मतलब की बात कहेगा'—अपनी जेब से एक सादी किताब और जस्ते की कलम निकाली और लिखने के लिए तैयार हो गए। अपना खंजर कमर में रख लिया और आनन्दसिंह को अपने खंजर का कब्जा दबाकर रोशनी करने के लिए कहा। थोड़ी देर तक और 'सुनो सुनो' की आवाज आती रही और फिर सन्नाटा हो गया। कई पल के बाद फिर धीरे-धीरे आवाज आने लगी और इन्द्रजीतसिंह लिखने लगे। वह आवाज यह थी—

साकरा खति गलि घस्मङ तो चड़ छनेज
काझ खञ या लठ नड कढ रोण औत
रथ इद सध तिन लिप स्मफ कीब ताभ
लीम किय सीर चल लब तीश फिष
रस तीह से कप्रा खप्तग कघ
रोङ इच सछ बाज जेझ में अवेट
सठ बड बाढ तेंण भत रीथ हेंद
जिघ नन कोप तुफ म्हेंव जभ रूम
रथ तर हैल ताब लीश लष गास
याह कक रोख औग रघ सुङः
नाच कछ रोज अझ गञ रट एठ
कड हीढ दण फेत सुथ न द नेध सेन
सप मफ झब में भन म आय वेर
तोल दोव हश राष कस रह के
क भीख सुग नघ सङ कच तेछ हौज
इझ सञ कीट तठ कींड बढ औण
रत ताथ लीद इघ सीन कष मफ
रेब में भहै मढूंय ढोर।

इसके बाद बाजे का बोलना बन्द हो गया और फिर किसी तरह की आवाज न आई। कुँअर इन्द्रजीतसिंह जो कुछ लिख चुके थे उस पर गौर करने लगे। यद्यपि वे बातें बेसिर-पैर की मालूम हो रही थीं मगर थोड़ी ही देर में उनका मतलब इन्द्रजीतसिंह समझ गए, जब आनन्दसिंह को समझाया तो वे भी बहुत खुश हुए और बोले, "अब कोई हर्ज नहीं, हम लोगों का कोई काम अटका न रहेगा, मगर वाह रे कारीगरी !"

इन्द्रजीतसिंह—निःसन्देह ऐसी ही बात है, मगर जब तक हम लोग उस ताली को न पा लें, इस कमरे के बाहर नहीं होना चाहिए, कौन ठिकाना अगर किसी तरह दरवाजा बन्द हो गया और यहाँ न आ सके तो बड़ी मुश्किल होगी।

आनन्दसिंह—मैं भी यही मुनासिब समझता हूँ।

इन्द्रजीतसिंह—अच्छा, तब इस तरफ आओ।

इतना कहकर कुँअर इन्द्रजीतसिंह उस बड़ी तस्वीर की तरफ बढ़े और आनन्दसिंह उनके पीछे चले।

उस आवाज का मतलब जो बाजे में से सुनाई दी थी, इस जगह लिखने की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती क्योंकि हमारे पाठक यदि उन शब्दों पर जरा भी गौर करेंगे तो मतलब समझ जायँगे, कोई कठिन बात नहीं है।

5

कल्याणसिंह के ताली बजाने के साथ ही बहुत से आदमी हाथों में नंगी तलवारें लिए हुए उसी कोठरी में से निकल आये जिसमें से कल्याणसिंह निकला था, मगर शेरअली खाँ की मदद के लिए केवल एक वही नकाबपोश उस कमरे में था, जो दरवाजा खोलने के साथ ही उन्हें दिखाई दिया था। विशेष बातचीत का समय तो नहीं मिला मगर नकाबपोश ने शेरअलीखाँ से इतना अवश्य कहदिया कि "आप अपनी मदद के लिए अभी किसी को भी न बुलाइए, इन लोगों के लिए अकेला मैं ही बहुत हूँ, यदि मेरी बात पर आपको विश्वास न हो तो जल्दी से इस कमरे के बाहर हो जाइए।"

यद्यपि सैकड़ों आदमियों के मुकाबले में केवल एक नकाबपोश का इतना बड़ा हौसला दिखाना विश्वास करने योग्य न था, मगर शेरअली खाँ खुद भी जवाँमर्द और दिलेर आदमी था, इस सबब से या शायद और किसी सबब से उसने नकाबपोश की बातों पर विश्वास कर लिया और किसी को बुलाने के लिए उद्योग न करके अपने बिछौने के नीचे से तलवार निकालकर लड़ने के लिए स्वयं भी तैयार हो गया।

यह नकाबपोश असल में भूतनाथ था जो सरयूसिंह के कहे मुताबिक शेरअली खाँ के पास आया था। उसे विश्वास था कि शेरअली खाँ कल्याणसिंह की मदद के लिए तैयार हो जायगा मगर जब उसने कमरे के बाहर से उन दोनों की बातें सुनीं और शेरअली खाँ को नेक, ईमानदार, इन्साफपसन्द और सच्चा बहादुर पाया तो बहुत प्रसन्न हुआ और जी-जान से उसकी मदद करने के लिए तैयार हो गया। हमारे पाठक यह

तो जानते ही हैं कि भूतनाथ के पास भी कमलिनी का दिया हुआ एक तिलिस्मी खंजर है जिसे भूतनाथ पर कई तरह का शक और मुकदमा कायम होने पर भी कमलिनी ने अपनी बात को याद करके अभी तक नहीं लिया था। आज उसी खंजर की बदौलत भूतनाथ ने इतना बड़ा हौसला किया और बेईमानों के हाथ से शेरअली खाँ को बचा लिया।

जिस समय कल्याणसिंह ने भूतनाथ का मुकाबला करना चाहा, उस समय भूतनाथ ने फुर्ती से अपने चेहरे की नकाब उलट दी और ललकार कर कहा, ''आज बहुत दिनों पर तुम लोग भूतनाथ के सामने आये हो, जरा समझ कर लड़ना।''

इतना कहकर भूतनाथ ने तिलिस्मी खंजर से दुश्मनों पर हमला किया, इस नीयत से कि किसी की जान भी न जाय और सब के सब गिरफ्तार कर लिए जायँ।

सबसे पहले उसने खंजर का एक साधारण हाथ कल्याणसिंह पर लगाया जिससे उसकी दाहिनी कलाई जिसमें नंगी तलवार का कब्जा था, कटकर जमीन पर गिर पड़ी, साथ ही इसके तिलिस्मी खंजर की तासीर ने उसके बदन में बिजली पैदा कर दी और वह बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ा।

जिस समय कल्याणसिंह और उसके साथियों ने भूतनाथ का नाम सुना, उसी समय उनकी हिम्मत का बँटवारा हो गया। आधी हिम्मत तो लाचारी के हिस्से में पड़-कर उनके पास रह गई और आधी हिम्मत उनके उत्साह के साथ निकलकर वायुमण्डल की तरफ पधार गई। भूतनाथ चाहे परले सिरे का बहादुर हो या न हो मगर उसके कर्मों ने उसका नाम बहादुरी और ऐयारी की दुनिया में बड़े रौब और दाब के साथ मशहूर कर रक्खा था। कोई चाहे कैसा ही बहादुर और दिलेर आदमी क्यों न हो, मगर अपने मुकाबले में भूतनाथ का नाम सुनते ही उसकी हिम्मत टूट जाती थी। यहाँ वही मामला हुआ और दुश्मनों की पस्तहिम्मती ने उनकी किस्मत का फैसला भी शीघ्र ही कर दिया।

जिस समय कल्याणसिंह बेहोश होकर जमीन पर गिरा उसी समय एक सिपाही ने भूतनाथ पर तलवार का वार किया। भूतनाथ ने उसे तिलिस्मी खंजर पर रोका और इसके बाद खंजर उसके बदन से छुआ दिया जिसका नतीजा यह निकला कि दुश्मन की तलवार दो टूक हो गई और वह बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ा। इसी बीच में बहा-दुर शेरअली खाँ ने दो सिपाहियों को जान से मार गिराया जिन्होंने उस पर हमला किया था। निःसन्देह कल्याणसिंह के साथी इतने ज्यादा थे कि शेरअलीखाँ को मार देते या गिरफ्तार कर लेते, मगर भूतनाथ की मुस्तैदी ने ऐसा न होने दिया। उस कमरे में खुलकर लड़ने की जगह न थी और इस सबब से भी भूतनाथ को फायदा ही पहुँचा। जितनी देर में शेरअली खाँ ने अपनी हिम्मत और मर्दानगी से चार आदमियों को बेकाम किया उतनी देर में भूतनाथ की चालाकी और फुर्ती की बदौलत तीस आदमी बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़े। भूतनाथ के बदन पर भी हलके दो-चार जख्म लगे, साथ ही इसके भूतनाथ को इस बात का भी विश्वास हो गया कि शेरअली खाँ जो कई जख्म खा चुका था ज्यादा देर तक इन लोगों के मुकाबले में ठहर न सकेगा अतएव उसने सोचा

कि जहाँ तक हो सके, इस लड़ाई का फैसला जल्द ही कर देना चाहिए। ताज्जुब नहीं कि अपने साथियों को गिरते देखकर दुश्मनों का जोश बढ़ जाय, मगर उधर तो मामला ही दूसरा हो गया। अपने साथियों को बिना जख्म खाये गिरते और बेहोश होते देख दुश्मनों को बड़ा ही ताज्जुब हुआ और उन्होंने सोचा कि भूतनाथ केवल ऐयार, बहादुर और लड़ाका ही नहीं है बल्कि वह किसी देवता का प्रबल इष्ट भी रखता है जिससे ऐसा हो रहा है। इस खयाल के साथ ही उन लोगों ने भागने का इरादा किया मगर ताज्जुब की बात थी कि वह रास्ता, जिधर से वे लोग आये थे, एकदम बन्द हो गया था। इस सबब से पीठ दिखाकर भागने वालों की जान पर भी आफत आई। इधर तो शेरअली खाँ की तलवार ने कई सिपाहियों का फैसला किया और उधर भूतनाथ ने तिलिस्मी खंजर का कब्जा दबाया जिससे बिजली की तरह चमक पैदा हुई और भागने वालों की आँखें एकदम बन्द हो गईं। फिर क्या था, भूतनाथ ने थोड़ी ही देर में तिलिस्मी खंजर की बदौलत बाकी बचे हुओं को भी बेहोश कर दिया और उस समय गिनती करने पर मालूम हुआ कि दुश्मन के सिर्फ पैंतालीस आदमी थे, कल्याणसिंह ने यह बात झूठ कही थी कि मेरे साथ सौ सिपाही इस मकान में मौजूद हैं या आना ही चाहते हैं।

इतनी बड़ी लड़ाई और कोलाहल का चुपचाप निपटारा होना असम्भव था। शोरगुल, मारकाट और धरो-पकड़ो की आवाज ने मकान के बाहर तक खबर पहुँचा दी। पहरेवाले सिपाहियों में से एक सिपाही ऊपर चढ़ आया और यहाँ का हाल देख घबराकर नीचे उतर गया और अपने साथियों को खबर की। उसी समय यह बात चारों तरफ फैल गई और थोड़ी ही देर में राजा वीरेन्द्रसिंह के बहुत से सिपाही शेरअलीखाँ के कमरे में आ मौजूद हुए। उस समय लड़ाई खत्म हो चुकी थी और शेरअलीखाँ तथा भूतनाथ, जिसने पुनः अपने चेहरे पर नकाब चढ़ा ली थी, बेहोश, जख्मी और मरे हुए दुश्मनों को खुशी की निगाहों से देख रहे थे। शेरअलीखाँ ने राजा वीरेन्द्रसिंह के आदमियों को देख कर कहा, "तहखाने की एक गुप्त राह से राजा वीरेन्द्रसिंह का दुश्मन कल्याणसिंह इतने आदमियों को लेकर बुरी नीयत से यहाँ आया था मगर (भूतनाथ की तरफ इशारा करके) इस बहादुर की मदद से मेरी जान बच गई और राजा वीरेन्द्रसिंह का भी कुछ नुकसान न हुआ। अब तुम लोग जहाँ तक जल्द हो सके, जिनमें जान है, उन्हें कैदखाने भिजवाने का और मुर्दों के जलवा देने का बन्दोबस्त करो और इस कमरे को भी साफ करा दो।"

इसके बाद उस कोठरी में जिसमें से कल्याणसिंह और उसके साथी लोग निकले थे, ताला बन्द करके शेरअलीखाँ भूतनाथ का हाथ पकड़े हुए कमरे के बाहर सहन में निकल आया और एक किनारे खड़ा होकर बातचीत करने लगा।

शेरअली—इस समय आपके आ जाने से केवल मेरी जान ही नहीं बची बल्कि राजा वीरेन्द्रसिंह का भी बहुतकुछ फायदा हुआ, हाँ, यह तो कहिए आप यहाँ कैसे आ पहुँचे? किसी ने आपको रोका नहीं?

भूतनाथ—मुझे कोई भी नहीं रोक सकता। तेजसिंह ने मुझे एक ऐसी चीज दे रक्खी है जिसकी बदौलत मैं राजा वीरेन्द्रसिंह की हुकूमत के अन्दर महल छोड़ कर जहाँ

चाहे वहाँ जा सकता हूँ, कोई रोकने वाला नहीं। यहाँ मेरा आना कैसे हुआ इसका जवाब भी देता हूँ। मुझे और इन्द्रदेव के ऐयार सरयूसिंह को किसी तरह इस बात की खबर लग गई कि राजा शिवदत्त और कल्याणसिंह कैद से छूट गये हैं और बहुत से लड़ाकों को लेकर तहखाने के रास्ते से रोहतासगढ़ में पहुँच फसाद मचाना चाहते हैं। इस खबर ने हम दोनों को होशियार कर दिया। सरयूसिंह तो दुश्मनों के साथ भेष बदले हुए तहखाने में जा घुसा और मैं बाहर से इन्तजार करने के लिए आया था। यह न समझियेगा कि मैं सीधा आप के पास चला आया, नहीं, मैं हर तरह का इंतजाम करने के बाद यहाँ आया हूँ। इस समय इस किले के अन्दर वाली फौज लड़ने के लिए तैयार और मुस्तैद है, बहादुर लोग चौकन्ने और महल के सब दरवाजों पर मुस्तैद हैं, तोपें गोले उगलने के लिए तैयार हैं, और ऐयारों के जाल भी हर तरफ फैले हुए हैं। मगर इस बात की खबर मुझे कुछ भी नहीं है कि तहखाने के अन्दर क्या हो रहा है या क्या हुआ।

शेरअलीखाँ—बेशक तहखाने के अन्दर दुश्मनों ने जरूर गहरा उत्पात मचाया होगा। अफसोस ! आज ही के दिन राजा वीरेन्द्रसिंह वगैरह को तहखाने के अन्दर जाना था।

भूतनाथ—इस खबर ने तो मुझे और भी बदहवास कर रक्खा है। क्या करूँ, तहखाने का कुछ भी भेद मुझे मालूम नहीं है और न उसके पेचीले तथा मकड़ी के जाले की तरह उलझन डालने वाले रास्तों की ही मुझे अच्छी तरह खबर है, नहीं तो इस समय मैं अवश्य तहखाने के अन्दर पहुँच जाता और अपनी बहादुरी तथा ऐयारी का तमाशा दिखलाता !

शेरअली—बेशक ऐसा ही है। इस समय मेरा दिल भी इस खयाल से बेचैन हो रहा है कि तहखाने के अन्दर जाकर राजा साहब की कुछ भी मदद नहीं कर सकता। अभी थोड़ी ही देर हुई जब मेरे दिल में यह बात पैदा हुई कि जिस राह से कल्याणसिंह और उसके मददगार इस कमरे में आये हैं उसी राह से हम लोग भी तहखाने के अन्दर जाकर कोई काम करें, मगर बड़े ताज्जुब की बात है कि वह रास्ता भी बन्द हो गया। जहाँ तकमैं खयाल करता हूँ यह काम कल्याणसिंह के किसी पक्षपाती का नहीं है।

भूतनाथ—मैं भी ऐसा ही समझता हूँ। (कुछ सोच कर) हाँ एक बात और भी मेरे ध्यान में आती है।

शेरअली—वह क्या ?

भूतनाथ—यह तो निश्चय हो ही गया कि हम लोग किसी तरह तहखाने के अन्दर जाकर मदद नहीं कर सकते और न इस किले में रहने में ही किसी तरह का फायदा है।

शेरअली—बेशक ऐसा ही है।

भूतनाथ—तब हमको खोह के उस मुहाने पर पहुँचना चाहिए जिस राह से दुश्मन लोग इस तहखाने में आये हैं। ताज्जुब नहीं कि दुश्मन लोग अपना काम करके या भाग के उसी राह से तहखाने के बाहर निकलें। यदि ऐसा हुआ तो निःसन्देह हम लोग कोई अच्छा काम कर सकेंगे।

शेरअली—(खुश होकर) ठीक है, बेशक ऐसा ही होगा, तो अब विलम्ब करना उचित नहीं है, चलिए और जल्दी चलिए।

भूतनाथ—चलिए, मैं तैयार हूँ।

इतना कहकर भूतनाथ और शेरअलीखाँ ने राजा वीरेन्द्रसिंह के आदमियों की लाशों को उठवाने और जिन्दों को कैद करने के विषय में पुनः समझा-बुझा कर तथा और भी कुछ कह-सुनकर किले के बाहर का रास्ता लिया और बहुत जल्द उस ठिकाने जा पहुँचे जहाँ के लिए इरादा कर चुके थे।

6

कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह फिर उस बड़ी तस्वीर के पास आये जिसके नीचे महाराज सूर्यकान्त का नाम लिखा हुआ था। दोनों कुमार उस तस्वीर पर फिर से गौर करने और उस लिखावट को पढ़ने लगे जिसे पहले पढ़ चुके थे। हम ऊपर लिख आए हैं कि इस तस्वीर में कुछ लेख ऐसा भी था जो बहुत बारीक हर्फों में लिखा होने के कारण कुमार से पढ़ा नहीं गया। अब दोनों कुमार उसी को पढ़ने के लिए उद्योग करने लगे क्योंकि उसका पढ़ना उन दोनों ने बहुत ही आवश्यक समझा।

इस कमरे में जितनी तस्वीरें थीं वे सब दीवार में बहुत ऊँचे पर न थीं बल्कि इतनी नीचे थीं कि देखने वाला उनके मुकाबले में खड़ा हो सकता था। यही सबब था कि महाराज सूर्यकान्त की तस्वीर में जो कुछ लिखा था उसे दोनों कुमारों ने बखूबी पढ़ लिया था मगर कुछ लेख वास्तव में बहुत ही बारीक अक्षरों में लिखा हुआ था, इसी से ये दोनों भाई उसे पढ़ न सके। दोनों भाइयों ने तस्वीर की बनावट और उसके चौखटे (फ्रेम) पर अच्छी तरह ध्यान दिया तो चारों कोनों में छोटे-छोटे चार गोल शीशे जड़े हुए दिखाई पड़े जिनमें तीन शीशे तो पतले और एक ही रंग-ढंग के थे, मगर चौथा शीशा मोटा दलदार और बहुत साफ था। इन्द्रजीतसिंह ने उस मोटे शीशे पर उँगली रक्खी तो वह हिलता हुआ मालूम पड़ा और जब कुमार ने दूसरा हाथ उसके नीचे रख कर उँगली से दबाया तो चौखटे से अलग होकर हाथ में आ रहा। इस समय आनन्दसिंह तिलिस्मी खंजर हाथ में लिए हुए रोशनी कर रहे थे। उन्होंने इन्द्रजीतसिंह से कहा, "मेरा दिल गवाही देता है कि यह शीशा उन अक्षरों के पढ़ने में अवश्य कुछ सहायता देगा जो बहुत बारीक होने के सबब से पढ़े नहीं जाते।"

इन्द्रजीतसिंह - मेरा भी यही खयाल है और इसी सबब से मैंने इसे निकाला भी है।

आनन्दसिंह—इसीलिए यह मजबूती के साथ जड़ा हुआ भी नहीं था।

इन्द्रजीतसिंह—देखो, अब सब मालूम ही हुआ जाता है।

इतना कहकर इन्द्रजीतसिंह ने उस शीशे को उन बारीक अक्षरों के ऊपर रक्खा

और वे अक्षर बड़े-बड़े मालूम होने लगे। अब दोनों भाई बड़ी प्रसन्नता से उस लेख को पढ़ने लगे। यह लिखा हुआ था—

स्व गिवर नर्ग दै कै पं

(खूब समझ के तब आगे पैर रक्खो)

6	—	3	—	अ	5	—	3	—	ए
3	—	3	—	ए	8	—	4	—	०
7	—	4	—	अ	8	—	3	—	ए
7	—	3	—	ए	1	—	1	—	०
3	—	1	—	औ	7	—	3	—	०
5	—	1	—	०	2	—	3	—	०
7	—	2	—	ए	6	—	5	—	०
6	—	5	—	ए	5	—	1	—	०
5	—	1	—	अ	2	—	1	—	०
7	—	3	—	ई	7	—	2	—	ओ
2	—	2	—	ओ	5	—	5	—	०
3	—	3	—	ओ	8	—	4	—	ई
5	—	1	—	इ	5	—	1	—	ओ
7	—	3	—	०	3	—	3	—	अ
8	—	3	—	०	5	—	5	—	०
6	—	5	—	ई	6	—	1	—	०
2	—	2	—	अं	7	—	2	—	०
3	—	3	—	०	1	—	1	—	आ
7	—	2	—	०	6	—	8	—	०
1	—	1	—	०	5	—	5	—	ए
6	—	1	—	०	2	—	3	—	ई
5	—	5	—	ए		—		—	

थोड़ी देर तक तो इस लेख का मतलब समझ में न आया लेकिन बहुत सोचने पर आखिर दोनों कुमार उसका मतलब समझ गए[1] और प्रसन्न होकर आनन्दसिंह बोले—

आनन्दसिंह—देखिये, तिलिस्म के सम्बन्ध में कितनी कठिनाइयाँ रक्खी हुई हैं!

इन्द्रजीतसिंह—यदि ऐसा न हो तो हर एक आदमी तिलिस्म के भेद को समझ जाय।

आनन्दसिंह—अच्छा तो अब क्या करना चाहिए?

---

1. पाठकों के सुभीते के लिए इन दोनों मजमूनों का आशय इस भाग के अन्तिम पृष्ठ पर दे दिया गया है, पर उन्हें अपनी चेष्टा से मतलब समझने की कोशिश अवश्य करनी चाहिए।

इन्द्रजीतसिंह—सबसे पहले बाजे की ताली खोजनी चाहिए, इसके बाद बाजे की आज्ञानुसार काम करना होगा।

दोनों भाई बाजे वाले चबूतरे के पास गये और घूम-घूमकर अच्छी तरह देखने लगे। उसी समय पीछे की तरफ से आवाज आई, "हम भी आ पहुँचे!" दोनों भाइयों ने ताज्जुब के साथ घूमकर देखा तो राजा गोपालसिंह पर निगाह पड़ी।

यद्यपि कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह को राजा गोपालसिंह के साथ पहले ही मोहब्बत हो गई थी, मगर जब से यह मालूम हुआ कि रिश्ते में वे इनके भाई हैं तब से मुहब्बत ज्यादा हो गई थी और इसीलिए इस समय उन्हें देखते ही इन्द्रजीतसिंह दौड़कर उनके गले से लिपट गये तथा उन्होंने भी बड़े प्रेम से दबाया। इसके बाद आनंदसिंह भी अपने भाई की तरह गले मिले और जब अलग हुए तो गोपालसिंह ने कहा, "मालूम होता है कि महाराज सूर्यकान्त की तस्वीर के नीचे जो कुछ लिखा है उसे आप दोनों भाई पढ़ चुके हैं।"

इन्द्रजीत—जी हाँ, और यह मालूम करके हमें बड़ी खुशी हुई कि आप हमारे भाई हैं! मगर मैं समझता हूँ कि आप इस बात को पहले ही से जानते थे।

गोपालसिंह—बेशक इस बात को मैं बहुत दिनों से जानता हूँ क्योंकि इस जगह कई दफे आ चुका हूँ, लेकिन इसके अतिरिक्त तिलिस्म-सम्बन्धी एक ग्रन्थ, जो मेरे पास है, उसमें भी यह बात लिखी हुई है।

आनन्दसिंह—तो इतने दिनों तक आपने हम लोगों से कहा क्यों नहीं?

गोपालसिंह—उस किताब में जो मेरे पास है ऐसा करने की मनाही थी, मगर अब मैं कोई बात आप लोगों से नहीं छिपा सकता और न आप ही मुझसे छिपा सकते हैं।

इन्द्रजीतसिंह—क्या आप इसी राह से आते-जाते हैं और आज भी इसी राह से हम लोगों को छोड़ कर निकल गये थे?

गोपाल—नहीं-नहीं, मेरे आने-जाने का रास्ता दूसरा ही है। उस कुएँ में आपने कई दरवाजे देखे होंगे, उनमें जो सबसे छोटा दरवाजा है मैं उसी राह से आता-जाता हूँ, यहाँ दूसरे ही काम के लिए मुझे कभी-कभी आना पड़ता है।

इन्द्रजीतसिंह—यहाँ आने की आपको क्या जरूरत पड़ा करती है?

गोपालसिंह—इधर तो मुद्दत से मैं आफत में फँसा हुआ था, आप ही ने मेरी जान बचाई है, इसलिए दो-दफे से ज्यादा आने की नौबत नहीं आई, हाँ इसके पहले महीने में एक दफे अवश्य आना होता था और इन कमरों की सफाई मुझे ही करनी पड़ती थी। जो किताब मेरे पास है और जिसका जिक्र मैंने अभी किया उसके पढ़ने से इस तिलिस्म का कुछ हाल और जमानिया की गद्दी पर बैठने वालों के लिए जो-जो आज्ञा और नियम बड़े लोग लिख गए हैं, आपको मालूम होगा। उसी नियमानुसार हर महीने की अमावस्या को मैं यहाँ आया करता था। आपकी, आनन्दसिंह की और अपनी तस्वीरें मैंने ही नियमानुसार इस कमरे में लगाई हैं और इसी तरह बड़े लोग अपने-अपने समय में अपनी और अपने भाइयों की तस्वीरें गुप्त रीति से तैयार कराके इस कमरे में रखते चले आए हैं। नियमानुसार यह एक आवश्यक बात थी कि जब तक आप लोग स्वयं इस

कमरे में न आ जायँ मैं हरएक बात आप लोगों से छिपाऊँ और इसीलिए मैं इस तिलिस्म के बाहर भी आपको नहीं ले गया जब कि आपने बाहर जाने की इच्छा प्रकट की थी, मगर अब कोई बात छिपाने की आवश्यकता न रही।

इन्द्रजीतसिंह—इस बाजे का हाल भी आपको मालूम होगा ?

गोपालसिंह—केवल इतना ही कि इसमें तिलिस्म के बहुत से भेद भरे हुए हैं, मगर इसकी ताली कहाँ है सो मैं नहीं जानता।

इन्द्रजीतसिंह—क्या आपके सामने यह बाजा कभी बोला ?

गोपालसिंह—इस बाजे की आवाज कई दफे मैंने सुनी है। (जमीन में गड़े एक पत्थर की तरफ इशारा करके) इस पर पैर पड़ने के साथ ही बाजा बजने लगता है, दो तीन गत के बाद कुछ बातें कहता और फिर चुप हो जाता है, अगर इस पत्थर पर पैर न पड़े तो कुछ भी नहीं बोलता।

इन्द्रजीतसिंह—(वह किताब दिखाकर जिस पर बाजे की आवाज लिखी थी) यह आवाज भी आपने सुनी होगी ?

गोपालसिंह—हाँ, सुन चुका हूँ मगर इसके लिए उद्योग करना सबसे पहले आप का काम है।

आनन्दसिंह—महाराज सूर्यकान्त की तस्वीर के नीचे बारीक अक्षरों में जो कुछ लिखा है उसे भी आप पढ़ चुके हैं ?

गोपालसिंह—नहीं, क्योंकि अक्षर बहुत बारीक हैं अतः पढ़े नहीं जाते।

इन्द्रजीतसिंह—हम लोग इसे पढ़ चुके हैं।

गोपालसिंह—(ताज्जुब से) सो कैसे ?

कुँअर इन्द्रजीतसिंह ने शीशे वाला हाल गोपालसिंह से कहा और जिस तरह स्वयं उन बारीक अक्षरों को पढ़ चुके थे उसी तरह उन्हें भी पढ़वाया।

गोपालसिंह—समय ने इस काम को आप लोगों के लिए ही रख छोड़ा था।

इन्द्रजीतसिंह—इसका मतलब आप समझ गये ?

गोपालसिंह—जी हाँ, समझ गया।

इन्द्रजीतसिंह—अब आप हम लोगों को बड़ाई के शब्दों से सम्बोधन न किया कीजिए क्योंकि आप बड़े हैं और हम लोग छोटे हैं, इस बात का पता लग चुका है।

गोपालसिंह—(हँसकर) ठीक है, अब ऐसा ही होगा, अच्छा तो बाजेवाले चबूतरे में से ताली निकालनी चाहिए।

इन्द्रजीतसिंह—जी हाँ, हम लोग इसी फिक्र में थे कि आप आ पहुँचे, लेकिन मुझे तो और भी बहुत सी बातें आपसे पूछनी हैं।

गोपालसिंह—खैर, पूछ लेना, पहले ताली के काम से छुट्टी पा लो।

आनन्दसिंह—मैंने इस कमरे में एक औरत को आते हुए देखा था मगर वह मुझ पर निगाह पड़ने के साथ ही पिछले पैर लौट गई और दूसरी कोठरी में जाकर गायब हो गई। इस बात का पता न लगा कि वह कौन थी या यहाँ क्योंकर आई।

गोपालसिंह—औरत ! यहाँ पर !

आनन्दसिंह—जी हाँ।

गोपालसिंह—यह तो एक आश्चर्य की बात तुमने कही ! अच्छा खुलासा कह जाओ।

आनन्दसिंह अपना हाल खुलासा बयान कर गये, जिसे सुनकर गोपालसिंह को बड़ा ही ताज्जुब हुआ और वे बोले, "खैर थोड़ी देर के बाद इस पर गौर करेंगे। किसी औरत का यहाँ आना निःसन्देह आश्चर्य की बात है।"

इन्द्रजीतसिंह - (खून से लिखी किताब दिखा कर) मेरी राय है कि आप इस किताब को पढ़ जायँ और जो तिलिस्मी किताब आपके पास है उसे पढ़ने के लिए मुझे दे दें।

गोपालसिंह—निःसन्देह वह किताब आपके पढ़ने के लायक है, उससे आपको बहुत फायदा पहुँचेगा और खाने-पीने तथा समय पड़ने पर इस तिलिस्म से बाहर निकल जाने में कोई अड़चन न पड़ेगी और यहाँ के कई गुप्त भेद भी आप लोगों को मालूम हो जायेंगे। आप इस बाजे की ताली निकालने का उद्योग कीजिए, तब तक मैं जाकर वह किताब ले आता हूँ।

इन्द्रजीतसिंह—बहुत अच्छी बात है, मगर बाजे की ताली निकालने के समय आप यहाँ मौजूद क्यों नहीं रहते ? आपसे बहुत-कुछ मदद हम लोगों को मिलेगी।

गोपालसिंह—क्या हर्ज है, ऐसा ही सही, आप लोग उद्योग करें।

यह तो मालूम ही हो चुका था कि बाजे की ताली उसी चबूतरे में है जिस पर बाजा रक्खा या जड़ा हुआ है। अस्तु, तीनों भाई उसी चबूतरे की तरफ बढ़े। राजा गोपालसिंह के पास भी तिलिस्मी खंजर मौजूद था जिसे उन्होंने हाथ में ले लिया और कब्जा दवा कर रोशनी करने के बाद कहा, "आप दोनों आदमी उद्योग करें, मैं रोशनी दिखाता हूँ।"

आनन्दसिंह—(आश्चर्य से)आप भी अपने पास तिलिस्मी खंजर रखते हैं ?

गोपालसिंह—हाँ, इसे प्रायः अपने पास रखता हूँ और जब तिलिस्म के अन्दर आने की आवश्यकता पड़ती है तब तो अवश्य ही रखना पड़ता है क्योंकि बड़े लोग ऐसा करने के लिए लिख गये हैं।

कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह दोनों भाई बाजे वाले चबूतरे के चारों तरफ घूमने और उसे ध्यान देकर देखने लगे। वह चबूतरा किसी प्रकार की धातु का और चौखूटा बना हुआ था। उसके दो तरफ तो कुछ भी न था, मगर बाकी दो तरफ मुट्ठे लगे हुए थे जिन्हें देख इन्द्रजीतसिंह ने आनन्दसिंह से कहा, "मालूम होता है कि ये दोनों मुठ्ठे पकड़ कर खींचने के लिए बने हुए हैं।"

आनन्दसिंह—मैं भी यही समझता हूँ।

इन्द्रजीतसिंह—अच्छा खींचो तो सही।

आनन्दसिंह—(मुट्ठे को अपनी तरफ खींच और घुमाकर)यह तो अपनी जगह से हिलता नहीं ! मालूम होता है कि हम दोनों को एक साथ उद्योग करना पड़ेगा और इसी

लिए इसमें दो मुट्ठे बने हुए हैं।

इन्द्रजीतसिंह—बेशक ऐसा ही है, अच्छा हम भी दूसरे मुट्ठे को खींचते हैं। दोनों आदमियों का जोर एक साथ ही लगना चाहिए।

दोनों भाइयों ने आमने-सामने खड़े होकर दोनों मुट्ठों को खूब मजबूती से पकड़ा और बाएँ-दाहिने दोनों तरफ को उमेठा, मगर वह बिलकुल न घूमा। इसके बाद दोनों ने उन्हें अपनी तरफ खींचा और कुछ खिंचते देखकर दोनों भाइयों ने समझा कि हमें इसमें अपनी पूरी ताकत खर्च करनी पड़ेगी। आखिर ऐसा ही हुआ, अर्थात् दोनों भाइयों के खूब जोर करने पर वे दोनों मुट्ठे खिंच कर बाहर निकल आये और इसके साथ ही उस चबूतरे की एक तरफ की दीवार (जिधर मुट्ठा नहीं था) पल्ले की तरह खुल गई। राजा गोपालसिंह ने झुक कर उसके अन्दर तिलिस्मी खंजर की रोशनी दिखाई और तीनों भाई बड़े गौर से अन्दर देखने लगे। एक छोटी सी चौकी नजर आई जिस पर छोटी सी ताँबे की तख्ती के ऊपर एक चाबी रक्खी हुई थी। इन्द्रजीतसिंह ने अन्दर की तरफ हाथ बढ़ा कर चौकी खींचनी चाही मगर वह अपनी जगह से न हिली, तब उन्होंने ताँबे की तख्ती और ताली उठा ली और पीछे की तरफ हटकर उस खुले हुए पल्ले को बन्द करना चाहा मगर वह भी बन्द न हुआ, लाचार उसे उसी तरह छोड़ दिया। ताँबे की तख्ती पर दोनों भाइयों ने निगाह डाली तो मालूम हुआ कि उस पर बाजे में ताली लगाने की तरकीव लिखी हुई है और ताली वही है जो उस तख्ती के साथ थी।

गोपालसिंह—(इन्द्रजीतसिंह से) ताली तो अब आपको मिल ही गई, मैं उचित समझता हूँ कि थोड़ी देर के लिए आप लोग यहाँ से चल कर बाहर की हवा खाएँ और सुस्ताने के बाद फिर जो कुछ मुनासिब समझें करें।

इन्द्रजीतसिंह—हाँ, मेरी भी यही इच्छा है, इस बन्द जगह में बहुत देर तक रहने से तबीयत घबरा गई है और सिर में चक्कर आ रहा है।

आनन्दसिंह—मेरी भी यही हालत है और प्यास बड़े जोर की मालूम होती है।

गोपालसिंह—बस तो इस समय यहाँ से चले चलना ही बेहतर है। हम आप लोगों को एक बाग में ले चलते हैं जहाँ हर तरह का आराम मिलेगा और खाने-पीने का भी सुभीता होगा!

इन्द्रजीतसिंह—बहुत अच्छा। चलिये, किस रास्ते से चलना होगा?

गोपालसिंह—इसी राह से जिससे आप आये हैं।

इन्द्रजीतसिंह—तब तो वह कमरा भी आनन्द के देखने में आ जायगा जिसे मैं स्वयं इन्हें दिखाना चाहता था, अच्छा चलिये।

राजा गोपालसिंह अपने दोनों भाइयों को साथ लिए हुए वहाँ से रवाना हुए और उस कोठरी में गये जिसमें से आनन्दसिंह ने अपने भाई इन्द्रजीतसिंह को आते देखा था। उस जगह इन्द्रजीतसिंह ने राजा गोपालसिंह से कहा, "क्या आप इसी राह से यहाँ आते थे? मुझे तो इस दरवाजे की जंजीर खंजर से काटनी पड़ी थी!"

गोपालसिंह—ठीक है, मगर हम इस ताले को हाथ लगाकर एक मामूली इशारे से खोल लिया करते थे।

आनन्दसिंह—इस तिलिस्म में जितने ताले हैं क्या वे सब इशारे ही से खुला करते हैं या किसी खटके पर हैं ?

गोपालसिंह—सब तो नहीं मगर कई ऐसे ताले हैं जिनका हाल हमें मालूम है।

इतना कहकर गोपालसिंह आगे बढ़े और उस विचित्र कमरे में पहुँचे जिसके बारे में इन्द्रजीतसिंह ने आनन्दसिंह से कहा था कि उस कमरे में जो कुछ मैंने देखा सो कहने योग्य नहीं बल्कि इस योग्य है कि तुम्हें अपने साथ ले चलकर दिखाऊँ।

वास्तव में वह कमरा ऐसा ही था। उसके देखने से आनन्दसिंह को भी बड़ा ही आश्चर्य हुआ। मगर अवश्य ही वह राजा गोपालसिंह के लिए कोई नई बात न थी क्योंकि वे कई दफा उस कमरे को देख चुके थे। तिलिस्मी खंजर की तेज रोशनी के कारण वहाँ की कोई चीज ऐसी न थी जो साफ-साफ दिखाई न देती हो और इसीलिए वहाँ की सब चीजों को दोनों भाइयों ने खूब ध्यान देकर देखा।

इस कमरे की लम्बाई लगभग पच्चीस हाथ के होगी और यह इतना ही चौड़ा भी होगा। चारों कोनों में चार जड़ाऊ सिंहासन रक्खे हुए थे, और उन पर बड़े-बड़े चमकदार हीरे, मानिक, पन्ने और मोतियों के ढेर लगे हुए थे। उनके नीचे सोने की थालियों में कई प्रकार के जड़ाऊ जेवर रक्खे हुए थे जो औरतों और मर्दों के काम में आ सकते थे। चारों सिंहासनों के बगल से लोहे के महराबदार खम्भे निकले हुए थे जो कमरे के बीचोंबीच में आकर डेढ़ पुर्से की ऊँचाई पर मिल गये थे और उनके सहारे एक आदमी लटक रहा था जिसके गले में लोहे की जंजीर फाँसी के ढंग पर लगी हुई थी। देखने से यही मालूम होता था कि यह आदमी इस तौर फाँसी पर लटकाया गया है। उस आदमी के नीचे एक हसीन औरत सिर के बाल खोले इस ढंग से बैठी हुई थी जैसे उस लटकते हुए आदमी का मातम कर रही हो, तथा उसके पास ही एक दूसरी औरत हाथ में लालटेन लिए खड़ी थी जिसे देखने के साथ ही आनन्दसिंह बोल उठे, "यह वही औरत है जिसे मैंने उस कमरे में देखा था और जिसका हाल आप लोगों से कहा था, फर्क केवल इतना ही है कि इस समय इसके हाथ वाली लालटेन बुझी हुई है।"

गोपालसिंह—तुम भी तो अनोखी बात कहते हो, भला ऐसा कभी हो सकता है?

आनन्दसिंह—हो सके चाहे न हो सके, मगर यह औरत निःसन्देह वही है जिसे मैं देख चुका हूँ। अगर आपको विश्वास न हो तो इससे पूछ कर देखिये।

गोपालसिंह—(हँसकर) क्या तुम इसे सजीव समझते हो ?

आनन्दसिंह—तो क्या यह निर्जीव है ?

गोपालसिंह—बेशक ऐसा ही है। तुम इसके पास जाओ और जरा हिला-डुला कर देखो।

आनन्दसिंह उस औरत के पास गए और कुछ देर तक खड़े होकर देखते रहे मगर बड़ों के लिहाज से यह सोच कर हाथ नहीं लगाते थे कि कहीं यह सजीव न हो। राजा गोपालसिंह उनका मतलब समझ गये और स्वयं उस पुतली के पास जाकर बोले, "खाली देखने से पता न लगेगा, इसे हिला-डुला और ठोंक कर देखो!"

इतना कहकर उन्होंने उस पुतली के सिर पर दो-तीन चपतें जमाईं, जिससे एक

प्रकार की आवाज पैदा हुई जैसे किसी धातु की पोली चीज को ठोंकने से निकलती है। उस समय आनन्दसिंह का शक दूर हुआ और वे बोले, "निःसन्देह यह निर्जीव है, मगर वह औरत भी ठीक वैसी ही थी, डील-डौल, रंग-ढंग, कपड़ा-लत्ता किसी भी बात में फर्क नहीं है ! ईश्वर जाने क्या मामला है !"

गोपालसिंह—ईश्वर जाने, क्या भेद है ! परन्तु जब से तुमने यह बात कही है हमारे दिल को एक खुटका-सा लग गया है, जब तक उसका ठीक-ठीक पता न लगेगा, जी को चैन न पड़ेगा। खैर, इस समय तो यहाँ से चलना चाहिए।

राजा गोपालसिंह उस लटकते हुए आदमी के पास गए और उसका एक पैर पकड़ कर नीचे की तरफ दो-तीन बार झटका दिया, तब वहाँ से हट कर इन्द्रजीतसिंह के पास चले आये। झटका देने के साथ ही वह आदमी जोर-जोर से झोंके खाने लगा और कमरे में किसी तरह की भयानक आवाज आने लगी। मगर यह नहीं मालूम होता था कि आवाज किधर से आ रही है, हर तरफ वह भयानक आवाज गूँज रही थी। यह हालत चौथाई घड़ी तक रही, इसके बाद जोर की आवाज हुई और सामने की तरफ एक छोटा-सा दरवाजा खुला हुआ दिखाई दिया। उस समय कमरे में किसी तरह की आवाज सुनाई न देती थी, हर तरह से सन्नाटा हो गया था।

दोनों भाइयों को साथ लिए राजा गोपालसिंह दरवाजे के अन्दर गए जो अभी खुला था। उसके अन्दर ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई थीं जिस राह से तीनों भाई ऊपर चढ़ गए और अपने को एक छोटे-से नजरबाग में पाया। यह बाग यद्यपि छोटा था मगर बहुत ही खूबसूरत और सूफियाने किते का बना हुआ था। संगमर्मर की बारीक नालियों में नहर का जल चकाबू के नक्शे की तरह घूम-फिर कर बाग की खूबसूरती को बढ़ा रहा था। खुशबूदार फूलों की महक हवा के हलके-हलके झपेटों के साथ आ रही थी। सूर्य अस्त हो चुका था, रात के समय खिलने वाली कलियों को चन्द्रदेव की आशा लग रही थी। कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह बहुत देर तक अँधेरे में रहने तथा भूख-प्यास के कारण बहुत परेशान हो रहे थे, नहर के किनारे साफ पत्थर पर बैठ गए, कपड़े उतार दिये और मोती सरीखे साफ जल से हाथ-मुँह धोने के बाद दो-तीन चुल्लू जल पीकर हरारत मिटाई।

गोपालसिंह—अब आप लोग इस बाग में बेफिक्री के साथ अपना काम करें। मैदान जायँ और स्नान-संध्या-पूजा से छुट्टी पाकर बाग की सैर करें, तब तक मैं खास बाग में जाकर कुछ खाने का सामान और तिलिस्मी किताब जो मेरे पास है ले आता हूँ। इस बाग में मेवे के पेड़ भी बहुतायत से हैं, यदि इच्छा हो तो आप उनके फल खाने के काम में ला सकते हैं।

इन्द्रजीतसिंह—बहुत अच्छी बात है, आप जाइये, मगर जहाँ तक हो सके, जल्दी ही आइएगा।

आनन्दसिंह—क्या हम लोग आपके साथ खास बाग में नहीं चल सकते ?

गोपालसिंह—क्यों नहीं चल सकते ? मगर मैं इस समय आप लोगों को तिलिस्म के बाहर ले जाना पसन्द नहीं कर सकता और तिलिस्मी किताब में भी ऐसा करने की

मनाही है।

इन्द्रजीतसिंह—खैर, कोई चिन्ता नहीं, आप जाइए और जल्द लौट कर आइए। जब वह तिलिस्मी किताब जो आपके पास है हम लोग पढ़ लेंगे और आप भी इस 'रिक्तगंथ' को जो मेरे पास है पढ़ लेंगे तब जैसी राय होगी किया जायगा।

गोपालसिंह—ठीक है, अच्छा तो अब मैं जाता हूँ।

इतना कहकर राजा गोपालसिंह एक तरफ चले गये और कुँअर इन्द्रजीतसिंह तथा आनन्दसिंह जरूरी कामों से छुट्टी पाने की फिक्र में लगे।

7

राह पहर भर से ज्यादा जा चुकी है। चन्द्रदेव उदय हो चुके हैं मगर अभी इतने ऊँचे नहीं उठे हैं कि बाग के पूरे हिस्से पर चाँदनी फैली हुई दिखाई देती, हाँ, बाग के उस हिस्से पर चाँदनी का फर्श जरूर बिछ चुका था जिधर कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह एक चट्टान पर बैठे हुए बातें कर रहे थे। ये दोनों भाई अपने जरूरी कामों से छुट्टी पा चुके थे और संध्या-वंदन करके दो-चार फलों से आत्मा को सन्तोष देकर आराम से बैठे बातें करते हुए राजा गोपालसिंह के आने का इन्तजार कर रहे थे। यकायक बाग के उस कोने में, जिधर चाँदनी न होने तथा पेड़ों के झुरमुट के कारण अंधेरा था, दीये की चमक दिखाई पड़ी। दोनों भाई चौकन्ने होकर उस तरफ देखने लगे और दोनों को गुमान हुआ कि राजा गोपालसिंह आते होंगे, मगर उनका शक थोड़ी ही देर बाद जाता रहा जब एक औरत को हाथ में लालटेन लिए अपनी तरफ आते देखा।

इन्द्रजीतसिंह—यह औरत इस बाग में क्योंकर आ पहुँची ?

आनन्दसिंह—ताज्जुब की बात है। मगर मैं समझता हूँ कि इसे हम दोनों भाइयों के यहाँ होने की खबर नहीं है, अगर होती तो इस तरह बेफिक्री के साथ कदम बढ़ाती हुई न आती।

इन्द्रजीतसिंह—मैं भी यही समझता हूँ, अच्छा हम दोनों को छिप कर देखना चाहिए कि यह कहाँ जाती और क्या करती है।

आनन्दसिंह—मेरी भी यही राय है।

दोनों भाई वहाँ से उठे और धीरे-धीरे चलकर एक पेड़ की आड़ में छिप रहे, जिसे चारों तरफ से लताओं ने अच्छी तरह घेर रक्खा था और जहाँ से उन दोनों की निगाह बाग के हर एक हिस्से और कोने में भी बखूबी पहुँच सकती थी। जब वह औरत घूमती हुई उस पेड़ के पास से होकर निकली, तब आनन्दसिंह ने धीरे से कहा, "यह वही औरत है।"

इन्द्रजीतसिंह—कौन ?

आनन्दसिंह—जिसे तिलिस्म के अन्दर बाजे वाले कमरे में मैंने देखा था और

जिसका हाल आपसे तथा गोपाल भाई से कहा था।

इन्द्रजीतसिंह—अगर वास्तव में ऐसा है तो फिर इसे गिरफ्तार करना चाहिए।

आनन्दसिंह—जरूर गिरफ्तार करना चाहिए।

दोनों भाई सलाह करके उस पेड़ की आड़ में से निकले और उस औरत को घेर कर गिरफ्तार करने का उद्योग करने लगे। थोड़ी ही देर के बाद नजदीक होने पर इन्द्रजीतसिंह ने भी देख कर निश्चय कर लिया कि हाथ में लालटेन लिए हुए यह वही औरत है जिसे तिलिस्म में फाँसी लटकते हुए आदमी के साथ-साथ निर्जीव खड़े देखा था।

उस औरत को भी मालूम हो गया कि दो आदमी उसे गिरफ्तार करना चाहते हैं अतएव वह चैतन्य हो गई और चमेली की टट्टियों में घूम-फिर कर कहीं गायब हो गई। दोनों भाइयों ने बहुत उद्योग और पीछा किया मगर नतीजा कुछ भी न निकला। वह औरत ऐसी गायब हुई कि कोई निशान भी न छोड़ गई, न मालूम वह चमेली की टट्टियों में लीन हो गई या जमीन के अन्दर समा गई। दोनों भाई लज्जा के साथ-ही-साथ निराश होकर अपनी जगह लौट आये और उसी समय राजा गोपालसिंह को भी एक हाथ में चंगेर और दूसरे हाथ में तेज रोशनी की अद्भुत लालटेन लिए हुए आते देखा। गोपालसिंह दोनों भाइयों के पास आए और लालटेन तथा चंगेर जिसमें खाने की चीजें थीं जमीन पर रख कर इस तरह बैठ गये जैसे बहुत दूर से चलकर आता हुआ मुसाफिर परेशानी और बदहवासी की हालत में आगे सफर करने से निराश होकर पृथ्वी की शरण लेता है, या कोई-कोई धनी अपनी भारी रकम खो देने के बाद चोरों की तलाश से निराश और हताश होकर बैठ जाता है। इस समय राजा गोपालसिंह के चेहरे का रंग उड़ा हुआ था और वे बहुत ही परेशान और बदहवास मालूम होते थे। कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने घबराकर पूछा, "कहिए कुशल तो है?"

गोपालसिंह—(घबराहट के साथ) कुशल नहीं है।

इन्द्रजीतसिंह—सो क्यों?

गोपालसिंह—मालूम होता है कि हमारे घर में किसी जबर्दस्त दुश्मन ने पैर रक्खा है और वह हमारे यहाँ से उस चीज को ले गया जिसके भरोसे पर हम अपने को तिलिस्म का राजा समझते थे और तिलिस्म तोड़ने के समय आपको काफी मदद देने का हौसला रखते थे।

आनन्दसिंह—वह कौन-सी चीज थी?

गोपालसिंह—वही तिलिस्मी किताब, जिसका जिक्र आप लोगों से कर चुके हैं और जिसे लाने के लिए हम इस समय गए थे।

इन्द्रजीतसिंह—(रंज के साथ) अफसोस! आप उसे छिपाकर नहीं रखते थे?

गोपालसिंह—छिपाकर तो ऐसा रखते थे कि हमें वर्षों तक कैदखाने में सड़ाने और मुर्दा बनाने पर भी मुन्दर, जिसने अपने को मायारानी बना रक्खा था, उस किताब को न पा सकी।

इन्द्रजीतसिंह—तो आज वह यकायक गायब कैसे हो गई?

गोपालसिंह—न मालूम क्योंकर गायब हो गई, मगर इतना जरूर कह सकते हैं कि जिसने यह किताब चुराई है वह तिलिस्म के भेदों से कुछ जानकार अवश्य हो गया है। इसे आप लोग साधारण बात न समझिए! इस चोरी से हमारा उत्साह भंग हो गया और हिम्मत जाती रही, हम आप लोगों को इस तिलिस्म में किसी तरह की मदद देने लायक न रहे, और हमें अपनी जान जाने का भी खौफ हो गया। इतना ही नहीं, सबसे ज्यादा तरद्दुद की बात तो यह है कि वह चोर आश्चर्य नहीं कि अब आप लोगों को भी दुःख दे।

इन्द्रजीतसिंह—यह तो बहुत बुरा हुआ।

गोपालसिंह—बेशक बुरा हुआ। हाँ, यह तो बताइये, इस बाग में लालटेन लिए कौन घूम रहा था?

आनन्दसिंह—वही औरत जिसे मैंने तिलिस्म के अन्दर बाजे वाले कमरे में देखा था और जो फाँसी लटकते हुए मनुष्य के पास निर्जीव अवस्था में खड़ी थी। (इन्द्रजीतसिंह की तरफ इशारा करके) आप भाईजी से पूछ लीजिए कि मैं सच्चा हूँ या नहीं।

इन्द्रजीतसिंह—बेशक उसी रंग-रूप और चाल-ढाल की औरत थी!

गोपालसिंह—बड़े आश्चर्य की बात है! कुछ अक्ल काम नहीं करती!

इन्द्रजीतसिंह—हम दोनों ने उसे गिरफ्तार करने के लिए बहुत उद्योग किया, मगर कुछ बन न पड़ा। इन्हीं चमेली की टट्टियों में वह खुशबू की तरह हवा के साथ मिल गई, कुछ मालूम न हुआ कि कहाँ चली गई!

गोपालसिंह—(घबराकर) इन्हीं चमेली की टट्टियों में? वहाँ से तो देवमन्दिर में जाने का रास्ता है जो बाग के चौथे दर्जे में है!

इन्द्रजीतसिंह—(चौंक कर) देखिए-देखिए, वह फिर निकली!

8

इस जगह हमें भूतनाथ के सपूत लड़के तथा खुदगर्ज और मतलबी ऐयार नानक का हाल पुनः लिखना पड़ा।

हम ऊपर के किसी बयान में लिख आये हैं कि जिस समय नानक अपने मित्र की ज्याफत में तन, मन, धन और आधे शरीर से लौलीन हो रहा था, उसी समय उस पर वज्रपात हुआ, अर्थात् एक नकाबपोश उसके बाप की दुर्दशा का हाल बताकर उसे अंधे कुएँ में धकेल गया। लोग कहते हैं कि उसे अपने बाप से कुछ भी मुहब्बत न थी, हाँ अपनी माँ को कुछ-कुछ जरूर चाहता था, जिस पर उसकी नई-नवेली दुलहिन ने उसे कुछ ऐसा मुट्ठी में कर लिया था कि उसी को सब-कुछ तथा इष्टदेव समझ बैठा था और उसकी उपासना से विमुख होना हराम समझता था। यद्यपि वह अपने बाप की कुछ परवाह नहीं करता था और न उसको उससे कुछ प्रेम ही था, मगर वह अपने बाप से डरता

उतना ही था, जितना लम्पट लोग काल से डरते हैं । जिस समय वह लौटकर घर आया, उसकी अनोखी स्त्री थकावट और सुस्ती के कारण चारपाई का सहारा ले चुकी थी ! उसने नानक से पूछा, "कहो क्या मामला है ? तुम कहाँ गये थे ?"

नानक—(धीरे से) अपने नापाक बाप के आफत में फँसने की खबर सुनने गया था । अच्छा होता, जो मुझे उसके मौत की खबर सुनने में आती और मैं सदैव के लिए निश्चिन्त हो जाता ।

स्त्री—(आश्चर्य से) अपने प्यारे ससुर के बारे में ऐसी बात तो आज तक तुम्हारी जबान से कभी सुनने में न आई थी !

नानक—क्योंकर सुनने में आती, जबकि अपने इस सच्चे भाव को मैं आज तक मंत्र की तरह छिपाए हुए था ! आज यकायक मेरे मुँह से ऐसी बात तुम्हारे सामने निकल गई, इसके बाद फिर कभी कोई शब्द ऐसा मेरे मुँह से न निकलेगा जिससे कोई समझ जाये कि मैं अपने बाप को नहीं चाहता । तुम्हें मैं अपनी जान समझता हूँ और आशा है कि इस बात की, जो यकायक मेरे मुँह से निकल गई है तुम भी जान ही की तरह हिफाजत करोगी जिसमें कोई सुनने न पावे । अगर कोई सुन लेगा तो मेरी बड़ी खराबी होगी क्योंकि मैं अपने बाप को यद्यपि मानता तो कुछ नहीं हूँ, मगर उससे डरता बहुत हूँ, क्योंकि वह बड़ा ही शैतान और भयानक आदमी है । यदि वह जान जायेगा कि मैं उसके साथ खुदगर्जी का बरताव करता हूँ, तो वह मुझे जान से ही मार डालेगा ।

स्त्री—नहीं-नहीं, मैं ऐसी बात कभी किसी के सामने नहीं कह सकती, जिससे तुम पर मुसीबत आये । (हँसकर) हाँ, अगर तुम मुझे कभी रंज करोगे, तो जरूर प्रकट कर दूंगी ।

नानक—उस समय मैं भी लोगों से कह दूंगा कि मेरी स्त्री व्यभिचारिणी हो गई है, मुझ पर तूफान जोड़ती है । भला दुनिया में कोई भी ऐसा आदमी है, जो अपने बाप को न चाहता हो ? यदि ऐसा होता तो क्या मैं चुपचाप बैठा रह जाता ! मगर नहीं, मैं अपने बाप को छुड़ाने के लिए इसी वक्त जाऊँगा और इस उद्योग में अपनी जान तक लड़ा दूंगा ।

स्त्री—(मन में) ईश्वर करे, तुम किसी तरह इस शहर से बाहर तो निकलो या किसी दूसरी दुनिया में चले जाओ । (प्रकट) जब वह फँस ही चुका है तो चुपचाप बैठे रहो, समय पड़ने पर कह देना कि मुझे खबर ही नहीं थी !

नानक— नहीं, मैं ऐसा कदापि नहीं कह सकता क्योंकि गोपीकृष्ण (नकाबपोश) जिससे इस बात की मुझे खबर मिली है बड़ा दुष्ट आदमी है, समय पड़ने पर वह अवश्य कह देगा कि मैंने इस बात की इत्तिला नानक को दे दी थी !

स्त्री—अच्छा, तुम खुलासा कह जाओ कि क्या-क्या खबर सुनने में आई है ?

नानक ने नकाबपोश की जबानी जो कुछ सुना था, अपनी प्यारी स्त्री से कहा । इसके बाद उसे बहुत कुछ समझा-बुझाकर सफर की पूरी तैयारी करके अपने बाप को छुड़ाने की फिक्र में वहाँ से रवाना हो गया ।

भूतनाथ के संगी-साथी लोग मामूली न थे, वल्कि बड़े ही बदमाश लड़ाके शैतान

और फसादी लोग थे तथा चारों तरफ ऐसे ढंग से घूमा करते थे कि समय पड़ने पर जब भूतनाथ उन लोगों की खोज करता, तो विशेष परिश्रम किए बिना ही उनमें से कोई न कोई मिल ही जाता था, इसके अतिरिक्त भूतनाथ ने अपने लिए कई अड्डे भी मुकर्रर कर लिए थे, जहाँ उसके संग-साथियों में से कोई न कोई अवश्य रहा करता था और उन अड्डों में कई अड्डे ऐसे थे जिनका ठिकाना नानक को मालूम था। ऐसा ही एक अड्डा गयाजी से थोड़ी दूर पर बराबर की पहाड़ी के ऊपर था, जहाँ अपने बाप का पता लगाता हुआ नानक जा पहुँचा। उस समय भूतनाथ के साथियों में से तीन आदमी वहाँ मौजूद थे।

नानक ने उन लोगों से अपने बाप का हाल पूछा और जो कुछ उन लोगों को मालूम था उन्होंने कहा। इत्तिफाक से उसी समय मनोरमा को लिए हुए भूतनाथ भी वहाँ आ पहुँचा और अपने सपूत लड़के को देखकर बहुत खुश हुआ। भूतनाथ ने मनोरमा को तो अपने आदमियों के हवाले किया और नानक का हाथ पकड़ के एक किनारे ले जाने के बाद जो कुछ उस पर बीता था, सब ब्यौरेवार कह सुनाया।

नानक—(अफसोस के साथ मुंह बनाकर) अफसोस ! आपने इन बातों की मुझे कुछ भी खबर न दी ! अगर गोपीकृष्ण आपकी परेशानी का कुछ हाल मुझसे न कहते तो मुझे गुमान भी न होता।

भूतनाथ—खैर, जो कुछ होना था वह हो गया, अब तुम मनोरमा को लेकर वहाँ जाओ, जहाँ तुम्हारी माँ रहती है और जिस तरह हो सके, मनोरमा से पूछ कर बलभद्रसिंह का पता लगाओ, मगर एक आदमी को साथ जरूर लिए जाओ, क्योंकि आजकल तुम्हारी माँ जिस ठिकाने रहती है यद्यपि वहाँ का हाल तुमसे हमने कह दिया मगर रास्ता इतना खराब है कि बिना आदमी साथ लिए तुम्हें कुछ भी पता न लगेगा।

नानक—जो आज्ञा, तो क्या इस समय आप सीधे रोहतासगढ़ जायेंगे ?

भूतनाथ—हाँ जरूर जायेंगे, क्योंकि ऐसे समय में शेरअलीखाँ से मिलना आवश्यक है, मगर जब तक हम न आवें, तुम अपनी माँ के पास रहना और जिस तरह हो सके, बलभद्रसिंह का पता लगाना।

इसके बाद नानक को लिए हुए भूतनाथ फिर अपने आदमियों के पास चला आया और एक आदमी को धन्नूसिंह का पता बताकर (जिसे कैद करके कहीं रख आया था, कहा कि तुम धन्नूसिंह को यहाँ से लाकर हमारे घर पहुँचा दो और फिर इसी ठिकाने आकर रहो।

इन कामों से छुट्टी पाने के बाद भूतनाथ रोहतासगढ़ में शेरअलीखाँ के पास गया और वहाँ जो कुछ हुआ, सो हमारे प्रेमी पाठक पढ़ चुके हैं।

9

दोपहर का समय है। हवा खूब तेज चल रही है। मैदान में चारों तरफ बगूले उड़ते दिखाई दे रहे हैं। ऐसे समय में एक बहुत फैले हुए और गुंजान आम के पेड़ के

नीचे नानक और भूतनाथ का सिपाही, जिसने अपना नाम दाऊबाबा रखा हुआ था बैठे हुए सफर की हरारत मिटा रहे हैं। पास ही में मनोरमा भी बैठी है जिसके हाथ-पैर कमन्द से बँधे हुए हैं। थोड़ी ही दूर पर एक घोड़ी चर रही थी, जिसकी लम्बी बाग-डोर एक डाल के साथ बँधी हुई थी और जिस पर मनोरमा को लाद के वे लोग लाए थे। इस समय सफर की हरारत मिटाने और धूप का समय टाल देने के लिए वे लोग इस पेड़ के नीचे बैठे हुए बात कर रहे हैं।

नानक—(मनोरमा से) मुझे तुम्हारी शक्ल-सूरत पर रहम आता है, तुम नाहक ही एक बदकार और नकली मायारानी के लिए अपनी जान दे रही हो।

मनोरमा—(लम्बी साँस लेकर) बात तो ठीक है, मगर अब जान बचने की कोई उम्मीद भी तो नहीं है। सच कहती हूँ कि इस जिन्दगी का मजा मैंने कुछ भी नहीं पाया। मेरे पास करोड़ों रुपये की जमा मौजूद है, मगर वह इस समय मेरे किसी अर्थ की नहीं, न मालूम उस पर किसका कब्जा होगा और उसे पाकर कौन आदमी अपने को भाग्यवान मानेगा, या शायद लावारिसी माल समझ राजा ही···

नानक—तुम रोती क्यों हो, आँखें पोंछो, तुम्हारा रोना मुझे अच्छा नहीं मालूम होता। मैं सच कहता हूँ कि तुम्हारी जान बच सकती है और तुम अपनी दौलत का आनन्द अच्छी तरह भोग सकती हो यदि बलभद्रसिंह और इन्दिरा का पता बता दो !

मनोरमा—मैं बलभद्रसिंह और इन्दिरा का पता भी बता सकती हूँ और अपनी कुछ दौलत भी तुमको दे सकती हूँ, यदि मेरी जान बच जाये यदि तुम एक सलूक मेरे साथ करो।

नानक—वह कौन-सा सलूक है जो तुम्हारे साथ करना होगा ? हाय मुझे तुम्हारी सूरत पर दया आती है। मैं नहीं चाहता कि एक ऐसी खूबसूरत परी दुनिया से उठ जाये।

मनोरमा—वह बात बहुत गुप्त है, इसीलिए मैं नहीं चाहती कि उसे सिवाय तुम्हारे कोई और सुने।

दाऊबाबा—लो, हम आप ही अलग हो जाते हैं, तुम लोग अपना मजे में बातें करो, हमें इन सब बखेड़ों से कोई मतलब नहीं, हमें तो मालिक का काम होने से मतलब है, तब तक दो-एक चिलम गाँजा उड़ा के सफर की थकावट मिटाते हैं।

इतना कहकर दाऊ बाबा जो वास्तव में एक मस्त आदमी था, उठकर कुछ दूर चला गया और अपने सफरी बटुए मेंसे चकमक निकालकर आग सुलगाने के बाद आनन्द के साथ गाँजा मलने लगा, इधर नानक उठकर मनोरमा के पास जा बैठा।

नानक—लो कहो, अब क्या कहती हो !

मनोरमा—यह तो तुम जानते हो कि मेरे पास बड़ी दौलत है !

नानक—हाँ, सो मैं खूब जानता हूँ कि तुम्हारे पास करोड़ों रुपये की जमा मौजूद है !

मनोरमा—और यह भी जानते हो कि तुम्हारी प्यारी रामभोली भी मेरे ही कब्जे में है !

नानक—(चौंक कर) नहीं, सो तो मैं नहीं जानता ! क्या वास्तव में रामभोली

भी तुम्हारे ही कब्जे में है ? हाय, यद्यपि वह गूँगी और बहरी औरत है, मगर मैं उसे दिल से प्यार करता हूँ । यदि वह मुझे मिल जाये, तो मैं अपने को बड़ा ही भाग्यवान समझूँ ।

मनोरमा—हाँ, वह मेरे ही कब्जे में है और तुम्हें मिल सकती है । मैं अपनी तमाम दौलत भी तुम्हें देने को तैयार हूँ और बलभद्रसिंह तथा इन्दिरा का पता भी बता सकती हूँ यदि इन सब कामों के बदले में तुम एक उपकार मेरे साथ करो !

नानक—(खुश होकर) वह क्या ?

मनोरमा—तुम मेरे साथ शादी कर लो, क्योंकि मैं तुम्हें जी-जान से प्यार करती हूँ और तुम पर मरती हूँ ।

नानक—यद्यपि तुम्हारी उम्र मेरे बराबर है, मगर मैं तुम्हें अभी तक नई-नवेली ही समझता हूँ और तुम्हें प्यार भी करता हूँ क्योंकि तुम खूबसूरत हो, लेकिन तुम्हारे साथ शादी मैं कैसे कर सकता हूँ, यह बात मेरा बाप कब मंजूर करेगा !

मनोरमा—इस बात से अगर तुम्हारा बाप रंज हो तो वह बड़ा ही बेवकूफ है । बलभद्रसिंह के मिलने से उसकी जान बचती है और इन्दिरा के मिलने से वह इन्द्रदेव का प्रेम-पात्र बनकर आनन्द के साथ अपनी जिन्दगी बितायेगा । तुम्हारे अमीर होने से भी उसको फायदा ही पहुँचेगा । इसके अतिरिक्त तुम्हारी रामभोली तुम्हें मिलेगी और मैं तुम्हारी होकर जिन्दगी भर तुम्हारी सेवा करूँगी । तुम खूब जानते हो कि मायारानी के फेर में पड़े रहने के कारण अभी तक मेरी शादी नहीं हुई ।

नानक—(मुस्कुरा कर) मगर दो-चार प्रेमियों से प्रेम जरूर कर चुकी हो !

मनोरमा—हाँ इस बात से मैं इनकार नहीं कर सकती, मगर क्या तुम इसी से हिचकते हो ? बड़े बेवकूफ हो ! इस बात से भला कौन बचा है ? क्या तुम्हारी अनोखी स्त्री ही जो आज कल तुम्हारे सिर चढ़ी हुई है बची है ? तुम इस बारे में कसम खा सकते हो ? क्या तुम दुनिया भर के भेद जानते हो और अन्तर्यामी हो ? ये सब बातें तुम्हारे ऐसे खुशदिल आदमियों के सोचने के लायक नहीं । हां इतना मैं प्रतिज्ञापूर्वक कह सकती हूँ कि इस काम से तुम्हरा बाप कभी नाखुश न होगा । जरा ध्यान देकर देखो तो सही कि तुम्हारे बाप ने इस जिन्दगी में कैसे-कैसे काम किए हैं । उसका मुँह नहीं कि तुम्हें कुछ कह सके, और फिर दुनिया में मेरा तुम्हारा साथ और करोड़ों रुपये की जमा क्या यह मामूली बात है ? हमसे तुमसे बढ़कर भाग्यवान कौन दिखाई दे सकता है ! हाँ इस बात की भी मैं कसम खाती हूँ कि तुम्हारी आजकल वाली स्त्री और रामभोली से सच्चा प्रेम करूँगी और चाहे ये दोनों मुझसे कितना ही लड़ें, मगर मैं उनकी खातिरदारी ही करूँगी ।

मनोरमा की मीठी-मीठी और दिल लुभा लेने वाली बातों ने नानक को ऐसा बेकाबू कर दिया कि वह स्वर्ग-सुख का अनुभव करने लगा । थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद उसने कहा, "मगर इस बात का विश्वास कैसे हो कि जितनी बात तुम कह गई हो उसे अवश्य पूरा करोगी ?"

इसके जवाब में मनोरमा ने हजारों कसमें खाईं और नानक के मन में अपनी

बात का विश्वास पैदा कर दिया। इसके बाद उसने अपना हाथ-पैर खोल देने के लिए नानक से कहा, नानक ने उसके हाथ-पैर खोल दिये और मनोरमा ने अपनी उँगली से वह जहरीली अँगूठी, जिसको निकाल लेना भूतनाथ भूल गया था, उतार कर नानक की उँगली में पहना देने के बाद नानक का मुँह चूमकर कहा, ''इसी समय से मैंने तुम्हें अपना पति मान लिया। अब तुम मेरे घर चलो, बलभद्रसिंह और इन्दिरा को लेकर अपने बाप के पास भेज दो, मेरे घरबार के मालिक बनो और इसके बाद जो कुछ मुझे कहो, मैं करने को तैयार हूँ। अब इससे बढ़कर सन्तोष दिलाने वाली बात मैं क्या कह सकती हूँ !''

इतना कहकर मनोरमा ने नानक के गले में हाथ डाल दिया और पुनः उसका मुँह चूमकर कहा, ''प्यारे, मैं तुम्हारी हो चुकी, अब तुम जो चाहो सो करो !''

अहा, स्त्री भी दुनिया में क्या चीज है ! बड़े-बड़े होशियारों, चालाकों, ऐयारों, अमीरों, पहलवानों और बहादुरों को बेवकूफ बनाकर मटियामेट कर देने की शक्ति जितनी स्त्री में है उतनी किसी में नहीं। इस दुनिया में वह बड़ा ही भाग्यवान है जिसके गले में दुष्टा और धूर्त स्त्री की फाँसी नहीं लगी। देखिए, दुर्दैव के मारे कम्बख्त नानक ने क्या मुँह की खाई है और धूर्ता मनोरमा ने कैसा उसका मुँह काला किया। मजा तो यह है कि स्त्री-रत्न पाने के साथ ही दौलत भी पाने की खुशी ने उसे और भी अन्धा बना दिया और जिस समय मनोरमा ने जहरीली अँगूठी नानक की उँगली में पहनाकर उसके गुण की प्रशंसा की उस समय तो नानक को निश्चय हो गया कि बस यह हमारी हो चुकी। उसने सोचा कि इसे अपनाने में अगर भूतनाथ रंज भी हो जाय तो कोई परवाह की बात नहीं है और रंज होने का सबब ही क्या है बल्कि उसे तो खुश होना चाहिए क्योंकि मेरे ही सबब से उसकी जान बचेगी।

नानक ने भी मनोरमा के गले में हाथ डाल के उससे कुछ ज्यादा ही प्रेम का बरताव किया जो मनोरमा ने नानक के साथ किया था और तब कहा, ''अच्छा तो अब मैं भी तुम्हारा हो चुका, तुम भी जहाँ तक जल्द हो सके अपना वायदा पूरा करो।''

मनोरमा—मैं तैयार हूँ, अपने साथी लण्ठाधिराज को बिदा करो और मेरे साथ जमानिया के तिलिस्मी बाग की तरफ चलो।

नानक—वहाँ क्या है ?

मपोरमा—बलभद्रसिंह और इन्दिरा उसी में कैद हैं। पहले उन्हीं को छुड़ाकर तुम्हारे बाप को खुश करना उचित समझती हूँ।

नानक—हाँ यह राय बहुत अच्छी है, मैं अभी अपने साथी को समझा-बुझाकर बिदा करता हूँ।

इतना कहकर नानक अपने साथी के पास चला जो गाँजे का दम लगा रहा था। गनोरमा का हाल नमक-मिर्च लगाकर उससे कहा और समझा-बुझाकर उसी अड्डे पर जहाँ से आया था चले जाने के लिए राजी किया बल्कि उसे बिदा करके पुनः मनोरमा के पास चला आया।

मनोरमा—तुम्हारा साथी तो सहज ही में चला गया।

नानक—आखिर वह मेरे बाप का नौकर ही तो है, अतः जो कुछ मैं कहूँगा उसे मानना ही पड़ेगा। हाँ, तो अब तुम भी चलने के लिए तैयार हो जाओ।

मनोरमा—(खड़ी होकर) मैं तैयार हूँ, आओ।

नानक—ऐसे नहीं, मेरे बटुए में कुछ खाने की चीजें मौजूद हैं, लोटा-डोरी भी तैयार है, वह देखो सामने कुआँ भी है, अस्तु, कुछ खा-पीकर आत्मा को हरा कर लेना चाहिए, जिसमें सफर की तकलीफ मालूम न पड़े।

मनोरमा—जो आज्ञा।

नानक ने बटुए में से कुछ खाने को निकाला और कुएँ में से जल खींचकर मनोरमा के सामने रक्खा।

मनोरमा—पहले तुम खा लो, फिर तुम्हारा जूठा जो बचेगा उसे मैं खाऊँगी।

नानक—नहीं-नहीं, ऐसा क्या, तुम भी खाओ और मैं भी खाऊँ।

मनोरमा—ऐसा कदापि न होगा, अब मैं तुम्हारी स्त्री हो चुकी और सच्चे दिल से हो चुकी, फिर जैसा मेरा धर्म है वैसा ही करूँगी।

नानक ने बहुत कहा मगर मनोरमा ने कुछ भी न सुना। आखिर नानक को पहले खाना पड़ा। थोड़ा-सा खाकर नानक ने जो कुछ छोड़ दिया, मनोरमा उसी को खाकर चलने के लिए तैयार हो गई। नानक ने घोड़ा कसा और दोनों आदमी उसी पर सवार होकर जंगल ही जंगल पूरब की तरफ चल निकले। इस समय जिस राह से मनोरमा कहती थी नानक उसी राह से जाता था। शाम होते-होते ये दोनों उसी खँडहर के पास पहुँचे जिसमें हम पहले भूतनाथ और शेरसिंह का हाल लिख आए हैं, जहाँ राजा वीरेन्द्रसिंह को शिवदत्त ने घेर लिया था, जहाँ से शिवदत्त को रूहा ने चकमा देकर फँसाया था, या जिसका हाल ऊपर कई दफे लिखा जा चुका है।

मनोरमा—अब यहाँ ठहर जाना चाहिए!

नानक—क्यों?

मनोरमा—यह तो आपको मालूम हो ही चुका होगा कि इस खँडहर में से एक सुरंग जमानिया के तिलिस्मी बाग तक गई हुई है।

नानक—हाँ, इसका हाल मुझे अच्छी तरह मालूम हो चुका है। इसी सुरंग की राह से मायारानी या उसके मददगारों ने पहुँचकर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह के साथ और भी कई आदमियों को गिरफ्तार कर लिया था।

मनोरमा—तो अब मैं चाहती हूँ कि उसी राह से जमानिया वाले तिलिस्मी बाग के दूसरे दर्जे में पहुँचूँ और दोनों कैदियों को इस तरह निकाल बाहर करूँ कि किसी को किसी तरह का गुमान न होने पावे। मैं इस सुरंग का हाल अच्छी तरह जानती हूँ, इस राह से कई दफे आई और गई हूँ। इतना ही नहीं बल्कि इस सुरंग की राह से जाने में और भी एक बात का सुभीता है।

नानक—वह क्या?

मनोरमा—इस सुरंग में बहुत-सी चीजें ऐसी हैं जिन्हें हम लोग हजारों रुपये खर्चने और वर्षों परेशान होने पर भी नहीं पा सकते और वे चीजें हम लोगों के बड़े काम

की हैं, जैसे ऐयारी के काम में आने लायक तरह-तरह की रोगनी पोशाकें जो न तो पानी में भीगें और न आग में जलें, एक से एक बढ़ के मजबूत और हलके कमन्द, पचासों तरह के नकाब, तरह-तरह की दवाइयाँ, पचासों किस्म के अनमोल इत्र जो अब मयस्सर नहीं हो सकते, इनके अतिरिक्त ऐश व आराम की भी सैकड़ों चीजें तुमको दिखाई देंगी जिन्हें अपने साथ लेते चलेंगे, (धीरे से) और मायारानी का एक 'जवाहिरखाना' भी इस सुरंग में है।

नानक—वाह-वाह ! तब तो जरूर इसी सुरंग की राह चलना चाहिए। इससे बढ़कर 'एक पन्थ दो काज' हो ही नहीं सकता !

मनोरमा—और इन सब चीजों की बदौलत हम लोग अपनी सूरत भी अच्छी तरह बदल लेंगे और दो-चार हरबे भी ले लेंगे।

नानक—ठीक है, मैं इस राह से जाने के फायदों को अच्छी तरह समझ गया, मगर हरबों की हमें कुछ भी जरूरत नहीं है क्योंकि कमलिनी का दिया हुआ एक खंजर ही मेरे पास ऐसा है जिसके सामने हजारों लाखों बल्कि करोड़ों हरबे झख मारें !

मनोरमा—(आश्चर्य से) सो क्या ? वह कैसा खंजर है और कहाँ है ?

नानक—(खंजर दिखाकर) यह मेरे पास मौजूद है। जिस समय तुम इसके गुण सुनोगी तो आश्चर्य करोगी।

इतना कहकर नानक घोड़े से नीचे उतर पड़ा और सहारा देकर मनोरमा को भी नीचे उतारा। मनोरमा ने एक पेड़ के नीचे बैठ जाने की इच्छा प्रकट की और कहा कि घोड़े को छोड़ देना चाहिए क्योंकि इसकी अब हम लोगों को जरूरत नहीं रही।

नानक ने मनोरमा की बात मंजूर की अर्थात् घोड़े को छोड़ दिया और कुछ देर तक आराम लेने की नीयत से दोनों आदमी एक पेड़ के नीचे बैठ गये। मनोरमा ने तिलिस्मी खंजर का गुण पूछा और नानक ने शेखी के साथ बखान करना शुरू किया और अन्त में खंजर का कब्जा दबाकर बिजली की रोशनी भी पैदा कर मनोरमा को दिखाया। चमक से मनोरमा की आँखें चौंधिया गईं और उसने दोनों हाथों से अपना मुँह ढाँप लिया। जब वह चमक बन्द हो गई तो नानक के कहने से मनोरमा ने आँखें खोलीं और खंजर की तारीफ करने लगी।

थोड़ी देर तक आराम करने के बाद दोनों आदमी खँडहर के अन्दर गये और उसी मामूली रास्ते से जिसका हाल कई दफे लिखा जा चुका है उसी तहखाने के अन्दर गए जिसमें शेरसिंह रहा करते थे या जिसमें से इन्द्रजीत और आनन्दसिंह गायब हुए थे। यह तो पाठकों को मालूम ही है कि राजा वीरेन्द्रसिंह की सवारी आने के कारण खँडहर की अवस्था बहुत-कुछ बदल गई थी और अभी तक बदली हुई है मगर इस तहखाने की हालत में किसी तरह का फर्क नहीं पड़ा था।

हमारे पाठक भूले न होंगे कि इस तहखाने में उतरने के लिए जो सीढ़ियाँ थीं उनके नीचे एक छोटी-सी कोठरी थी जिसमें शेरसिंह अपना असबाब रक्खा करते थे और जिसमें से आनन्दसिंह, कमला और तारासिंह गायब हुए थे। मनोरमा की आज्ञानुसार नानक ने अपने ऐयारी के बटुए में से मोमबत्ती निकलकर जलाई और मनोरमा के पीछे-

पीछे उसी कोठरी में गया। यह कोठरी बहुत ही छोटी थी और इसके चारों तरफ दीवार बहुत साफ और संगीन थी। मनोरमा ने एक तरफ की दीवार पर हाथ रखकर कोई खटका या किसी पत्थर को दबाया जिसका हाल नानक को कुछ भी मालूम न हुआ मगर एक पत्थर की चट्टान भीतर की तरफ हटकर बगल में हो गई और अन्दर जाने के लिए रास्ता निकल आया। मनोरमा के पीछे-पीछे नानक उस कोठरी के अन्दर चला गया और इसके साथ ही वह पत्थर की सिल्ली बिना हाथ लगाये अपने ठिकाने चली गई तथा दरवाजा बन्द हो गया। मनोरमा से नानक ने उस दरवाजे को खोलने और बन्द करने की तरकीब पूछी और मनोरमा ने उसका भेद बता दिया बल्कि उस दरवाजे को एक दफे खोल के और बन्द करके भी दिखा दिया। इसके बाद दोनों आगे की तरफ बढ़े। इस समय जिस जगह ये दोनों थे, वह एक लम्बा-चौड़ा कमरा था, मगर उसमें किसी तरफ जाने के लिए कोई दरवाजा दिखाई नहीं देता था, हाँ एक तरफ दीवार में एक बहुत-बड़ी आलमारी जरूर बनी हुई थी और उसका पल्ला किसी खटके के दबाने से खुला करता था। मनोरमा ने उसके खोलने की तरकीब भी नानक को बताई और नानक ही के हाथ से उसका पल्ला भी खुलवाया। पल्ला खुलने पर मालूम हुआ कि यह भी एक दरवाजा है और इसी जगह से सुरंग में घुसना होता है। दोनों आदमी सुरंग के अन्दर रवाना हुए। यह सुरंग इस लायक थी कि तीन आदमी एक साथ मिलकर जा सकें।

लगभग पचास कदम जाने के बाद फिर एक कोठरी मिली जो पहली कोठरियों की बनिस्बत ज्यादा लम्बी-चौड़ी थी। इसमें चारों तरफ कई खुली आलमारियाँ थीं जो पचासों किस्म की चीजों से भरी हुई थीं। किसी में तरह-तरह के हरबे थे, किसी में ऐयारी का सामान, किसी में रंग-बिरंग की बनावटी मूँछें और नकाबें इत्यादि थीं और कई आलमारियाँ बोतलों और शीशियों से भरी हुई थीं। इन सामानों को देखकर नानक ने मनोरमा से कहा, "यह सब तो है, मगर उस जवाहिरखाने का भी कहीं पता-निशान है जिसका होना तुमने बयान किया था!"

मनोरमा—मैंने आपसे झूठ नहीं कहा था, वह जवाहिरखाना भी इसी सुरंग में मौजूद है।

नानक—मगर कहाँ है?

मनोरमा—इस सुरंग में और थोड़ी दूर जाने के बाद इसी तरह का एक कमरा पुनः मिलेगा, उसी कमरे में आप उन सब चीजों को देखेंगे। इस सुरंग में जमानिया पहुँचने तक इस तरह के ग्यारह अड्डे या कमरे मिलेंगे जिनमें करोड़ों रुपये की सम्पत्ति देखने में आवेगी।

नानक—(लालच के साथ) जबकि तुम्हें यहाँ का रास्ता मालूम है और ऐसी-ऐसी नादिर चीजें तुम्हारी जानी हुई हैं तो इन सभी को उठाकर अपने घर में क्यों नहीं ले जातीं?

मनोरमा—मायारानी की बदौलत मुझे किसी चीज की कमी नहीं है। रुपये-पैसे गहने जवाहिरात और दौलत से मेरी तबीयत भरी हुई है। इन सब चीजों की मैं कोई हकीकत नहीं समझती।

नानक—बेशक ऐसा ही है !

मनोरमा—(बोतल और शीशियों से भरी हुई एक आलमारी की तरफ इशारा करके) देखो, ये बोतलें ऐशोआराम की जान खुशबूदार चीजों से भरी हुई हैं।

इतना कह मनोरमा फुर्ती के साथ उस आलमारी के पास चली गई और एक बोतल उठाकर उसका मुँह खोल और खूब सूँघकर बोली, "अहा, सिवाय मायारानी के और तिलिस्म के राजा के ऐसी खुशबूदार चीजें और किसे मिल सकती हैं ?"

इतना कहकर वह बोतल उसी जगह मुँह बन्द करके रख दी और दूसरी बोतल उठाकर नानक के पास ले चली, मगर वह बोतल उसके हाथ से छूटकर जमीन पर गिर पड़ी या शायद उसने जान-बूझकर ही गिरा दी। बोतल गिरने के साथ ही टूट गई और उसमें का खुशबूदार तेल चारों तरफ जमीन पर फैल गया। मनोरमा बहुत रंज और अफसोस करने लगी और उसकी मुरौवत से नानक ने भी रंज दिखाया। उस बोतल में जो तेल था वह बहुत ही खुशबूदार और इतना तेज था कि गिरने के साथ ही उसकी खुशबू तमाम कमरे में फैल गई गई और नानक उस खुशबू की तारीफ करने लगा।

निःसन्देह मनोरमा ने नानक को पूरा उल्लू बनाया। पहले जो बोतल खोल के मनोरमा ने सूँघी थी उसमें भी एक प्रकार की खूशबूदार चीज थी मगर उसमें यह असर था कि उसके सूँघने के बाद दो घण्टे तक किसी तरह की बेहोशी का असर सूँघने वाले पर नहीं हो सकता था, और जो दूसरी बोतल उसने हाथ से गिरा दी थी उसमें बहुत तेज बेहोशी का असर था जिसने नानक को तो चौपट ही कर दिया। वह उस खुशबू की तारीफ करता- करता ही जमीन पर लम्बा हो गया, मगर मनोरमा पर उस दवा का कुछ भी असर न हुआ क्योंकि वह पहले ही से एक दूसरी दवा सूँघकर अपने दिमाग का बन्दोबस्त कर चुकी थी। नानक के हाथ से मनोरमा ने मोमबत्ती ले ली और एक किनारे जमीन पर जमा दी।

जब नानक अच्छी तरह बेहोश हो गया तो मनोरमा ने उसके हाथ से अपनी अँगूठी उतार ली और फिर तिलिस्मी खंजर के जोड़ की अँगूठी भी उतार लेने के बाद तिलिस्मी खंजर भी अपने कब्जे में कर लिया और इसके बाद एक लम्बी साँस लेकर कहा, "अब कोई हर्ज की बात नहीं है !"

थोड़ी देर तक कुछ सोचने-विचारने के बाद मनोरमा ने एक हाथ में मोमबत्ती ली और दूसरे हाथ से नानक का पैर पकड़ घसीटती हुई बाहर वाली कोठरी में ले आई। जिसमें से निकली थी उस कोठरी का दरवाजा बन्द कर दिया और साथ ही इसके एक तरकीब ऐसी और भी कर दी कि नानक पुनः उस दरवाजे को खोल न सके।

इन कामों से छुट्टी पाने के बाद मनोरमा ने नानक की मुश्कें बाँधीं और हर तरह से बेकाबू करने के बाद लखलखा सुँघाकर होश में लाने का उद्योग करने लगी। थोड़ी ही देर बाद नानक होश में आ गया और अपने को हर तरह से मजबूर और सामने हाथ में उसी का जूता लिए मनोरमा को मौजूद पाया !

नानक—(आश्चर्य से) यह क्या ! तुमने मुझे धोखा दिया !

मनोरमा—(हँसकर) जी नहीं, यह तो दिल्लगी की जा रही है ! क्या तुम नहीं

जानते कि ब्याह-शादी में लोग दिल्लगी करते हैं ? मेरा कोई ऐसा नातेदार तो है नहीं जो तुमसे दिल्लगी करके ब्याह की रस्म पूरी करे। इसलिए मैं स्वयं ही इस रस्म को मुझ पूरा करना चाहती हूँ।

इतना कहकर मनोरमा तेजी के साथ ब्याह की रस्में पूरी करने लगी। जब नानक सिर की खुजलाहट से दुखी हो गया तो हाथ जोड़कर बोला, "ईश्वर के लिए अब पर दया करो, मैं ऐसी शादी से बाज आया, मुझसे बड़ी भूल हुई।"

मनोरमा—(रुककर) नहीं, घबराने की कोई बात नहीं है। मैं तुम्हारे साथ किसी तरह की बुराई न करूँगी, बल्कि भलाई करूँगी। मैं देखती हूँ कि तुम्हारे हम-जोली लोग सच्ची दिल्लगी से तुम्हें बड़ा दुख देते हैं और तुम्हारी स्त्री भी यद्यपि तुम्हारे ही नातेदारों और मित्रों को प्रसन्न करके गहने, कपड़े तथा सौगात से तुम्हारा घर भरती है, मगर तुम्हारी नाक का कुछ भी मुलाहिजा नहीं करती, अतएव तुम्हारी नाक पर हरदम शामत आती ही रहती है, इसलिए मैं दया करके तुम्हारी नाक ही को जड़ से उड़ा देना पसन्द करती हूँ जिसमें आइंदा के लिए तुम्हें कोई कुछ कह न सके। हाँ, इतना ही नहीं, बल्कि तुम्हारे साथ मैं एक नेकी और भी करना चाहती हूँ जिसका ब्यौरा अभी कह देना उचित नहीं समझते।

नानक—क्षमा करो, क्षमा करो, मैं हाथ जोड़कर कहता हूँ कि मुझे माफ करो। मैं कसम खाकर कहता हूँ कि आज से मैं अपने को तुम्हारा गुलाम समझूंगा और जो कुछ तुम कहोगी वही करूँगा।

मनोरमा—(हँसकर) अच्छा तो आज से तू मेरा गुलाम हुआ!

नानक—बेशक मैं आज तुम्हारा गुलाम हुआ, असली क्षत्री होऊँगा तो तुम्हारे हुक्म से मुँह न मोड़ूँगा।

मनोरमा—(हँसती हुई) इसी में तो मुझको शक है कि तेरी जात क्या है। अतः कोई चिन्ता नहीं, मैं तुझे हुक्म देती हूँ कि दो महीने तक अपने घर मत जाना और इस बीच में अपने बाप या किसी दोस्त, नातेदार से भी न मिलना, इसके बाद जो इच्छा हो करना, मैं कुछ न बोलूंगी, मगर मुझसे और मेरे पक्षपातियों से दुश्मनी का इरादा कभी न करना।

नानक—ऐसा ही होगा।

मनोरमा—अगर मेरी आज्ञा के विरुद्ध कोई काम करेगा तो तुझे जान से मार डालूंगी, इसे खूब याद रखना।

नानक—मैं खूब याद रखूंगा और तुम्हारी आज्ञा के विरुद्ध कोई काम न करूँगा, परन्तु कृपा करके मेरा खंजर तो मुझे दे दो!

मनोरमा—(क्रोध से) अब यह खंजर तुझे नहीं मिल सकता। खबरदार, इसके माँगने या लेने की इच्छा न करना! अच्छा अब मैं जाती हूँ।

इतना कहकर मनोरमा ने तिलिस्मी खंजर नानक के बदन से लगा दिया और जब वह बेहोश हो गया तो उसके हाथ-पैर खोल दिये, जलती हुई मोमबत्ती एक कोने में खड़ी कर दी और वहाँ से रवाना होकर खँडहर के बाहर निकल आई। घोड़े को अभी

तक खँडहर के पास चरते देखा, उसके पास चली गयी, अयाल पर हाथ फेरा, दो-चार दफे थपथपाया और फिर सवार होकर पश्चिम की तरफ रवाना हो गई।

इधर नानक भी थोड़ी देर बाद होश में आया। मोमबत्ती एक किनारे जल रही थी, उसे उठा लिया और अपनी किस्मत को धिक्कार देता हुआ खँडहर के बाहर होकर डरता और काँपता हुआ एक तरफ को चला गया।

10

कुँअर इन्द्रजीतसिंह, आनन्दसिंह और राजा गोपालसिंह बात कर ही रहे थे कि वही औरत चमेली की टट्टियों में फिर दिखाई दी और इन्द्रजीतसिंह ने चौंककर कहा, "देखिए, वह फिर निकली !"

राजा गोपालसिंह ने बड़े गौर से उस तरफ देखा और यह कहते हुए उस तरफ रवाना हुए कि "आप दोनों भाई इसी जगह बैठे रहिये, मैं इसकी खबर लेने जाता हूँ।"

जब तक राजा गोपालसिंह चमेली की टट्टी के पास पहुँचे, तब तक वह औरत पुनः अन्तर्धान हो गयी। गोपालसिंह थोड़ी देर तक उन्हीं पेड़ों में घूमते-फिरते रहे इसके बाद इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह के पास लौट आए।

इन्द्रजीतसिंह—कहिये, क्या हुआ ?

गोपालसिंह—हमारे पहुँचने के पहले ही वह गायब हो गई, गायब क्या हो गई बस, उसी दर्जे में चली गई जिसमें देवमन्दिर है। मेरा इरादा तो हुआ कि उसका पीछा करूँ, मगर यह सोचकर लौट आया कि उसका पीछा करके उसे गिरफ्तार करना घण्टे दो घण्टे का काम नहीं है बल्कि दो-चार पहर या दो-एक दिन का काम है, क्योंकि देव-मन्दिर वाले दर्जे का बहुत बड़ा विस्तार है तथा छिप रहने योग्य स्थानों की भी वहाँ कमी नहीं है, और मुझे इस समय इतनी फुरसत नहीं है। इसका खुलासा हाल तो इस समय में आप लोगों से न कहूँगा। हाँ, इतना जरूर कहूँगा कि जिस समय मैं अपनी तिलिस्मी किताब लेने गया था और उसके न मिलने से दुःखी होकर लौटना चाहता था, उसी समय एक और भी दुःखदाई खबर सुनने में आई जिसके सबब से मुझे कुछ दिन के लिए जमानिया तथा आप दोनों भाइयों का साथ छोड़ना आवश्यक हो गया है और दो घण्टे के लिए भी यहाँ रहना मैं पसन्द नहीं करता। फिर भी कोई चिन्ता की बात नहीं है, आप लोग शौक से इस तिलिस्म के जिस हिस्से को तोड़ सकें तोड़ें, मगर इस औरत का, जो अभी दिखाई दी थी, बहुत ध्यान रखें। मेरा दिल यही कहता है कि मेरी तिलिस्मी किताब इसी औरत ने चुराई है। क्योंकि यदि ऐसा न होता तो यह यहाँ तक कदापि न पहुँच सकती।

इन्द्रजीतसिंह—यदि ऐसा है तो कह सकते हैं कि वह हम लोगों के साथ भी दगा करना चाहती है।

गोपालसिंह—निःसन्देह ऐसा ही है, परन्तु यदि आप लोग उसकी तरफ से सावधान रहेंगे तो वह आप लोगों का कुछ भी न बिगाड़ सकेगी, साथ ही इसके यदि आप उद्योग में लगे रहेंगे तो वह किताब भी जो उसने चुराई है, हाथ लग जायगी।

इन्द्रजीतसिंह—जो कुछ आपने आज्ञा दी है मैं उस पर विशेष ध्यान रखूंगा मगर मालूम होता है कि आपने कोई बहुत दुःखदाई खबर सुनी है, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो इस अवस्था में और अपनी तिलिस्मी किताब खो जाने की तरफ ध्यान न देकर आप यहाँ से जाने का इरादा न करते !

आनन्दसिंह—और जब आप कह ही चुके हैं कि उसका खुलासा हाल न कहेंगे तो हम लोग पूछ भी नहीं सकते ।

गोपालसिंह—निःसन्देह ऐसा ही है, मगर कोई चिन्ता की बात नहीं, आप लोग बुद्धिमान हैं और जैसा उचित समझें करें, हाँ, एक बात मुझे और भी कहनी है !

इन्द्रजीतसिंह—वह क्या ?

गोपालसिंह—(एक लपेटा हुआ कागज लालटेन के सामने रखकर) जब मैं उस औरत के पीछे चमेली की टट्टियों में गया तो वह औरत तो गायब हो गई, मगर उसी जगह यह लपेटा हुआ कागज ठीक दरवाजे के ऊपर ही पड़ा हुआ मुझे मिला। पढ़ो तो सही, इसमें क्या लिखा है ।

इन्द्रजीतसिंह ने उस कागज को खोलकर पढ़ा, यह लिखा हुआ था—

"यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि न तो आप लोग मुझे जानते हैं और न मैं आप लोगों को जानती हूँ, इसके अतिरिक्त जब तक मुझे इस बात का निश्चय न हो जाय कि आप लोग मेरे साथ किसी तरह की बुराई न करेंगे, तब तक मैं आप लोगों को अपना परिचय भी नहीं दे सकती । हाँ, इतना अवश्य कह सकती हूँ कि मैं बहुत दिनों से कैदियों की तरह इस तिलिस्म में पड़ी हूँ । यदि आप लोग दयावान और सज्जन हैं तो मुझे इस कैद से अवश्य छुड़ावेंगे ।

—कोई दुःखिनी ।'

गोपालसिंह—(आश्चर्य से) यह तो एक दूसरी ही बात निकली !

इन्द्रजीतसिंह—ठीक है, मगर इसके लिखने पर हम लोग विश्वास ही क्यों कर सकते हैं !

गोपालसिंह—आप सच कहते हैं, हम लोगों को इसके लिखने वाले पर यकायक विश्वास न करना चाहिए । खैर, मैं जाता हूँ, आप जो उचित समझेंगे करेंगे । आइये, इस समय हम लोग एक साथ बैठ के भोजन तो कर लें, फिर क्या जाने कब और क्यों-कर मुलाकात हो ।

इतना कहकर राजा गोपालसिंह ने वह चंगेर जो अपने साथ लाये थे और जिसमें खाने की अच्छी-अच्छी चीजें थीं, आगे रखी और तीनों भाई एक साथ भोजन और बीच-बीच में बातचीत भी करने लगे । जब खाने से छुट्टी मिली तो तीनों भाइयों ने नहर में से जल पीया और हाथ-मुँह धोकर निश्चिन्त हुए, इसके बाद कुँअर इन्द्रजीतसिंह और

आनन्दसिंह को बहुत-कुछ समझा-बुझाकर और वहाँ से देवमन्दिर में जाने का रास्ता बताकर राजा गोपालसिंह वहाँ से रवाना हो गये।

11

राजा गोपालसिंह के चले जाने के बाद दोनों कुमारों ने बातचीत करते-करते ही रात बिता दी और सुबह को दोनों भाई जरूरी कामों से छुट्टी पाकर फिर उसी बाजे वाले कमरे की तरफ रवाना हुए। जिस राह से इस बाग में आये थे, वह दरवाजा अभी तक खुला हुआ था, उसी राह से होते हुए दोनों तिलिस्मी बाजे के पास पहुँचे। इस समय आनन्दसिंह अपने तिलिस्मी खंजर से रोशनी कर रहे थे।

दोनों भाइयों की राय हुई कि इस बाजे में जो भी कुछ बातें भरी हुई हैं, उन्हें एक दफे अच्छी तरह सुनकर याद कर लेना चाहिए, फिर जैसा होगा देखा जायगा, आखिर ऐसा ही किया गया। बाजे की ताली उनके हाथ लग ही चुकी थी और ताली लगाने की तरकीब भी उस तख्ती पर लिखी हुई थी जो ताली के साथ मिली थी। अब इन्द्रजीतसिंह ने बाजे में ताली लगाई और दोनों भाई उसकी आवाज गौर से सुनने लगे। जब बाजे का बोलना बन्द हुआ तो इन्द्रजीतसिंह ने आनन्दसिंह से कहा, "मैं बाजे में ताली लगाता हूँ और तिलिस्मी खंजर से रोशनी भी करता हूँ और तुम इस बाजे में से जो कुछ आवाज निकले, उसे संक्षेप में लिखते चले जाओ।" आनन्दसिंह ने इसे कबूल किया और उसी किताब में जिसमें पहले इन्द्रजीतसिंह इस बाजे की कुछ आवाज लिख चुके थे लिखने लगे। पहले वह आवाज लिख गये जो अभी बाजे में से निकली थी। इसके बाद इन्द्रजीतसिंह ने इस बाजे का एक खटका दबाया और फिर ताली देकर आवाज सुनने लगे तथा आनन्दसिंह उसे लिखने लगे।

इस बाजे में जितनी आवाजें भरी हुई थीं, उनका सुनना और लिखना दो-चार घण्टे का काम न था, बल्कि कई दिन काम था, क्योंकि बाजा बहुत धीरे-धीरे चल कर आवाज देता था और जो बात कुमार की समझ में न आती थी, उसे दोहरा कर सुनना पड़ता था, अतः आज चार घण्टे तक दोनों कुमार उस बाजे की आवाज सुनने और लिखने में लगे रहे, इसके बाद फिर उसी बाग में चले आये जिसका जिक्र ऊपर आ चुका है। बाकी का दिन और रात उसी बाग में बिताया और दूसरे दिन सवेरे जरूरी कामों से छुट्टी पाकर फिर तहखाने में घुसे तथा बाजे वाले कमरे में आकर फिर बाजे की आवाज सुनने और लिखने के काम में लगे। इसी तरह दोनों कुमारों को बाजे की आवाज सुनने और लिखने के काम में कई दिन लग गये और इस बीच दोनों कुमारों ने तीन दफे उस औरत को देखा, जिसका हाल पहले लिखा जा चुका है और जिसकी लिखी एक चिट्ठी राजा गोपालसिंह के हाथ लगी थी। उस औरत के विषय में जो बातें लिखने योग्य हुई हैं, उन्हें हम यहाँ पर लिखते हैं।

राजा गोपालसिंह के जाने के बाद पहली दफे जब वह औरत दिखाई दी, उस समय दोनों भाई नहर के किनारे बैठे बातचीत कर रहे थे। समय संध्या का था और बाग की हरएक चीज साफ-साफ दिखाई दे रही थी। यकायक वह औरत उसी चमेली की झाड़ी में से निकलती दिखाई दी। वह दोनों कुमारों की तरफ तो नहीं आई। मगर उन्हें दिखाकर एक कपड़े का टुकड़ा जमीन पर रखने के बाद पुनः चमेली की झाड़ी में घुसकर गाय हो गयी।

इन्द्रजीतसिंह की आज्ञा पाकर आनन्दसिंह वहाँ गये और उस टुकड़े को उठा लाए, उस पर किसी तरह के रंग से यह लिखा हुआ था—

"सत्पुरुषों के आगमन से दीन-दुखिया प्रसन्न होते हैं और सोचते हैं कि अब हमारा भी कुछ न कुछ भला होगा! मुझ दुखिया को भी इस तिलिस्म में सत्पुरुषों की बाट जोहते और ईश्वर से प्रार्थना करते बहुत दिन बीत गये, परन्तु अब आप लोगों के आने से भलाई की आशा जान पड़ने लगी है। यद्यपि मेरा दिल गवाही देता है कि आप लोगों के हाथ से सिवाय भलाई के मेरी बुराई नहीं हो सकती, तथापि इस कारण से कि बिना समझे दोस्त-दुश्मन का निश्चय कर लेना नीति के विरुद्ध है, मैं आपकी सेवा में उपस्थित न हुई। अब आशा है कि आप अनुग्रहपूर्वक अपना परिचय देकर मेरा भ्रम दूर करेंगे।

—इन्दिरा।"

इस पत्र के पढ़ने से दोनों कुमारों को बड़ा ताज्जुब हुआ और इन्द्रजीतसिंह की आज्ञानुसार आनन्दसिंह ने उसके पत्र का यह उत्तर लिखा—

"हम लोगों की तरफ से किसी तरह का खुटका न रखो। हमलोग राजा वीरेन्द्रसिंह के लड़के हैं और इस तिलिस्म को तोड़ने के लिए यहाँ आये हैं। तुम बेखटके अपना हाल हमसे कहो; हम लोग निःसन्देह तुम्हारा दुःख दूर करेंगे।"

यह चिट्ठी चमेली की झाड़ी में उसी जगह हिफाजत के साथ रख दी गई जहाँ से उस औरत की चिट्ठी मिली थी। दो दिन तक वह औरत दिखाई न दी, मगर तीसरे दिन जब दोनों कुमार बाजे वाले तहखाने में से लौटे और उस चमेली की टट्टी के पासी गये तो ढूँढ़ने पर आनन्दसिंह को अपनी लिखी चिट्ठी का जवाब मिला। यह जवाब भ एक छोटे से कपड़े के टुकड़े पर लिखा हुआ था, जिसे आनन्दसिंह ने पढ़ा। मतलब यह था—

"यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप राजा वीरेन्द्रसिंह के लड़के हैं, जिन्हें मैं बहुत अच्छी तरह जानती हूँ, इसलिए आपकी सेवा में बेखटके उपस्थित हो सकती हूँ। मगर राजा गोपालसिंह से डरती हूँ जो आपके पास आया करते हैं।

—इन्दिरा।"

पुनः कुँअर इन्द्रजीतसिंह की तरफ से यह जवाब लिखा गया—

"हम प्रतिज्ञा करते हैं कि राजा गोपालसिंह भी तुम्हें किसी तरह का कष्ट न देंगे।"

यह चिट्ठी भी उसी मामूली ठिकाने पर रख दी गई और फिर दो रोज तक इन्दिरा का कुछ हाल मालूम न हुआ। तीसरे दिन संध्या होने से पहले जब कुछ-कुछ दिन बाकी था और दोनों कुमार उसी बाग में नहर के किनारे बैठे बातचीत कर रहे थे यकायक उसी चमेली की झाड़ी में से हाथ में लालटेन लिए निकलती हुई इन्दिरा दिखाई पड़ी। वह सीधे उस तरफ रवाना हुई जहाँ दोनों कुमार नहर के किनारे बैठे हुए थे। जब उनके पास पहुँची तो लालटेन जमीन पर रखकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर सामने खड़ी हो गई। इसकी सूरत-शक्ल के बारे में हमें जो कुछ लिखना था ऊपर लिख चुके हैं, यहाँ पर पुनः लिखने की आवश्यकता नहीं है, हाँ, इतना जरूर कहेंगे कि इस समय इसकी पोशाक में फर्क था। इन्द्रजीतसिंह ने बड़े गौर से इसे देखा और कहा, "बैठ जाओ और निडर होकर अपना हाल कहो।"

इन्दिरा—(बैठकर)इसीलिए तो मैं सेवा में उपस्थित हुई हूँ कि अपना आश्चर्य-जनक हाल आपसे कहूँ। आप प्रतापी राजा वीरेन्द्रसिंह के लड़के हैं और इस योग्य हैं कि हमारा मुकद्दमा सुनें, इन्साफ करें, दुष्टों को उचित दण्ड दें, और हम लोगों को दुःख के समुद्र से निकालकर बाहर करें।

इन्द्रजीतसिंह—(आश्चर्य से) 'हम लोगों' ! क्या तुम यहाँ अकेली नहीं हो ? क्या तुम्हारे साथ कोई और भी इस तिलिस्म में दुःख भोग रहा है ?

इन्दिरा—जी हाँ, मेरी माँ भी इस तिलिस्म के अन्दर बुरी अवस्था में पड़ी है मैं तो चलने-फिरने योग्य भी हूँ परन्तु वह बेचारी तो हर तरह से लाचार है। आ मेरा किस्सा सुनेंगे तो आश्चर्य करेंगे और निःसन्देह आपको हम लोगों पर दया आयेगी।

इन्द्रजीतसिंह—हाँ-हाँ, हम सुनने के लिए तैयार हैं, कहो और शीघ्र कहो।

इन्दिरा अपना किस्सा शुरू किया ही चाहती थी कि उसकी निगाह यकायक राजा गोपालसिंह पर जा पड़ी जो उसके सामने और दोनों कुमारों के पीछे की तरफ से हाथ में लालटेन लिए चले आ रहे थे। वह चौंककर उठ खड़ी हुई और उसी समय कुँअर इन्द्रजीतसिंह तथा आनन्दसिंह ने भी घूमकर राजा गोपालसिंह को देखा। जब राजा साहब दोनों कुमारों के पास पहुँचे तो इन्दिरा ने प्रणाम किया और हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह का चेहरा खुशी से दमक रहा था और वे हर तरह से प्रसन्न मालूम होते थे।

इन्द्रजीतसिंह—(गोपालसिंह से) आपने तो कई दिन लगा दिए।

गोपालसिंह—हाँ, एक ऐसा ही मामला आ पड़ा था कि जिसका पूरा पता लगाये बिना यहाँ पर न आ सका, पर आज मैं अपने पेट में ऐसी-ऐसी खबरें भर के लाया हूँ कि जिन्हें सुनकर आप लोग बहुत ही प्रसन्न होंगे और साथ ही इसके आश्चर्य भी करेंगे। मैं सब हाल आपसे कहूँगा मगर (इन्दिरा की तरफ इशारा करके) इस लड़की का हाल सुन लेने के बाद। (अच्छी तरह देखकर)निःसन्देह इसकी सूरत-शक्ल उस पुतली की ही तरह है।

आनन्दसिंह—कहिए भाईजी, अब तो मैं सच्चा ठहरा न !

गोपालसिंह—बेशक, तो क्या इसने अपना हाल आप लोगों से कहा ?

इन्द्रजीतसिंह—जी, यह अपना हाल कहा ही चाहती थी कि आप दिखाई पड़ गये। यह यकायक हम लोगों के पास नहीं आई, बल्कि पत्र द्वारा इसने पहले मुझसे प्रतिज्ञा करा ली कि हम लोग इसका दुःख दूर करेंगे और आप (राजा गोपालसिंह)भी इस पर खफा न होंगे।

गोपालसिंह—(ताज्जुब से)मैं इस पर क्यों खफा होने लगा! (इन्दिरा से)क्यों जी, तुम्हें मुझसे डर क्यों पैदा हुआ?

इन्दिरा—इसलिए कि मेरा किस्सा आपके किस्से से बहुत सम्बन्ध रखता है, और हाँ इतना भी मैं इसी समय कह देना उचित समझती हूँ कि मेरा चेहरा जिसे आप लोग देख रहे हैं असली नहीं है बल्कि बनावटी है। यदि आज्ञा हो तो इसी नहर के जल से मैं मुँह धो लूँ, तब आश्चर्य नहीं कि आप मुझे पहचान लें।

गोपालसिंह—(ताज्जुब से) क्या मैं तुम्हें पहचान लूंगा?

इन्दिरा—यदि ऐसा हो तो आश्चर्य नहीं।

गोपालसिंह—अच्छा, तुम अपना मुँह धो डालो।

इतना कहकर राजा गोपालसिंह लालटेन जमीन पर रखकर बैठ गए और कुँअर इन्द्रजीतसिंह तथा आनन्दसिंह को भी बैठने के लिए कहा। जब इन्दिरा अपना चेहरा साफ करने के लिए नहर के किनारे चलकर कुछ आगे बढ़ गई, तब इन तीनों में यों बातचीत होने लगी—

इन्द्रजीतसिंह—हाँ, यह तो कहिए, आप क्या खबर लाए हैं?

गोपालसिंह—वह किस्सा बहुत बड़ा है, पहले इस लड़की का हाल सुन लें तब कहें। हाँ, इसने अपना नाम क्या बताया था?

इन्द्रजीतसिंह—इन्दिरा।

गोपालसिंह—(चौंककर) इन्दिरा!

इन्द्रजीतसिंह—जी हाँ।

गोपालसिंह—(सोचते हुए, धीरे से) कौन-सी इन्दिरा? वह इन्दिरा तो नहीं मालूम पड़ती, कोई दूसरी होगी, मगर शायद वही हो, हाँ वह तो कह चुकी है कि मेरी सूरत बनावटी है, आश्चर्य नहीं कि चेहरा साफ करने पर वही निकले, अगर वही हो तो बहुत अच्छा है।

इन्द्रजीतसिंह—खैर, वह आती ही है, सब हाल मालूम हो जायेगा जब तक अपनी अनूठी खबरों में से दो-एक सुनाइये।

गोपालसिंह—यहाँ से जाने के बाद मुझे रोहतासगढ़ का पूरा-पूरा हाल मालूम हुआ है क्योंकि आजकल राजा वीरेन्द्रसिंह, तेजसिंह, देवीसिंह, भैरोंसिंह, तारासिंह, किशोरी, कामिनी, कमलिनी, लाड़िली और मेरी स्त्री लक्ष्मीदेवी इत्यादि सब कोई वहाँ ही जुटे हुए हैं और अजीबोगरीब मुकदमा पेश है।

इन्द्रजीतसिंह—(चौंककर) लक्ष्मीदेवी! क्या उनका पता लग गया?

गोपालसिंह—हाँ, लक्ष्मीदेवी वही तारा निकली जो कमलिनी के यहाँ उसकी सखी बनके रहती थी और जिसे आप भी जानते हैं।

इन्द्रजीतसिंह—(आश्चर्य से) वह लक्ष्मीदेवी थीं ?

गोपालसिंह—हाँ, वह लक्ष्मीदेवी ही थी जो बहुत दिनों से अपने को छिपाये हुए दुश्मनों से बदला लेने का मौका ढूंढ़ रही थी और समय पाकर अनूठे ढंग से यकायक प्रकट हो गई। उसका किस्सा भी बड़ा ही अनूठा है।

आनन्दसिंह—तो क्या आप रोहतासगढ़ गये थे ?

गोपालसिंह—नहीं।

इन्द्रजीतसिंह—सो क्यों ? इतना सब हाल सुनने पर भी आप लक्ष्मीदेवी को देखने के लिए वहाँ क्यों नहीं गये ?

गोपालसिंह—वहाँ न जाने का सबब भी बतावेंगे।

इन्द्रदेजीतसिंह—खैर, यह बताइये कि लक्ष्मीदेवी यकायक किस अनूठे ढंग से प्रकट हो गईं और रोहतासगढ़ में कौन-सा अजीबोगरीब मुकदमा पेश है ?

गोपालसिंह—मैं सब हाल आपसे कहूंगा, देखिए वह इन्दिरा आ रही है, पर कोई चिन्ता नहीं, अगर यह वही इन्दिरा है जो मैं सोचे हुए हूं, तो उसके सामने भी सब हाल बेखटके कह दूंगा।

इतने ही में अपना चेहरा साफ करके इन्दिरा भी वहाँ आ पहुंची। चेहरा धोने और साफ करने से उसकी खूबसूरती में किसी तरह की कमी नहीं आई थी बल्कि वह पहले से ज्यादा खूबसूरत मालूम पड़ती थी, हाँ अगर कुछ फर्क पड़ा था तो केवल इतना ही कि ब़निस्बत पहले के अब वह कम उम्र की मालूम होती थी।

इन्दिरा के पास आते ही और उसकी सूरत देखते ही गोपालसिंह झट उठ खड़े हुए और उसका हाथ पकड़कर बोले, "हैं इन्दिरा ! बेशक तू वही इन्दिरा है जिसके होने की मैं आशा करता था। यद्यपि कई वर्षों के बाद आज किस्मत ने तेरी सूरत दिखाई है और जब मैंने आखिरी मर्तबे तेरी सूरत देखी थी तब तू निरी लड़की थी, मगर फिर भी आज मैं तुझे पहचाने बिना नहीं रह सकता। तू मुझसे डर मत और अपने दिल में किसी तरह खुटका भी मत ला, मुझे खूब मालूम हो गया है कि मेरे मामले में तू बिलकुल बेकसूर है। मैं तुझे धर्म की लड़की समझता हूँ और समझूंगा, अब तू मेरे सामने बैठ जा और अपना अनूठा किस्सा कह ! हाँ, पहले यह तो बता कि तेरी माँ कहाँ है ? कैद से छूटने पर मैंने उसकी बहुत खोज की मगर कुछ भी पता न लगा। निःसन्देह तेरा किस्सा बड़ा ही अनूठा होगा।

इन्दिरा—(बैठने के बाद आँसू से भरी हुई आँखों को आँचल से पोंछती हुई) मेरी माँ बेचारी भी इसी तिलिस्म में कैद है !

गोपालसिंह—(ताज्जुब से) इसी तिलिस्म में कैद है ?

इन्दिरा—जी हाँ, इसी तिलिस्म में कैद है। बड़ी कठिनाइयों से उसका पता लगाती हुई मैं यहाँ तक पहुँची। अगर मैं यहाँ तक पहुँचकर उससे न मिलती तो निःसन्देह वह अब तक मर गई होती। मगर न तो मैं उसे कैद से छुड़ा सकती हूँ और न स्वयं इस तिलिस्म के बाहर ही निकल सकती हूँ। लगभग दस-पन्द्रह दिन हुए होंगे कि अकस्मात् एक किताब मेरे हाथ लग गई जिसके पढ़ने से इस तिलिस्म का कुछ-कुछ हाल मुझे मालूम

हो गया हैं और मैं यहाँ घूमने-फिरने लायक भी हो गई हूँ, मगर इस तिलिस्म के बाहर नहीं निकल सकती। क्या कहूँ, उस किताब का मतलब पूरा-पूरा समझ में नहीं आता, यदि मैं उसे अच्छी तरह समझ सकती तो निःसन्देह यहाँ से बाहर जा सकती और आश्चर्य नहीं कि अपनी माँ को छुड़ा लेती।

गोपालसिंह—यह किताब कौन-सी है और कहाँ है ?

इन्दिरा—(कपड़े के अन्दर से एक छोटी-सी किताब निकालकर और गोपालसिंह के हाथ में देकर)लीजिए, यही है।

यह किताब लम्बाई-चौड़ाई में बहुत छोटी थी और उसके अक्षर भी बड़े ही महीन थे, मगर इसे देखते ही गोपालसिंह का चेहरा खुशी से दमक उठा और उन्होंने इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह की तरफ देखकर कहा, "यही मेरी वह किताब है जो खो गई थी। (किताब चूमकर) आह, इसके खो जाने से तो मैं अधमरा-सा हो गया था ! (इन्दिरा से) यह तेरे हाथ कैसे लग गई ?"

इन्दिरा—इसका हाल भी बड़ा विचित्र है, अपना किस्सा जब मैं कहूँगी तो उसी के बीच में वह भी आ जायेगा।

इन्द्रजीतसिंह—(गोपालसिंह से)मालूम होता है कि इन्दिरा का किस्सा बहुत बड़ा है, इसलिए आप पहले रोहतासगढ़ का हाल सुना दीजिये तो एक तरफ से दिलजमई हो जाये।

कमलिनी के मकान की तबाही, किशोरी, कामिनी और तारा की तकलीफ, नकली बलभद्रसिंह के कारण भूतनाथ की परेशानी, लक्ष्मीदेवी, दारोगा और शेरअलीखाँ का रोहतासगढ़ में गिरफ्तार होना, राजा वीरेन्द्रसिंह का वहाँ पहुँचना, भूतनाथ के मुकदमे की पेशी, कृष्णजिन्न का पहुँचकर इन्दिरा वाले कलमदान का पेश करना और असली बलभद्रसिंह का पता लगाने के लिए भूतनाथ को छुट्टी दिला देने इत्यादि जो कुछ बातें हम ऊपर लिख आए हैं, वह सब हाल राजा गोपालसिंह ने इन्दिरा के सामने ही दोनों कुमारों से बयान किया और सभी ने बड़े गौर से सुना।

इन्दिरा—बड़े आश्चर्य की बात है कि वह कलमदान जिस पर मेरा नाम लिखा हुआ था कृष्ण जिन्न के हाथ क्योंकर लगा ! हाँ, उस कलमदान का हमारे कब्जे से निकल जाना बहुत ही बुरा हुआ। यदि आज वह मेरे पास होता तो मैं बात-की-बात में भूतनाथ के मुकद्दमे का फैसला कर देती, मगर अब क्या हो सकता है !

गोपालसिंह—इस समय वह कलमदान राजा वीरेन्द्रसिंह के कब्जे में है इसलिए उसका तुम्हारे हाथ लगना कोई बड़ी बात नहीं है।

इन्दिरा—ठीक है, मगर उन चीजों का मिलना तो अब कठिन होगा जो उसके अन्दर थीं और उन्हीं चीजों का मिलना सबसे ज्यादा जरूरी था।

गोपालसिंह—ताज्जुब नहीं कि वे चीजें भी कृष्ण जिन्न के पास ही हों और वह महाराज के कहने से तुम्हें दे दें।

इन्द्रजीतसिंह—या उन चीजों से स्वयं कृष्ण जिन्न वह काम निकालें जो तुम कर सकती हो।

इन्दिरा—नहीं, उन चीजों का मतलब जितना मैं बता सकती हूँ, उतना कोई दूसरा नहीं बता सकता !

गोपालसिंह—खैर, जो कुछ होगा, देखा जायेगा ।

आनन्दसिंह—(गोपालसिंह से) यह सब हाल आपको कैसे मालूम हुआ ? क्या आपने कोई आदमी रोहतासगढ़ भेजा था ? या खुद पिताजी ने यह सब हाल कहला भेजा है ?

गोपालसिंह—भूतनाथ स्वयं मेरे पास मदद लेने के लिए आया था मगर मैंने मदद देने से इनकार कर दिया ।

इन्द्रजीतसिंह—(ताज्जुब से) ऐसा क्यों किया ?

गोपालसिंह—(ऊँची साँस लेकर) विधाता के हाथों से मैं बहुत सताया गया हूँ । सच तो यह है कि अभी तक मेरे होशहवास ठिकाने नहीं हैं, इसलिए मैं कुछ मदद करने लायक नहीं हूँ । इसके अतिरिक्त मैं खुद अपनी तिलिस्मी किताब खो जाने के गम में पड़ा हुआ था, मुझे किसी की बात कब अच्छी लगती ?

इन्द्रजीतसिंह—(मुस्कराकर)जी नहीं, ऐसा करने का सबब कुछ दूसरा ही है, मैं कुछ-कुछ समझ गया, खैर, देखा जायेगा, अब इन्दिरा का किस्सा सुनना चाहिए ।

गोपालसिंह—(इन्दिरा से) अब तुम अपना हाल कहो, यद्यपि तुम्हारा और तुम्हारी माँ का हाल मैं बहुत-कुछ जानता हूँ मगर इन दोनों भाइयों को उसकी कुछ भी खबर नहीं है बल्कि तुम दोनों का नाम भी शायद इन्होंने न सुना होगा ।

इन्द्रजीतसिंह—बेशक ऐसा ही है ।

गोपालसिंह—इसलिए तुम्हें चाहिए कि अपना और अपनी माँ का हाल शुरू से कह सुनाओ, मैं समझता हूँ कि तुम्हें अपनी माँ का कुल हाल मालूम होगा ।

इन्दिरा—जी हाँ, मैं अपनी माँ का हाल खुद उसकी जुबानी और कुछ इधर-उधर से भी पूरी तरह सुन चुकी हूँ ।

गोपालसिंह—अच्छा, तो अब कहना आरम्भ करो ।

इस समय रात घण्टे भर से कुछ ज्यादा जा चुकी थी । इन्दिरा ने पहले अपनी माँ का और फिर अपना हाल इस तरह बयान किया—

इन्दिरा—मेरी माँ का नाम सरयू और पिता का नाम इन्द्रदेव है ।

इन्द्रजीतसिंह—(ताज्जुब से) कौन इन्द्रदेव ?

गोपालसिंह—वही इन्द्रदेव, जो दारोगा का गुरुभाई है, जिसने लक्ष्मीदेवी की जान बचाई थी, और जिसका जिक्र मैं अभी कर चुका हूँ ।

इन्द्रजीतसिंह—अच्छा तब ?

इन्दिरा—मेरे नाना बहुत अमीर आदमी थे । लाखों रुपयों की मौरूसी जायदाद उनके हाथ लगी थी और वह खुद भी बहुत पैदा करते थे, मगर सिवाय मेरी माँ के उनको और कोई औलाद न थी, इसलिए वह मेरी माँ को बहुत प्यार करते थे और धन-दौलत भी बहुत ज्यादा दिया करते थे । इसी कारण मेरी माँ का रहना भी बनिस्बित ससुराल के नैहर में ज्यादा होता था । जिस जमाने का मैं जिक्र करती हूँ उस जमाने में

मेरी उम्र लगभग सात-आठ वर्ष के होगी मगर मैं बातचीत और समझ-बूझ में होशियार थी और उस समय की बातें आज भी मुझे इस तरह याद हैं जैसे कल ही की बातें हों।

जाड़े का मौसम था जब से मेरा किस्सा शुरू होता है। मैं अपनी ननिहाल में थी। आधी रात का समय था, मैं अपनी माँ के पास पलंग पर सोई हुई थी। यकायक दरवाजा खुलने की आवाज आई और किसी आदमी को कमरे में आते देख मेरी माँ उठ बैठी, साथ ही इससे मेरी नींद भी टूट गई। कमरे के अन्दर इस तरह यकायक आने वाले मेरे नाना थे जिन्हें देख मेरी माँ को बड़ा ही ताज्जुब हुआ और वह पलंग से नीचे उतरकर खड़ी हो गई।

आनन्दसिंह—तुम्हारे नाना का क्या नाम था?

इन्दिरा—मेरे नाना का नाम दामोदरसिंह था और वे इसी शहर जमानिया में रहा करते थे।

आनन्दसिंह—अच्छा, तब क्या हुआ?

इन्दिरा—मेरी माँ को घबराई हुई देखकर नाना साहब ने कहा, "सरयू बेटी, इस समय यकायक मेरे आने से तुझे ताज्जुब होगा और निःसन्देह यह ताज्जुब की बात है भी मगर क्या करूँ किस्मत और लाचारी मुझसे ऐसा कराती है। सरयू, इस बात को मैं खूब जानता हूँ कि लड़की को अपनी मर्जी से ससुराल की तरफ बिदा कर देना सभ्यता के विरुद्ध और लज्जा की बात है मगर क्या करूँ, आज ईश्वर ही ने ऐसा करने के लिए मुझे मजबूर किया है। बेटी, आज मैं जबरदस्ती अपने हाथ से अपने कलेजे को निकालकर बाहर फेंकता हूँ अर्थात् अपनी एकमात्र औलाद को (तुझको), जिसे देखे बिना कल नहीं पड़ती थी, जबरदस्ती उसके ससुराल की तरफ बिदा करता हूँ। मैंने सबकी चोरी-चोरी बालाजी को बुलवा भेजा है और खबर लगी है कि दो घण्टे के अन्दर ही वह आना चाहते हैं। इस समय तुझे यह इत्तिला देने आया हूँ कि इसी घण्टे-दो-घण्टे के अन्दर तू भी अपने जाने की तैयारी कर ले!" इतना कहते-कहते नाना साहब का जी उमड़ आया, गला भर गया और उसकी आँखों से टपाटप आँसू की बूँदें गिरने लगीं।

इन्द्रजीतसिंह—बालाजी किसका नाम है?

इन्दिरा—मेरे पिता को मेरी ननिहाल में सब कोई 'बालाजी' कहकर पुकारा करते थे।

इन्द्रजीतसिंह—अच्छा फिर?

इन्दिरा—उस समय अपने पिता की ऐसी अवस्था देखकर मेरी माँ बदहवास हो गई और उखड़ी हुई आवाज में बोली, "पिताजी यह क्या? आपकी ऐसी अवस्था क्यों हो रही है? मैं यह बात क्यों देख रही हूँ? जो बात मैंने आज तक नहीं सुनी थी वह क्यों सुन रही हूँ? मैंने ऐसा क्या कसूर किया है जो आज इस घर से मैं निकाली जाती हूँ?"

दामोदरसिंह ने कहा, "बेटी, तूने कुछ कसूर नहीं किया, सब कसूर मेरा है। जो कुछ मैंने किया है उसी का फल भोग रहा हूँ बस, इससे ज्यादा और मैं कुछ नहीं कहना चाहता। हाँ, तुझसे मैं एक बात की अभिलाषा रखता हूँ, आशा है कि तू अपने बाप की बात कभी न टालेगी। तू खूब जानती है कि इस दुनिया में तुझसे बढ़कर मैं किसी को

नहीं मानता हूँ और न तुझसे बढ़कर किसी पर मेरा स्नेह है, अतएव इसके बदले में केवल इतना ही चाहता हूँ कि इस अन्तिम समय में जो कुछ तुझे कहता हूँ उसे तू अवश्य पूरा करे और मेरी याद अपने दिल में बनाये रहे···

इतना कहते-कहते मेरे नाना की बुरी हालत हो गई। आँसुओं ने उनके रोआबदार चेहरे को तर कर दिया और गला ऐसा भर गया कि कुछ कहना कठिन हो गया। मेरी माँ भी अपने पिता की विचित्र बातें सुनकर अधमरी-सी हो गई। पितृस्नेह ने उसका कलेजा हिला दिया, न रुकने वाले आँसुओं को पोंछकर और मुश्किल से अपने दिल को सम्हालकर बोली, "पिताजी, कहो, शीघ्र कहो कि आप मुझसे क्या चाहते हैं ? मैं आपके चरणों पर जान देने के लिए तैयार हूँ।"

इसके जवाब में दामोदरसिंह ने यह कहकर कि "मैं भी तुझसे यही आशा रखता हूँ", अपने कपड़ों के अन्दर से एक कलमदान निकाला और मेरी माँ को देकर कहा, "इसे अपने पास हिफाजत से रखना और जब तक मैं इस दुनिया में कायम रहूँ; इसे मत खोलना। देख इस कलमदान के ऊपर तीन तस्वीरें बनी हुई हैं। बिचली तस्वीर के नीचे इन्दिरा का नाम लिखा हुआ है। जब तेरा पति इस कलमदान के अन्दर का हाल पूछे तो तू कह देना कि मेरे पिता ने यह कलमदान इन्दिरा को दिया है और इस पर उसका नाम भी लिख दिया है तथा ताकीद कर दी है कि जब तक इन्दिरा की शादी न हो जाये यह कलमदान खोला न जाये, अस्तु जिस तरह हो यह कलमदान खुलने न पावे। यह तकलीफ तुझे ज्यादा दिन तक भोगनी न पड़ेगी क्योंकि मेरी जिन्दगी का अब कोई ठिकाना न रहा। मैं इस समय खूँखार दुश्मनों से घिरा हुआ हूँ, नहीं कह सकता कि आज मरूँ या कल, मगर बेटी, तू मेरे जब मरने का अच्छी तरह से निश्चय कर ले तभी इस कलमदान को खोलना। इसकी ताली मैं तुझे नहीं देता, जब इसके खुलने का समय आवे तब जिस तरह हो सके खोल डालना।" इतना कहकर मेरे नाना वहाँ से चले गए और रोती हुई मेरी माँ को उसी तरह छोड़ गए।

इन्द्रजीतसिंह—मैं समझता हूँ यह वही कलमदान था जो कृष्ण जिन्न ने महाराज के सामने पेश किया था और जिसका हाल अभी तुम्हारे सामने भाई साहब ने बयान किया है !

इन्दिरा—जी हाँ।

इन्द्रजीतसिंह—निःसन्देह यह अनूठा किस्सा है, अच्छा, तब क्या हुआ ?

इन्दिरा—घण्टे भर तक मेरी माँ तरह-तरह की बातें सोचती और रोती रही, इसके बाद दामोदरसिंह पुनः उस कमरे में आये और मेरी माँ को रोती हुई देखकर बोले, "सरयू, तू अभी तक बैठी रो रही है। अरी बेटी, तुझे तो अब अपने प्यारे बाप के लिए जन्म भर रोना है, इस समय तू अपने दिल को सम्हाल और जाने की शीघ्र तैयारी कर, अगर तू विलम्ब करेगी तो मुझे बड़ा कष्ट होगा और पुनः तुझसे पूछता हूँ कि उस कलमदान के विषय में जो कुछ मैंने कहा तू वैसा ही करेगी न ?" इसके जवाब में मेरी माँ ने सिसककर कहा, "जो कुछ आपने आज्ञा की है मैं उसका पालन करूँगी, परन्तु मेरे पिता, यह बताओ कि तुम ऐसा क्यों कर रहे हो ?"

मेरी माँ ने बहुत-कुछ मिन्नत और आजिजी की मगर नाना साहब ने अपनी बद-हवासी का सबब कुछ भी बयान न किया और बाहर चले गये । थोड़ी ही देर बाद एक लौंडी ने आकर खबर दी कि बालाजी(मेरे पिता)इन्द्रदेव आ गये । उस समय मेरी माँ को नाना साहब की बातों का निश्चय हो गया और वह समझ गई कि अब इसी समय यहाँ से रवाना हो जाना पड़ेगा ।

थोड़ी देर बाद मेरे पिता घर में आये । माँ ने उनसे आने का सबब पूछा जिसके जवाब में उन्होंने कहा कि "तुम्हारे पिता ने एक विश्वासी आदमी के हाथ मुझे पत्र भेजा जिसमें केवल इतना ही लिखा था कि इस पत्र को देखते ही चल पड़ो और जितनी जल्दी हो सके हमारे पास पहुँचो ।" मैं पत्र पढ़ते ही घबरा गया, उस आदमी से पूछा कि घर में कुशल तो है ? उसने कहा कि "सब कुशल है, मैं बहुत तेज ाड़े पर सवार करा के तुम्हारे पास भेजा गया हूँ । अब मेरा घोड़ा लौट जाने लायक नहीं है । मगर तुम बहुत जल्द उनके पास जाओ ।" मैं घबराया हुआ एक घोड़े पर सवार हो के उसी वक्त चल पड़ा मगर इस समय यहाँ पहुँचने पर उनसे ऐसा करने का सबब पूछा तो कोई भी जवाब न मिला, उन्होंने एक कागज मेरे हाथ में देकर कहा कि इसे हिफाजत से रखना, इस कागज में मैंने अपनी कुल जायदाद इन्दिरा के नाम लिख दी है । मेरी जिन्दगी का अब कोई ठिकाना नहीं । तुम इस कागज को अपने पास रखो और अपनी स्त्री तथा लड़की को लेकर इसी समय यहाँ से चले जाओ, क्योंकि अब जमानिया में बड़ा भारी उपद्रव उठना चाहता है ? बस, इससे ज्यादा और कुछ न कहेंगे । तुम्हारी बिदाई का सब बन्दोबस्त हो चुका है, सवारी इत्यादि तैयार है ।"

इतना कहकर मेरे पिता चुप हो गये और दम भर के बाद उन्होंने मेरी माँ से पूछा कि इन सब बातों का सबब यदि तुम्हें कुछ मालूम हो तो कहो । मेरी माँ ने भी थोड़ी देर पहले जो कुछ हो चुका था, कह सुनाया । मगर कलमदान के बारे में केवल इतना ही कहा कि पिताजी यह कलमदान इन्दिरा के लिए दे गये हैं और कह गये हैं कि कोई इसे खोलने न पावे, जब इन्दिरा की शादी हो जाये तो वह अपने हाथ से इसे खोलें ।

इसके बाद मेरे पिता मिलने के लिए मेरी नानी के पास गये और देखा कि रोते-रोते उसकी अजीब हालत हो गई है । मेरे पिता को देखकर वह और भी रोने लगी मगर इसका सबब कुछ भी न बता सकी कि उसके मालिक को आज क्या हो गया है, वे इतने बदहवास क्यों हैं, और अपनी लड़की को इसी समय यहाँ से बिदा करने पर क्यों मजबूर हो रहे हैं क्योंकि उस बेचारी को भी इसकी बाबत कुछ मालूम न था ।

यह सब बातें जो मैं ऊपर कह आई हूँ सिवाय हम पाँच आदमियों के और किसी को मालूम न थीं । उस घर का और कोई भी यह नहीं जानता था कि आज दामोदर-सिंह बदहवास हो रहे हैं और अपनी लड़की को किसी लाचारी से इसी समय बिदा कर रहे हैं ।

थोड़ी देर बाद हम लोग बिदा कर दिये गये । मेरी माँ रोती हुई मुझे साथ लेकर रथ में रवाना हुई जिसमें दो मजबूत घोड़े जुते हुए थे, और इसी तरह के दूसरे

रथ पर बहुत-सा सामान लेकर मेरे पिता सवार हुए और हम लोग वहाँ से रवाना हुए। हिफाजत के लिए कई हथियारबन्द सवार भी हम लोगों के साथ थे।

जमानिया से मेरे पिता का मकान केवल तीस-पैंतीस कोस की दूरी पर होगा। जिस वक्त हम लोग घर से रवाना हुए, उस वक्त दो घण्टे रात बाकी थी और जिस समय हम लोग घर पहुँचे उस समय पहर भर से भी ज्यादा दिन बाकी था। मेरी माँ तमाम रास्ते रोती गई और घर पहुँचने पर भी कई दिनों तक उसका रोना बन्द न हुआ। मेरे पिता के रहने का स्थान बड़ा ही सुन्दर और रमणीक है, मगर उसके अन्दर जाने का रास्ता बहुत ही गुप्त रखा गया है।

इस जगह इन्दिरा ने इन्द्रदेव के मकान और रास्ते का थोड़ा-सा हाल बयान किया और उसके बाद फिर अपना किस्सा कहने लगी—

इन्दिरा—मेरे पिता तिलिस्म के दारोगा हैं और यद्यपि खुद भी बड़े भारी ऐयार हैं तथापि उनके यहाँ कई ऐयार नौकर हैं। उन्होंने अपने दो ऐयारों को इसलिए जमानिया भेजा कि वे एकसाथ मिलकर या अलग-अलग होकर दामोदरसिंहजी की बदहवासी और परेशानी का पता गुप्त रीति से लगावें और यह मालूम करें कि वह कौन से दुश्मनों की चालबाजियों के शिकार हो रहे हैं। इस बीच मेरे पिता ने पुनः मेरी माँ से कलमदान का हाल पूछा जो उसके पिता ने उसे दिया था और मेरी माँ ने उसका हाल साफ-साफ कह दिया अर्थात् जो कुछ उस कलमदान के विषय में दामोदरसिंहजी ने नसीहत इत्यादि की थी, वह साफ-साफ कह सुनायी।

जिस दिन मैं अपनी माँ के साथ पिता के घर गई उसके ठीक पन्द्रहवें दिन संध्या के समय मेरे पिता के एक ऐयार ने यह खबर पहुँचाई कि जमानिया में प्रातःकाल सरकारी महल के पास वाले चौमुहाने पर दामोदरसिंहजी की लाश पाई गई जो लहू से भरी हुई थी और सिर का पता न था। महाराज ने उस लाश को अपने पास उठवा मँगाया और तहकीकात हो रही है। इस खबर को सुनते ही मेरी माँ जोर-जोर से रोने और अपना माथा पीटने लगी। थोड़ी ही देर बाद ननिहाल का भी एक दूत आ पहुँचा और उसने भी वही खबर सुनाई। पिताजी ने मेरी माँ को बहुत समझाया और कहा कि कलमदान देते समय तुम्हारे पिता ने तुमसे कहा था कि मेरे मरने के बाद इस कलमदान को खोलना मगर मेरे मरने का अच्छी तरह निश्चय कर लेना। उनका ऐसा कहना बेसबब न था। 'मरने का निश्चय कर लेना' यह बात उन्होंने निःसन्देह इसीलिए कही होगी कि उनके मरने के विषय में लोग हम सभी को धोखा देंगे, यह बात उन्हें अच्छी तरह मालूम थी। अस्तु तुम अभी रो-रोकर अपने को हलकान मत करो और पहले मुझे जमानिया जाकर उनके मरने के विषय में निश्चय कर लेने दो। यह जरूर बड़े ताज्जुब और शक की बात है कि उन्हें मारकर कोई उनका सिर ले जाये और धड़ उसी तरह रहने दे। इसके अतिरिक्त तुम्हारी माँ का भी बन्दोबस्त करना चाहिए, कहीं ऐसा न हो कि वह किसी दूसरे ही की लाश के साथ सती हो जाये।

मेरी माँ ने भी जमानिया जाने की इच्छा प्रकट की, परन्तु पिता ने स्वीकार न करके कहा कि यह बात तुम्हारे पिता को भी स्वीकार न थी, नहीं तो अपनी जिन्दगी

ही में तुम्हें यहाँ बिदा न कर देते, इत्यादि बहुत-कुछ समझा-बुझाकर उसे शान्त किया और स्वयं उसी समय दो-तीन ऐयारों को साथ लेकर जमानिया की तरफ रवाना हो गए।

इतना कहकर इन्दिरा रुक गई और लम्बी साँस लेकर फिर बोली—

इन्दिरा—उस समय मेरे पिता पर जो कुछ मुसीबत बीती थी उसका हाल उन्हीं की जुबानी सुनना अच्छा मालूम होगा तथापि जो कुछ मुझे मालूम है मैं बयान करती हूँ। मेरे पिता जब जमानिया पहुँचे तो सीधे घर चले गए। वहाँ पर देखा तो मेरी नानी को अपने पति की लाश के साथ सती होने की तैयारी करते पाया क्योंकि देखभाल करने के बाद राजा साहब ने उनकी लाश उनके घर भिजवा दी थी। मेरे पिता ने मेरी नानी को बहुत-कुछ समझाया और कहा कि इस लाश के साथ तुम्हारा सती होना उचित नहीं है, कौन ठिकाना यह कार्रवाई धोखा देने के लिए की गई हो, और यदि यह दूसरे की लाश निकली तो तुम स्वयं विचार सकती हो कि तुम्हारा सती होना कितना बुरा होगा। अतः तुम इसकी दाह-क्रिया होने दो और बीच में मैं इस मामले का असल पता लगा लूंगा, अगर यह लाश वास्तव में उन्हीं की होगी तो खूनी का या उसके सिर का पता लगाना कोई कठिन न होगा! इत्यादि बहुत-सी बातें समझाकर उनको सती होने से रोका और स्वयं खूनियों का पता लगाने का उद्योग करने लगे।

आधी रात का समय था, सर्दी खूब पड़ रही थी। लोग लिहाफों के अन्दर मुँह छिपाये अपने-अपने घरों में सो रहे थे। मेरे पिता सूरत बदले और चेहरे पर नकाब डाले घूमते-फिरते उसी चौमुहाने पर जा पहुँचे जहाँ मेरे नाना की लाश पाई गई थी। उस समय चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। वे एक दुकान की आड़ में खड़े होकर कुछ सोच रहे थे कि दाहिनी तरफ से एक आदमी को आते देखा। वह आदमी भी अपने चेहरे को नकाब से छिपाए हुए था। मेरे पिता के देखते-ही-देखते वह उस चौमुहाने पर कुछ रखकर पीछे की तरफ मुड़ गया। मेरे पिता ने जाकर देखा तो एक लिफाफे पर नजर पड़ी, उसे उठा लिया और घर लौट आये। शमादान के सामने लिफाफा खोला, उसके अन्दर एक चिट्ठी थी और उसमें यह लिखा था—

"दामोदरसिंह के खूनी का जो कोई पता लगाना चाहे उसे अपनी तरफ से भी होशियार रहना चाहिए। ताज्जुब नहीं कि उसकी भी वही दशा हो जो दामोदरसिंह की हुई।"

इस पत्र को पढ़कर मेरे पिता तरद्दुद में पड़ गये और सवेरा होने तक तरह-तरह कीबातें सोचते-विचारते रहे। उन्हें आशा थी कि सवेरा होने पर उनके ऐयार लोग घर लौट आयेंगे और रात भर में जो कुछ उन्होंने किया है उसका हाल कहेंगे, क्योंकि ऐसा करने के लिए उन्होंने अपने ऐयारों को ताकीद कर दी थी मगर उनका विचार ठीक न निकला अर्थात् उनके वे भेजे हुए ऐयार लौटकर न आये। दूसरा दिन भी बीत गया और तीसरे दिन भी दोपहर रात जाते-जाते तक मेरे पिता ने उन लोगों का इन्तजार किया मगर सब व्यर्थ था, उन ऐयारों का हाल कुछ भी मालूम न हुआ। आखिर लाचार होकर स्वयं उनकी खोज में जाने के लिए तैयार हो गये और घर से बाहर निकलना ही

चाहते थे कि कमरे का दरवाजा खुला और महाराज के एक चोबदार को साथ लिए हुए नाना साहब का एक सिपाही कमरे के अन्दर दाखिल हुआ। पिता को बड़ा ताज्जुब हुआ और उन्होंने चोबदार से वहाँ आने का सबब पूछा। चोबदार ने जवाब दिया कि आपको कुँअर साहब (गोपालसिंह) ने शीघ्र ही बुलाया है और अपने साथ लाने के लिए मुझे सख्त ताकीद की है।

गोपालसिंह—हाँ, ठीक है, मैंने उन्हें अपनी मदद के लिए बुलवाया था, क्योंकि मेरे और इन्द्रदेव के बीच दोस्ती थी और उस समय मैं दिली तकलीफों से बहुत बेचैन था। इन्द्रदेव से और मुझसे अब भी वैसी ही दोस्ती है, वह मेरा बहुत सच्चा दोस्त है, चाहे वर्षों हम दोनों में पत्र-व्यवहार न हो मगर दोस्ती में किसी तरह की कमी नहीं आ सकती।

इन्दिरा—बेशक ऐसा ही है! तो उस समय का हाल और उसके बाद मेरे पिता से और आपसे जो-जो बातें हुई थीं सो आप अच्छी तरह बयान कर सकते हैं।

गोपालसिंह—नहीं-नहीं, जिस तरह तुम और हाल कह रही हो उसी तरह वह भी कह जाओ, मैं समझता हूँ कि इन्द्रदेव ने यह सब हाल तुमसे कहा होगा।

इन्दिरा—जी हाँ, इस घटना के कई वर्ष बाद पिताजी ने मुझसे सब हाल कहा था जो अभी तक मुझे अच्छी तरह याद है, मगर मैं उन बातों को मुख्तसिर ही में बयान करती हूँ।

गोपालसिंह—क्या हर्ज है तुम मुख्तसिर में बयान कर जाओ, जहाँ भूलोगी मैं बता दूंगा, यदि वह हाल मुझे भी मालूम होगा।

इन्दिरा—जो आज्ञा! मेरे पिता जब चोबदार के साथ राजमहल में गये, तो मालूम हुआ कि कुँअर साहब घर में नहीं हैं कहीं बाहर गये हैं। आश्चर्य में आकर उन्होंने कुँअर साहब के खास खिदमतगार से दरियाफ्त किया तो उसने जवाब दिया कि आपके पास चोबदार भेजने के बाद बहुत देर तक अकेले बैठकर आपका इन्तजार करते रहे मगर जब आपके आने में देर हुई तो घबराकर खुद आपके मकान की तरफ चले गये। यह सुनते ही मेरे पिता घबराकर वहाँ से लौटे और फौरन ही घर पहुँचे मगर कुँअर साहब से मुलाकात न हुई। दरियाफ्त करने पर पहरेदार ने कहा कि कुँअर साहब यहाँ नहीं आए हैं। वे पुनः लौटकर राजमहल में गये, परन्तु कुँअर साहब का पता न लगना था और न लगा। मेरे पिता की वह तमाम रात परेशानी में बीती, और उस समय उन्हें नाना साहब की बात याद आई जो उन्होंने मेरे पिता से कही थी कि अब जमानिया में बड़ा भारी उपद्रव उठना चाहता है।

तमाम रात बीत गई, दूसरा दिन चला गया, तीसरा दिन चला गया, मगर कुँअर साहब का पता न लगा। सैकड़ों आदमी खोज में निकले, तमाम शहर में कोलाहल मच गया। जिसे देखिए वह इन्हीं के विषय में तरह-तरह की बातें कहता और आश्चर्य करता था। उन दिनों कुँअर साहब (गोपालसिंह) की शादी लक्ष्मीदेवी से लगी हुई थी और तिलिस्मी दारोगा साहब शादी के विरुद्ध बातें किया करते थे, इस बात की चर्चा भी शहर में फैली हुई थी।

चौथे दिन आधी रात के समय मेरे पिता नाना साहब वाले मकान में फाटक के ऊपर वाले कमरे के अन्दर पलँग पर लेटे हुए कुँअर साहब के विषय में कुछ सोच रहे थे कि यकायक कमरे का दरवाजा खुला और आप (गोपालसिंह) कमरे के अन्दर आते हुए दिखाई पड़े। मुहब्बत और दोस्ती में बड़ाई-छुटाई का दर्जा कायम नहीं रहता। कुँअर साहब को देखते ही मेरे पिता उठ खड़े हुए और दौड़कर इनके गले से चिपटकर बोले, "क्यों साहब, आप इतने दिनों तक कहाँ थे ?"

उस समय कुँअर साहब की आँखों से आँसू की बूँदें टपटपाकर गिर रही थीं; चेहरे पर उदासी और तकलीफ की निशानी पाई जाती थी, और उन दिनों में ही उनके बदन की यह हालत हो गई थी कि महीनों के बीमार मालूम पड़ते थे। मेरे पिता ने हाथ-मुँह धुलवाया तथा अपने पलंग पर बैठाकर हाल-चाल पूछा और कुँअर साहब ने इस तरह अपना हाल बयान किया—

"उस दिन मैंने तुमको बुलाने के लिए चोबदार भेजा, जब तक चोवदार तुम्हारे यहाँ से लौटकर आये उसके पहले ही एक खिदमतगार ने मुझे इत्तिला दी कि इन्द्रदेव ने आपको अपने घर अकेले ही बुलाया है। मैं उसी समय उठ खड़ा हुआ और अकेले तुम्हारे मकान की तरफ रवाना हुआ। जब आधे रास्ते में पहुँचा तो तुम्हारे यहाँ का अर्थात् दामोदरसिंह का खिदमतगार, जिसका नाम प्यारे है, मुझे मिला और उसने कहा कि इन्द्रदेव गंगा-किनारे की तरफ गये हैं और आपको उसी जगह बुलाबा है। मैं क्या जानता था कि एक अदना खिदमतगार मुझसे दगा करेगा। मैं बेधड़क उसके साथ गंगा के किनारे की तरफ रवाना हुआ। आधी रात से ज्यादा तो जा ही चुकी थी अतएव गंगा किनारे बिल्कुल सन्नाटा छाया हुआ था। मैंने वहाँ पहुँचकर किसी को न पाया तो उस नौकर से पूछा कि इन्द्रदेव कहाँ हैं? उसने जवाब दिया कि ठहरिये आते होंगे। उस घाट पर केवल एक डोंगी बँधी हुई थी, मैं कुछ विचारता हुआ उस डोंगी की तरफ देख रहा था कि यकायक दोनों तरफ से दस-बारह आदमी चेहरों पर नकाबें डाले हुए आ पहुँचे और उन सभी ने फुर्ती के साथ मुझे गिरफ्तार कर लिया। वे सब बड़े मजबूत और ताकतवर थे और सबके सब एक साथ मुझसे लिपट गये। एक ने मेरे मुँह पर एक मोटा कपड़ा डालकर ऐसा कस दिया कि न तो मैं बोल सकता था और न कुछ देख सकता था, बात-की-बात में मेरी मुश्कें बाँध दी गईं और जबरदस्ती उसी डोंगी पर बैठा दिया गया जो घाट के किनारे बँधी हुई थी। डोंगी किनारे से खोल दी गई और बड़ी तेजी से चलाई गई। मैं नहीं कह सकता कि वे लोग कितने आदमी थे और दो ही घण्टे में जब तक कि मैं उस पर सवार था, डोंगी को लेकर कितनी दूर तक गये। लगभग दो घण्टे के करीब बीत गये, तब डोंगी किनारे लगी और मुझे उतारकर एक घोड़े पर चढ़ाया गया! मेरे दोनों पैर घोड़े के नीचे की तरफ मजबूती के साथ बाँध दिए गए, हाथ की रस्सी ढीली कर दी, जिसमें मैं घोड़े की काठी पकड़ सकूँ और घोड़ा तेजी के साथ एक तरफ को दौड़ाया गया। मैं दोनों हाथों से घोड़े की काठी पकड़े हुए था। यद्यपि मैं देखने और बोलने से लाचार कर दिया गया था मगर अन्दाज से और घोड़ों की टापों की आवाज से मालूम हो गया कि मुझे कई सवार घेरे हुए चल रहे हैं और मेरे घोड़े की भी लगाम किसी सवार के हाथ में है। कभी तेजी से और

कभी धीरे-धीरे चलते दो पहर से ज्यादा बीत गए, पैरों में दर्द होने लगा और थकावट ऐसी जान पड़ने लगी कि मानो तमाम बदन चूर-चूर हो गया है। इसके बाद वे घोड़े रोके गए और मैं नीचे उतारकर एक पेड़ के साथ कस के बाँध दिया गया और उस समय मेरे मुँह का कपड़ा खोल दिया गया। मैंने चारों तरफ निगाह दौड़ाई तो अपने को एक घने जंगल में पाया। दस आदमी मोटे मुस्टंडे और उनकी सवारी के दस घोड़े सामने खड़े थे। पास ही में पानी का एक चश्मा बह रहा था। कई आदमी जीन खोलकर घोड़ों को ठण्डा करने और चराने की फिक्र में लगे और बाकी के शैतान हाथ में नंगी तलवार लेकर मेरे चारों तरफ खड़े हो गए। मैं चुपचाप सभी की तरफ देखता था और मुँह से कुछ भी न बोलता था और न वे लोग ही मुझसे कुछ बातें करते थे। (लम्बी साँस लेकर) यदि गर्मी का दिन होता तो शायद मेरी जान निकल जाती क्योंकि उन कम्बख्तों ने मुझे पानी तक के लिए नहीं पूछा और स्वयं खा-पीकर ठीक हो गए। अस्तु पहर भर के बाद फिर मेरी वही दुर्दशा की गई अर्थात् देखने और बोलने से लाचार करके घोड़े पर उसी तरह बैठाया गया और फिर सफर शुरू हुआ। पुनः दोपहर से ज्यादा देर तक सफर करना पड़ा और इसके बाद मैं घोड़े से नीचे उतारकर पैदल चलाया गया। मेरे पैर दर्द और तकलीफ से बेकार हो रहे थे, मगर लाचारी ने फिर भी चौथाई कोस तक चलाया और इसके बाद चौखट लाँघने की नौबत आई, तब मैंने समझा कि अब किसी मकान में जा रहा हूँ। मुझे चार दफे चौखट लाँघनी पड़ी जिसके बाद मैं एक खम्भे के साथ बाँध दिया गया तब मेरे मुँह पर से कपड़ा हटाया गया।

। चौदहवाँ भाग समाप्त ।

तिलिस्मी लेख

बाजे से निकली आवाज का मतलब यह है—

"सारा तिलिस्म तोड़ने का खयाल न करो और इस तिलिस्म की ताली किसी चलती-फिरती से प्राप्त करो। इस बाजे में वे सब बातें भरी हैं जिनकी तुम्हें जरूरत है, ताली लगाया करो, सुना करो। अगर एक ही दफे सुनने से समझ में न आवे तो दोहरा करके भी सुन सकते हो। इसका तरकीब और ताली इसी कमरे में है। ढूंढ़ो।

(देखिये—पृष्ठ 86)

महाराज सूर्यकान्त की तस्वीर के नीचे लिखे हुए बारीक अक्षरों वाले मजमून ("स्वर दै गिन कै वर्ग पै") का अर्थ यह है—

खूब समझ के तब आगे पैर रक्खो।

बाजे वाले चौतरे में खोजो, तिलिस्मी खंजर अपनी देह से अलग मत करो, नहीं तो जान पर आ बनेगी।

(देखिये—पृष्ठ 92)

चन्द्रकान्ता सन्तति

पन्द्रहवाँ भाग

1

इन्दिरा बोली—कुँअर साहब ने एक लम्बी साँस लेकर फिर अपना हाल कहना शुरू किया और कहा—

कुँअर—जब मुह पर से कपड़ा हटा दिया क्या गया, तब मैंने अपने को एक सजे हुए कमरे में देखा। वे ही आदमी जो मुझे यहाँ तक लाये थे अब भी मुझको चारों तरफ से घेरे हुए थे। छत के साथ बहुत-सी कन्दीलें लटक रही थीं और उनमें मोमबत्तियाँ जल रही थीं, दीवारगीरों में रोशनी हो रही थी, जमीन पर फर्श बिछा हुआ था और उस पर पचीस-तीस आदमी अमीराना ढंग की पोशाक पहने और सामने नंगी तलवारें रक्खे बैठे हुए थे मगर सभी का चेहरा नकाब से ढँका हुआ था। तमाम रास्ते में और उस समय मेरे दिल की क्या हालत थी सो मैं ही जानता हूँ। एक आदमी ने जो सबसे ऊँची गद्दी पर बैठा हुआ था और शायद उन सभी का सभापति था मेरी तरफ मुँह करके कहा, "कुँअर गोपालसिंह, तुम समझते होगे कि मैं जमानिया के राजा का लड़का हूँ, जो चाहूँ सो कर सकता हूँ, मगर अब तुम्हें मालूम हुआ होगा कि हमारी सभा इतनी जबर्दस्त है कि तुम्हारे ऐसे के साथ भी जो चाहे सो कर सकती है। इस समय तुम हम लोगों के कब्जे में हो, मगर नहीं, हमारी सभा ईमानदार है। हम लोग ईमानदारी के साथ दुनिया का इन्तजाम करते हैं। तुम्हारा बाप बड़ा ही बेवकूफ है और राजा होने के लायक नहीं है। जिस दिन से वह अपने को महात्मा और साधू बनाये हुए है, दयावान कहलाने के लिए मरा जाता है, दुष्टों को उतना दण्ड नहीं देता जितना देना चाहिए, इसी से तुम्हारे शहर में अब खून-खराबा ज्यादा होने लग गया है, मगर खूनी के गिरफ्तार हो जाने पर भी वह किसी खूनी को दया के वश में पड़कर प्राण-दण्ड नहीं देता। इसी से अब हम लोगों को तुम्हारे यहाँ के बदमाशों का इन्साफ अपने हाथ में लेना पड़ा। तुम्हें खूब मालूम है कि जिस खूनी को तुम्हारे बाप ने केवल देश-निकाले का दण्ड देकर छोड़ दिया था उसकी लाश तुम्हारे ही शहर में किसी चौमुहाने पर पाई गई थी। आज तुम्हें यह भी मालूम हो गया कि वह कार्रवाई हमी लोगों की थी। तुम्हारे शहर का

रहने वाला दामोदरसिंह भी हमारी सभा का सभासद (मेम्बर) था। एक दिन इस सभा ने लाचार होकर यह हुक्म जारी किया कि जमानिया के राजा को अर्थात् तुम्हारे बाप को इस दुनिया से उठा दिया जाय, क्योंकि वह गद्दी चलाने लायक नहीं है, और तुमको जमानिया की गद्दी पर बैठाया जाय। यद्यपि दामोदरसिंह को भी नियमानुसार हमारा साथ देना उचित था मगर वह तुम्हारे बाप का पक्ष करके बेईमान हो गया अतएव लाचार होकर हमारी सभा ने उसे प्राणदण्ड दिया। अब तुम लोग उस दामोदरसिंह के खूनी का पता लगाना चाहते हो मगर इसका नतीजा अच्छा नहीं निकल सकता। आज इस सभा ने इसलिए तुम्हें बुलाया है कि तुम्हें हर बात से होशियार कर दिया जाय। इस सभा का हुक्म टल नहीं सकता, तुम्हारा बाप अब बहुत जल्द इस दुनिया से उठा दिया जायगा और तुमको जमानिया की गद्दी पर बैठने का मौका मिलेगा। तुम्हें उचित है कि हम लोगों का पीछा न करो अर्थात् यह जानने का उद्योग न करो कि हम लोग कौन हैं या कहाँ रहते हैं, और अपने दोस्त इन्द्रदेव को भी ऐसा करने के लिए ताकीद कर दो, नहीं तो तुम्हारे और इन्द्रदेव के लिए भी प्राणदण्ड का हुक्म दिया जायगा। बस, केवल इतना ही समझाने के लिए तुम इस सभा में बुलाये गये थे और अब बिदा किये जाते हो।"

इतना कहकर उस नकाबपोश ने ताली बजाई और उन्हीं दुष्टों ने जो मुझे वहाँ ले गये थे मेरे मुँह पर कपड़ा डालकर फिर उसी तरह कस दिया। खम्भे से खोलकर मुझे बाहर ले आये, कुछ दूर पैदल चला कर घोड़े पर लादा और उसी तरह दोनों पैर कस-कर बाँध दिये। लाचार होकर मुझे फिर उसी तरह का सफर करना पड़ा और किस्मत ने फिर उसी तरह मुझे तीन पहर तक घोड़े पर बैठाया। इसके बाद एक जंगल में पहुँच-कर घोड़े पर से नीचे उतार दिया, हाथ-पैर खोल दिए, मुँह पर से कपड़ा हटा लिया और जिस घोड़े पर मैं सवार कराया गया था उसे साथ लेकर वे लोग वहाँ से रवाना हो गये। उस तकलीफ ने मुझे ऐसा बेदम कर दिया था कि दस कदम चलने की भी ताकत न थी और भूख-प्यास के मारे बुरी हालत हो गई थी, दिन पहर भर से ज्यादा चढ़ चुका था, पानी का बहता हुआ चश्मा मेरी आँखों के सामने था, मगर मुझमें उठकर वहाँ तक जाने की ताकत न थी। घण्टे-भर तक तो यों ही पड़ा रहा, इसके बाद धीरे-धीरे चश्मे के पास गया, खूब पानी पीया तब जी ठिकाने हुआ। मैं नहीं कह सकता कि किन कठिनाइयों से दो दिन में यहाँ तक पहुँचा हूँ। अभी तक घर नहीं गया, पहले तुम्हारे पास आया हूँ। हाँ, धिक्कार है मेरी जिन्दगी और राजकुमार कहलाने पर! जब मेरी रिआया का इन्साफ बदमाशों के आधीन है तो मैं यहाँ का हाकिम क्योंकर कहलाने लगा? जब मैं अपनी हिफाजत आप नहीं कर सकता तो प्रजा की रक्षा कैसे कर सकूँगा? बड़े खेद की बात है कि अदने दर्जे के बदमाश लोग हम पर मुकदमा करें और हम उनका कुछ भी न बिगड़ सकें, हमारे हितैषी दामोदरसिंह मार डाले गये और अब मेरे प्यारे पिता के मारने की फिक्र की जा रही है।

गोपालसिंह— निःसन्देह उस समय मुझे बड़ा ही रंज हुआ था। आज जब मैं उन बातों को याद करता हूँ तो मालूम होता है कि उन लोगों को यदि मुन्दर की शादी मेरे

साथ करना मंजूर न होता, तो निःसन्देह मुझे भी मार डालते और या फिर गिरफ्तार ही न करते।

इन्द्रजीतसिंह—ठीक है, (इन्दिरा से) अच्छा तब ?

इन्दिरा—मेरे पिता ने जब यह सुना कि दामोदरसिंह के नौकर रामप्यारे ने कुँअर साहब को धोखा दिया तो उन्हें निश्चय हो गया कि रामप्यारे भी जरूर उस कमेटी का मददगार है। वे कुँअर साहब की आज्ञानुसार तुरन्त उठ खड़े हुए और रामप्यारे की खोज में फाटक पर आये मगर खोज करने पर मालूम हुआ कि रामप्यारे का पता नहीं लगता। लौटकर कुँअर साहब के पास गये और बोले, "जो सोचा था वही हुआ। रामप्यारे भाग गया, आपका खिदमतगार भी जरूर भाग गया होगा।"

इसके बाद कुँअर साहब और मेरे पिता देर तक बातचीत करते रहे। पिता ने कुँअर साहब को कुछ खिला-पिलाकर और समझा-बुझाकर शान्त किया और वादा किया कि मैं उस सभा तथा उसके सभासदों का पता जरूर लगाऊँगा। पहर रात-भर बाकी होगी जब कुँअर साहब अपने घर की तरफ रवाना हुए। कई आदमियों को संग लिए हुए मेरे पिता भी उनके साथ गए। राजमहल के अन्दर पैर रखते ही कुँअर साहब को पहले अपने पिता अर्थात् बड़े महाराज से मिलने की इच्छा हुई और वे मेरे पिता को साथ लिए हुए सीधे बड़े महाराज के कमरे में चले गए, मगर अफसोस, उस समय बड़े महाराज का देहान्त हो चुका था और यह बात सबसे पहले कुँअर साहब ही को मालूम हुई थी। उस समय बड़े महाराज पलंग के ऊपर इस तरह पड़े हुए थे जैसे कोई घोर निद्रा में हो मगर जब कुँअर साहब ने उन्हें जगाने के लिए हिलाया, तब मालूम हुआ कि वे महानिद्रा के अधीन हो चुके हैं।

इन्दिरा के मुँह से इतना हाल सुनते-सुनते राजा गोपालसिंह की आँखों में आँसू भर आए और दोनों कुमारों के नेत्र भी सूखे न रहे। राजा साहब ने एक लम्बी साँस लेकर कहा, "मेरी माँ का देहान्त पहले ही हो चुका था, उस समय पिता के भी परलोक सिधारने से मुझे बड़ा ही कष्ट हुआ। (इन्दिरा से) अच्छा, आगे कहो।"

इन्दिरा—बड़े महाराज के देहान्त की खबर जब चारों तरफ फैली तो महल और शहर में बड़ा ही कोलाहल मचा, मगर इस बात का खयाल कुँअर साहब और मेरे माता-पिता के अतिरिक्त और किसी को भी न था कि बड़े महाराज की जान भी उसी गुप्त कमेटी ने ली है और न इन दोनों ने ही अपने दिल का हाल किसी से कहा। इसके दो महीने बाद कुँअर साहब जमानिया की गद्दी पर बैठे और राजा कहलाने लगे इस बीच में मेरे पिता ने उस कमेटी का पता लगाने के लिए बहुत उद्योग किया मगर कुछ पता न लगा। उन दिनों कई रजवाड़ों से मातमपुर्सी के खत आ रहे थे। रणधीरसिंह जी (किशोरी के नाना) के यहाँ से मातमपुर्सी का खत लेकर उनके ऐयार गदाधरसिंह[1] आये थे। गदाधरसिंह से और पिता से कुछ नातेदारी भी है जिसे मैं भी ठीक-ठीक नहीं जानती और इस समय मातमपुर्सी की रस्म पूरी करने के बाद मेरे पिता की इच्छानुसार उन्होंने भी मेरे ननिहाल ही में डेरा डाला जहाँ मेरे पिता रहते थे और इस बहाने से कई दिनों तक दिन-रात दोनों आदमियों का साथ रहा। मेरे पिता ने यहाँ का

हाल तथा उस गुप्त कमेटी में कुँअर साहब के पहुँचाये जाने का भेद कह के गदाधरसिंह से मदद माँगी जिसके जवाब में गदाधरसिंह ने कहा कि मैं मदद देने के लिए जी-जान से तैयार हूँ परन्तु अपने मालिक की आज्ञा बिना ज्यादा दिन तक यहाँ नहीं ठहर सकता और यह काम दो-चार दिन का नहीं। तुम राजा गोपालसिंह से कहो कि वे मुझे मेरे मालिक से थोड़े दिनों के लिए माँग लें तब मुझे कुछ उद्योग करने का मौका मिलेगा। आखिर ऐसा ही हुआ अर्थात् आपने (गोपालसिंह की तरफ बताकर) अपना एक सवार पत्र देकर रणधीरसिंह जी के पास भेजा और उन्होंने गदाधरसिंह के नाम राजा साहब का काम कर देने के लिए आज्ञा-पत्र भेज दिया।

गदाधरसिंह जब जमानिया में आए थे तो अकेले न थे बल्कि अपने तीन-चार चेलों को भी साथ लाये थे, अस्तु अपने उन्हीं चेलों को साथ लेकर वे उस गुप्त कमेटी का पता लगाने के लिए तैयार हो गए। उन्होंने मेरे पिता से कहा कि इस शहर में रघुबरसिंह नामी एक आदमी रहता है जो बड़ा ही शैतान, रिश्वती और बेईमान है, मैं उसे फँसाकर अपना काम निकालना चाहता हूँ मगर अफसोस यह है कि वह तम्हारे गुरु-भाई अर्थात् तिलिस्मी दारोगा का दोस्त है और तिलिस्मी दारोगा को तुम्हारे राजा साहब बहुत मानते हैं, खैर, मुझे तो उन लोगों का कुछ खयाल नहीं मगर तुम्हें इस बात की इत्तिला पहले ही से दिए देता हूँ। इसके जवाब में मेरे पिता ने कहा कि उस शैतान को मैं भी जानता हूँ, यदि उसे फाँसने से कोई काम निकल सकता है तो निकालो और इस बात का कुछ खयाल न करो कि वह मेरे गुरुभाई का दोस्त है। इसके बाद मेरे पिता और गदाधरसिंह देर तक आपस में सलाह करते रहे और दूसरे दिन गदाधरसिंह के जाने के बाद मेरे पिता भी उन्हीं लोगों का पता लगाने के लिए घूमने-फिरने और उद्योग करने लगे। एक बार रात के समय मेरे पिता भेस बदलकर शहर में घूम रहे थे, अकस्मात् घूमते-फिरते गंगा किनारे उसी ठिकाने जा पहुँचे जहाँ (गोपालसिंह की तरफ इशारा कर) इन्हें दुश्मनों ने गिरफ्तार कर लिया था। मेरे पिता ने एक डोंगी किनारे पर बँधी हुई देखी। उस समय उन्हें कुँअर साहब की बात याद आ गई और वे धीरे-धीरे चलकर उस डोंगी के पास जा खड़े हुए। उसी समय कई आदमियों ने यकायक पहुँचकर उन्हें गिरफ्तार कर लिया। वे लोग हाथ में तलवारें लिए और अपने चेहरों को नकाब से ढांके हुए थे। यद्यपि मेरे पिता के पास भी तलवार थी और उन्होंने अपने-आपको बचाने के लिए बहुत-कुछ उद्योग किया बल्कि एक-दो आदमियों को जख्मी भी किया मगर नतीजा कुछ भी न निकला, क्योंकि दुश्मनों ने एक मोटा कपड़ा बड़ी फुर्ती से उनके सिर और मुँह पर डालकर उन्हें हर तरह से बेकार कर दिया। मुख्तसिर यह कि दुश्मनों ने उन्हें गिरफ्तार करने के बाद हाथ-पैर बाँध के डोंगी में डाल दिया, डोंगी खोली गई और एक तरफ को तेजी के साथ रवाना हुई। पिता के मुँह पर कपड़ा कसा हुआ था इसलिए वे देख नहीं सकते थे कि डोंगी किस तरफ जा रही है और दुश्मन गिनती में कितने हैं। दो घण्टे तक उसी तरह चले जाने के बाद वे किश्ती के नीचे उतारे गये और जबर्दस्ती एक घोड़े पर चढ़ाये गये, दोनों पैर नीचे से कस के बाँध दिये गये और उसी तरह उस गुप्त कमेटी में पहुँचाये गए जिस तरह कुँअर साहब अर्थात् राजा

गोपालसिंह जी वहाँ पहुँचाये गये थे। उसी तरह मेरे पिता भी एक खम्भे के साथ कस के बाँध दिए गए और उनके मुँह पर से वह आफत का पर्दा हटाया गया। उस समय एक भयानक दृश्य उन्हें दिखाई दिया। जैसा कि कुँअर साहब ने उनसे बयान किया था ठीक उसी तरह का सजा-सजाया कमरा और वैसे ही बहुत से नकाबपोश बड़े ठाठ के साथ बैठे हुए थे। पिता ने मेरी माँ को भी एक खम्भे के साथ बँधी हुई और उस कलमदान को जो मेरे नाना साहब ने दिया था, सभापति के सामने एक छोटी-सी चौकी के ऊपर रक्खे देखा। पिता को बड़ा ही आश्चर्य हुआ और अपनी स्त्री को भी अपनी तरह मजबूर देखकर मारे क्रोध के काँपने लगे मगर कर ही क्या सकते थे, साथ ही इसके उन्हें इस बात का भी निश्चय हो गया कि वह कलमदान भी कुछ इसी सभा से सम्बन्ध रखता है। सभापति ने मेरे पिता की तरफ देख के कहा, "क्यों जी इन्द्रदेव, तुम तो अपने को बहुत होशियार और और चालाक समझते हो! हमने राजा गोपालसिंह की जुबानी क्या कहला भेजा था? क्या तुम्हें नहीं कहा गया था कि तुम हम लोगों का पीछा न करो? फिर तुमने ऐसा क्यों किया? क्या हम लोगों से कोई बात छिपी रह सकती है! खैर, अब बताओ तुम्हारी क्या सजा की जाय? देखो तुम्हारी स्त्री और यह कलमदान भी इस समय हम लोगों के आधीन है, बेईमान दामोदरसिंह ने तो इस कलमदान को गढ़े में डालकर हम लोगों को फँसाना चाहा था मगर उसका अन्तिम वार खाली गया।" इसके जवाब में मेरे पिता ने गम्भीर भाव से कहा, "निःसन्देह मैं आप लोगों का पता लगा रहा था मगर बदनीयती के साथ नहीं, बल्कि इस नीयत से कि मैं भी आप लोगों की इस सभा में शरीक हो जाऊँ।"

सभापति ने हँसकर कहा, "बहुत खासे! अगर ऐसा ही हम लोग धोखे में आने वाले होते तो हम लोगों की सभा अब तक रसातल को पहुँच गई होती। क्या हम लोग नहीं जानते कि तुम हमारी सभा के जानी दुश्मन हो? बेईमान दामोदरसिंह ने तो हम लोगों को चौपट करने में कुछ बाकी नहीं रक्खा था मगर बड़ी खुशी की बात है कि यह कलमदान हम लोगों को मिल गया और हमारी सभा का भेद छिपा रह गया!"

सभापति की इस बात से मेरे पिता को मालूम हो गया कि उस कलमदान में निःसन्देह इसी सभा का भेद बन्द है अस्तु उन्होंने मुस्कुराहट के साथ सभापति की बातों का यों जवाब दिया, "मुझे दुश्मन समझना आप लोगों की भूल है। अगर मैं सभा का दुश्मन होता तो अब तक आप लोगों को जहन्नुम में पहुँचा दिये होता। मैं इस कलमदान को खोल कर इस सभा के भेदों से अच्छी तरह जानकार हो चुका हूँ और इन भेदों को एक दूसरे कागज पर लिखकर अपने एक मित्र को भी दे चुका हूँ। मैं···

पिता ने केवल इतना ही कहा था कि सभापति ने, जिसकी आवाज से जाना जाता था कि वह घबरा गया है पूछा, "क्या तुम इस कलमदान को खोल चुके हो?"

पिता—हाँ।

सभापति—और इस सभा का भेद लिखकर तुमने किसके सुपुर्द किया है?

पिता—सो नहीं बता सकता क्योंकि उसका नाम बताना उसे तुम लोगों के कब्जे में दे देना है।

सभापति—आखिर हम लोगों को कैसे विश्वास हो कि जो कुछ तुमने कहा वह सब सच है ?

पिता—अगर मेरे कहने का विश्वास हो तो मुझे अपनी सभा का सभासद बना लो, फिर जो कुछ कहोगे खुशी से करूँगा। अगर विश्वास न हो तो मुझे मार कर बखेड़ा तै करो, फिर देखो कि मेरे पीछे तुम लोगों की क्या दुर्दशा होती है।

इन्दिरा ने दोनों कुमारों से कहा, "मेरे पिता से और उस सभा के सभापति से बड़ी देर तक बातें होती रहीं और पिता ने उसे अपनी बातों में ऐसा लपेटा कि उसकी अक्ल चकरा गई तथा उसे विश्वास हो गया कि इन्द्रदेव ने जो कुछ कहा वह सच है आखिर सभापति ने उठकर अपने हाथों से मेरे पिता की मुश्कें खोलीं, मेरी माँ को भी छुट्टी दिलाई, और मेरे पिता को अपने पास बैठा कर कुछ कहना ही चाहता था कि मकान के बाहर दरवाजे पर किसी के चिल्लाने की आवाज आई, मगर वह आवाज एक बार से ज्यादा सुनाई न दी और जब तक सभापति किसी को बाहर जाकर दरियाफ्त करने की आज्ञा दे तब तक हाथों में नंगी तलवारें लिए हुए पाँच आदमी धड़धड़ाते हुए उस सभा के बीच आ पहुँचे। उन पाँचों की सूरतें बड़ी ही भयानक थीं और उनकी पोशाकें ऐसी थीं कि उन पर तलवार कोई काम नहीं कर सकती थी, अर्थात् फौलादी कवच पहन कर उन लोगों ने अपने को बहुत मजबूत बनाया हुआ था। चेहरे सभी के सिन्दूर से रँगे हुए थे और कपड़ों पर खून के छींटे भी पड़े हुए थे जिससे मालूम होता था कि दरवाजे पर पहरा देने वालों को मारकर वे लोग यहाँ तक आये हैं। उन पाँचों में एक आदमी जो सब के आगे था बड़ा ही फुर्तीला और हिम्मतवर मालूम होता था। उस ने तेजी के साथ आगे बढ़कर उस कलमदान को उठा लिया जो मेरे नाना साहब ने मेरी माँ को दिया था। इतने ही में उस सभा के जितने सभासद थे, सब तलवारें खींचकर उठ खड़े हुए और घमासान लड़ाई होने लगी। उस समय मौका देखकर मेरे पिता ने मेरी माँ को उठा लिया और हर तरह से बचाते हुए मकान से बाहर निकल गये। उधर उन पाँचों भयानक आदमियों ने उस सभा की अच्छी तरह मिट्टी पलीद की और चार सभासदों की जान और कलमदान लेकर राजी-खुशी के साथ चले गये। उस समय यदि मेरे पिता चाहते तो उन पाँचों बहादुरों से मुलाकात कर सकते थे, क्योंकि वे लोग उनके देखते-देखते पास ही से भाग कर गये थे मगर मेरे पिता ने जानबूझ कर अपने को इसलिए छिपा लिया था कि कहीं वे लोग हमें भी तकलीफ न दें। जब वे लोग देखते-देखते दूर निकल गये तब वे मेरी माँ का हाथ थामे हुए तेजी के साथ चल पड़े। उस समय उन्हें मालूम हुआ कि हम जमानिया की सरहद के बाहर नहीं हैं।

इन्द्रजीतसिंह—(ताज्जुब से)क्या कहा ? जमानिया की सरहद के बाहर नहीं हैं !

इन्दिरा—जी हाँ, वे लोग जमानिया शहर के बाहर थोड़ी ही दूर पर एक बहुत बड़े और पुराने मकान के अन्दर यह कमेटी किया करते थे और जिसे गिरफ्तार करते थे उसे धोखा देने की नीयत से व्यर्थ ही दस-बीस कोस का चक्कर खिलाते थे, जिसमें मालूम हो कि यह कमेटी किसी दूसरे ही शहर में है।

गोपालसिंह—और हमारे दरबार ही के बहुत से आदमी उस कमेटी में शरीक

थे इसी सबब से उसका पता न लगता था, क्योंकि जो तहकीकात करने वाले थे वे ही कमेटी करने वाले थे।

इन्द्रजीतसिंह—(इन्दिरा से) अच्छा तब?

इन्दिरा—मेरे पिता दो घण्टे के अन्दर ही राजहमल में जा पहुँचे। राजा साहब ने पहरे वालों को आज्ञा दे रक्खी थी कि इन्द्रदेव जिस समय चाहें हमारे पास चले आवें, कोई रोक-टोक न करने पाये, अतएव मेरे पिता सीधे राजा साहब के पास जा पहुँचे जो गहरी नींद में बेखबर सोये हुए थे और चार आदमी उनके पलंग के चारों तरफ घूम-घूम कर पहरा दे रहे थे। पिता ने राजा साहब को उठाया और पहरे वालों को अलग कर देने के बाद अपना पूरा हाल कह सुनाया। यह जानकर राजा साहब को बड़ा ही ताज्जुब हुआ कि कमेटी इसी शहर में है। उन्होंने मेरे पिता से या मेरी माँ से खुलासा हाल पूछने में विलम्ब करना उचित न जाना और माँ को हिफाजत के साथ महल के अन्दर भेजने के बाद कपड़े पहनकर तैयार हो गये, खूँटी से लटकती हुई तिलिस्मी तलवार ली और मेरे पिता तथा और कई सिपाहियों को साथ ले मकान के बाहर निकले तथा दो घड़ी के अन्दर ही उस मकान में जा पहुँचे जिसमें कमेटी हुआ करती थी। वह किसी जमाने का बहुत पुराना मकान था जो आधे से ज्यादा गिर कर बर्बाद हो चुका था फिर भी उसके कई कमरे और दालान दुरुस्त और काम देने लायक थे। उस मकान के चारों तरफ टूटे-फूटे और भी कई मकान थे जिनमें कभी किसी भले आदमी का जाना नहीं होता था।[1] जिस कमरे में कमेटी होती थी जब गये तो उसी तरह पर सजा हुआ पाया जैसा राजा साहब और मेरे पिता देख चुके थे। कन्दीलों में रोशनी हो रही थी, फर्क इतना ही था कि फर्श पर तीन लाशें पड़ी हुई थीं, फर्श खून से तरबतर हो रहा था और दीवारों पर खून के छींटे पड़े हुए थे। जब लाशों के चेहरों पर से नकाब हटाया गया तो राजा साहब को बड़ा ही ताज्जुब हुआ।

इन्द्रजीत—वे लोग भी जान-पहचान के ही होंगे जो मारे गये थे?

गोपालसिंह—जी हाँ, एक तो मेरा वही खिदमतगार था जिसने मुझे धोखा दिया था, दूसरा दामोदरसिंह का नौकर रामप्यारे था जिसने मुझे गंगा-किनारे ले जाकर फँसाया था, परन्तु तीसरी लाश को देखकर मेरे आश्चर्य, रंज और क्रोध का अन्त न रहा क्योंकि वह मेरे खजांची साहब थे, जिन्हें मैं बहुत ही नेक, ईमानदार, सूफी और बुद्धिमान समझता था। आप लोगों को इन्दिरा का कुल हाल सुन जाने पर मालूम होगा कि कम्बखत दारोगा ही इस सभा का मुखिया था मगर अफसोस, उस समय मुझे इस बात का गुमान तक न हुआ। जब मैं वहाँ की कुल चीजों को लूट कर और उन लाशों को उठवा कर घर आया तो सवेरा हो चुका था और शहर में इस बात की खबर अच्छी तरह फैल चुकी थी क्योंकि मुझे बहुत से आदमियों को लेकर जाते हुए सैकड़ों आदमियों ने देखा था और जब मैं लौट कर आया तो दरवाजे पर कम से कम पाँच सौ आदमी

---

1. चन्द्रकान्ता सन्तति, आठवें भाग के छठे बयान में इसी पुरानी आबादी और टूटे-फूटे मकानों का हाल लिखा गया है।

उन लाशों को देखने के लिए जमा हो गये थे। उस समय मैंने बेईमान और विश्वासघाती दारोगा को बुलाने के लिए आदमी भेजा मगर उस आदमी ने वापस आकर कहा कि दारोगा साहब छत पर से गिर कर जख्मी हो गए हैं, सिर फट गया है और उठने लायक नहीं हैं। मैंने उस बात को सच मान लिया था, लेकिन वास्तव में दारोगा भी उस सभा में जख्मी हुआ था जिसमें मेरे खजांची ने जान दी थी। मगर अफसोस, मेरी किस्मत में तो तरह-तरह की तकलीफें बदी हुई थीं, मैं उस दुष्ट की तरफ से क्योंकर होशियार होता। (इन्दिरा से) खैर, तुम आगे का हाल कहो, यह सब तुम्हारी ही जबान से अच्छा मालूम होता है।

इन्दिरा—हाँ, तो अब मैं संक्षेप ही में यह किस्सा बयान करती हूँ। तीनों लाशें ठिकाने पहुँचा दी गईं और राजा साहब मेरे पिता का हाथ थामे यह कहते हुए महल के अन्दर चले कि "चलो सरयू से पूछें कि वह क्योंकर उन दुष्टों के फन्दे में फँस गई थी और उस सभा में कौन-कौन आदमी शरीक थे शायद उसने सभी को बिना नकाब के देखा हो।" मगर जब महल में गये तो मालूम हुआ कि सरयू यहाँ आई ही नहीं। यह सुनते ही राजा साहब घबरा गये और बोल उठे, "क्या हमारे यहाँ के सभी आदमी उस कमेटी से मिले हुए हैं!"

गोपालसिंह—उस समय तो मैं पागल सा हो गया था, कुछ भी अक्ल काम नहीं करती थी और यह किसी तरह मालूम नहीं होता था कि हमारे यहाँ कितने आदमी विश्वास करने योग्य हैं और कितने उस कमेटी सें मिले हुए हैं। जिन तीन विश्वासी आदमियों के साथ मैंने सरयू को महल में भेजा था, वे तीनों आदमी भी गायब हो गए थे। मुझे तो विश्वास हो गया था कि मेरी और इन्द्रदेव की जान भी न बचेगी मगर वाह रे इन्द्रदेव, उसने अपने दिल को खूब ही सम्हाला और बड़ी मुस्तैदी और बुद्धिमानी से महीने भर के अन्दर बहुत से आदमियों का पता लगाया जो मेरे ही नौकर होकर उस कमेटी में शरीक थे और मैंने उन सभी को तोप के आगे रखकर उड़वा दिया और सच तो यह है कि उसी दिन से वह गुप्त कमेटी टूट गई और फिर कायम नहीं हुई।

इन्दिरा—जिस समय मेरे पिता को मालूम हुआ कि मेरी माँ महल के अन्दर नहीं पहुँची, बीच ही में गायब हो गई, उस समय उन्हें बड़ा ही रंज हुआ और वे अपने घर जाने के लिए तैयार हो गये। उन्होंने राजा साहब से कहा कि मैं पहले घर जाकर यह मालूम किया चाहता हूँ कि वहाँ से केवल मेरी स्त्री ही को दुश्मन लोग ले गए थे या मेरी लड़की इन्दिरा को भी। मगर मेरे पिता घर की तरफ न जा सके, क्योंकि उसी समय घर से एक दूत आ पहुँचा और उसने इत्तिला दी कि सरयू और इन्दिरा दोनों यकायक गायब हो गईं। इस खबर को सुनकर मेरे पिता और भी उदास हो गए। फिर भी उन्होंने बड़ी कारीगरी से दुश्मनों का पता लगाना आरम्भ किया और बहुतों को पकड़ा भी, जैसा कि अभी राजा साहब कह चुके हैं।

इन्द्रजीतसिंह—क्या तुम दोनों को दुश्मनों ने गिरफ्तार कर लिया था?

इन्दिरा—जी हाँ।

आनन्दसिंह—अच्छा तो पहले अपना और अपनी माँ का हाल कहो कि किस

तरह दुश्मनों के फन्दे में फँस गईं ?

इन्दिरा—जो आज्ञा। यह तो मैं कह ही चुकी हूँ कि मेरे पिता जब जमानिया में आये तो अपने दो ऐयारों को साथ लाये थे, जो दुश्मनों का पता लगाते ही लगाते गायब हो गये थे।

इन्द्रजीतसिंह—हाँ, कह चुकी हो, अच्छा तब ?

इन्दिरा—इन्हीं दोनों ऐयारों की सूरत बनाकर दुश्मनों ने हम लोगों को धोखा दिया।

इन्द्रजीतसिंह—दुश्मन उस मकान के अन्दर गये कैसे ? तुम कह चुकी हो कि वहाँ का रास्ता बहुत टेढ़ा और गुप्त है ?

इन्दिरा—ठीक है, मगर कम्बख्त दारोगा उस रास्ते का हाल बखूबी जानता था और वही उस कमेटी का मुखिया था। ताज्जुब नहीं कि उसी ने उन आदमियों को भेजा हो।

इन्द्रजीतसिंह—ठीक है, निःसन्देह ऐसा ही हुआ होगा, फिर क्या हुआ ? उन्होंने क्योंकर तुम लोगों को धोखा दिया ?

इन्दिरा—संध्या का समय था जब मैं अपनी माँ के साथ उस छोटे से नजरबाग में टहल रही थी जो बँगले के बगल ही में था। यकायक मेरे पिता के वे ही दोनों ऐयार वहाँ आ पहुँचे जिन्हें देख मेरी माँ बहुत खुश हुई और देर तक जमानिया का हालचाल पूछती रही। उन ऐयारों ने ऐसा बयान किया, "इन्द्रदेवजी ने तुम दोनों को जमानिया बुलाया है हम लोग रथ लेकर आये हैं, मगर साथ ही इसके उन्होंने यह भी कहा है कि यदि वे खुशी से आना चाहें तो ले आना नहीं तो लौट आना।" मेरी माँ को जमानिया पहुँचकर अपनी माँ को देखने की बहुत ही लालसा थी, वह कब देर करने वाली थी, तुरन्त ही राजी हो गयी और घण्टे भर के अन्दर ही सब तैयारी कर ली। ऐयार लोग मातबर समझे ही जाते हैं अस्तु ज्यादा खोज करने की कोई आवश्यकता न समझी, केवल दो लौंडियों को और मुझे साथ लेकर चल पड़ी, कलमदान भी साथ ले लिया। हमारे दूसरे ऐयारों ने भी कुछ मना न किया क्योंकि वे भी धोखे में पड़ गये थे और उन ऐयारों को सच्चा समझ बैठे थे। आखिर हम लोग खोह के बाहर निकले और पहाड़ी के नीचे उतरने की नीयत से थोड़ी ही दूर आगे बढ़े थे कि चारों तरफ से दस-पन्द्रह दुश्मनों ने घेर लिया। अब उन ऐयारों ने भी रंगत पलटी, मुझे और मेरी माँ को जबर्दस्ती बेहोशी की दवा सुँघा दी। हम दोनों तुरन्त ही बेहोश हो गईं। मैं नहीं कह सकती कि दोनों लौंडियों की क्या दुर्दशा हुई। मगर जब मैं होश में आई तो अपने को एक तहखाने में कैद पाया और अपनी माँ को अपने पास देखा जो मेरे पहले ही होश में आ चुकी थी और मेरा सिर गोद में लेकर रो रही थी। हम लोगों के हाथ-पैर खुले हुए थे, जिस कोठरी में हम लोग कैद थे, वह लम्बी-चौड़ी थी और सामने की तरफ दरवाजे की जगह लोहे का जंगला लगा हुआ था। जंगले के बाहर दालान था और उसमें एक तरफ चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई थीं तथा सीढ़ी के बगल ही में एक आले के ऊपर चिराग जल रहा था। मैं पहले बयान कर चुकी हूँ कि उन दिनों जाड़े का मौसम था। इसलिए हम लोगों को

गर्मी की तकलीफ न थी। जब मैं होश में आई, मेरी माँ ने रोना बन्द किया और मुझे बड़ी देर तक धीरज और दिलासा देने के बाद बोली, "बेटी, अगर कोई तुझसे उस कलमदान के बारे में कुछ पूछे तो कह देना कि कलमदान खोला जा चुका है। मगर मैं उसके अन्दर का हाल नहीं जानती। हाँ, मेरी माँ तथा और भी कई आदमी उसका भेद जान चुके हैं। अगर उन आदमियों का नाम पूछे तो कह देना कि मैं नाम नहीं जानती, मेरी माँ को मालूम होगा।" मैं यद्यपि लड़की थी, मगर समझ-बूझ बहुत थी और उस बात को मेरी माँ ने कई दफे अच्छी तरह समझा दिया था। मेरी माँ ने कलमदान के विषय में ऐसा कहने के लिए मुझसे क्यों कहा सो मैं नहीं जानती। शायद उससे और दुष्टों से पहले कुछ बातचीत हो चुकी हो। मगर मुझे जो कुछ माँ ने कहा था उसे मैंने अच्छी तरह निबाहा। थोड़ी देर के बाद पाँच आदमी उसी सीढ़ी की राह से धड़धड़ाते हुए नीचे उतर आए और मेरी माँ को जबर्दस्ती ऊपर ले गए। मैं जोर-जोर से रोती और चिल्लाती रह गई, मगर उन लोगों ने मेरा कुछ भी खयाल न किया और अपना काम करके चले गए।

मैं उन लोगों की सूरत-शक्ल के बारे में कुछ भी नहीं कह सकती। क्योंकि वे लोग नकाब से अपने चेहरे छिपाये हुए थे। थोड़ी देर के बाद फिर एक नकाबपोश मेरे पास आया, जिसके कपड़े और कद पर खयाल करके मैं कह सकती हूँ कि वह उन लोगों में से नहीं था जो मेरी माँ को लेकर गए थे बल्कि वह कोई दूसरा ही आदमी था। वह नकाबपोश मेरे पास बैठ गया और मुझे धीरज और दिलासा देता हुआ कहने लगा कि "मैं तुझे इस कैद से छुड़ाऊँगा।" मुझे उसकी बातों पर विश्वास हो गया और इसके बाद वह मुझसे बातचीत करने लगा।

नकाबपोश—क्या तुझे उस कमलदान के अन्दर का हाल पूरा-पूरा मालूम है?

मैं—नहीं।

नकाबपोश—क्या तेरे सामने कलमदान खोला नहीं गया था?

मैं—खोला गया था, मगर उसका हाल मुझे नहीं मालूम, हाँ मेरी माँ तथा और कई आदमियों को मालूम है, जिन्हें मेरे पिता ने दिखाया था।

नकाबपोश—उन आदमियों के नाम तू जानती है?

मैं—नहीं।

उसने कई दफे कई तरह से उलट-फेर कर पूछा, मगर मैंने अपनी बातों में फर्क न डाला, और तब मैंने उससे अपनी माँ का हाल पूछा लेकिन उसने कुछ भी न बताया और मेरे पास से उठकर चला गया। मुझे खूब याद है कि उसके दो पहर बाद मैं जब प्यास के मारे बहुत दुःखी हो रही थी, तब फिर एक आदमी मेरे पास आया। वह भी अपने चेहरे को नकाब से छिपाये हुए था। मैं डरी और समझी कि फिर उन्हीं कम्बख्तों में से कोई मुझे सताने के लिए आया है, मगर वह वास्तव में गदाधरसिंह थे और मुझे उस कैद से छुड़ाने के लिए आए थे। यद्यपि मुझे उस समय यह खयाल हुआ कि कहीं यह भी उन दोनों ऐयारों की तरह मुझे धोखा न देते हों जिनकी बदौलत मैं घर से निकल कर कैदखाने में पहुँची थी। मगर नहीं, वे वास्तव में गदाधरसिंह ही थे और उन्हें मैं

अच्छी तरह पहचानती थी। उन्होंने मुझे गोद में उठा लिया और तहखाने के ऊपर निकल कई पेचीले रास्तों से घूमते-फिरते मैदान में पहुँचे। वहाँ उनके दो आदमी एक घोड़ा लिए तैयार थे। गदाधरसिंह मुझे लेकर घोड़े पर सवार हो गए, अपने आदमियों को ऐयारी भाषा में कुछ कहकर बिदा किया, और खुद एक तरफ रवाना हो गए। उस समय रात बहुत कम बाकी थी और सवेरा हुआ चाहता था। रास्ते में मैंने उनसे अपनी माँ का हाल पूछा, उन्होंने उसका कुल हाल अर्थात् मेरी माँ का उस सभा में पहुँचना, मेरे पिता का भी कैद होकर वहाँ जाना, कलमदान की लूट, तथा मेरे पिता का अपनी स्त्री को लेकर निकल जाना बयान किया और यह भी कहा कि कलमदान को लूट कर ले भागने वाले का पता नहीं लगा। लगभग चार-पाँच कोस चले जाने के बाद वे एक छोटी-सी नदी के किनारे पहुँचे, जिनमें घुटने बराबर से ज्यादा जल न था। उस जगह गदाधरसिंह घोड़े से नीचे उतरे और मुझे भी उतारा, खुर्जी से से कुछ मेवा निकाल कर मुझे खाने को दिया। मैं उस समय बहुत भूखी थी। अस्तु मेवा खाकर पानी पिया, इसके बाद वह फिर मुझे लेकर घोड़े पर सवार हुए और नदी पार होकर एक तरफ को चल निकले। दो घण्टे तक घोड़े को धीरे-धीरे चलाया और फिर तेज किया। दो पहर दिन के समय हम लोग एक पहाड़ी के पास पहुँचे जहाँ बहुत ही गुंजान जंगल था और गदाधरसिंह के चार-पाँच आदमी भी वहाँ मौजूद थे। हम लोगों के पहुँचते ही गदाधरसिंह के आदमियों ने जमीन पर कम्बल बिछा दिया, कोई पानी लेने के लिए चला गया, कोई घोड़े को ठंडा करने लगा और कोई रसोई बनाने की धुन में लगा, क्योंकि चावल, दाल इत्यादि उन आदमियों के पास मौजूद था। गदाधरसिंह भी मेरे पास बैठ गये और अपने बटुए में से कागज-कलम-दवात निकाल कर कुछ लिखने लगे। मेरे देखते-ही-देखते तीन-चार घण्टे तक गदाधरसिंह ने बटुए में से कई कागजों को निकालकर पढ़ा और उनकी नकल की, तब तक रसोई भी तैयार हो गई। हम लोगों ने भोजन किया और जब बिछावन पर आकर बैठे तो गदाधरसिंह ने फिर उन कागजों को देखना और नकल करना शुरू किया। मैं रात भर की जगी हुई थी, इसलिए मुझे नींद आ गई। जब मेरी आँखें खुलीं तो घण्टे भर रात जा चुकी थी। उस समय गदाधरसिंह फिर मुझे लेकर घोड़े पर सवार हुए और अपने आदमियों को कुछ समझा-बुझा कर रवाना हो गये। दो-तीन घण्टे रात बाकी थी, जब हम लोग लक्ष्मीदेवी के बाप बलभद्रसिंह के मकान पर जा पहुँचे। बलभद्रसिंह में और मेरे पिता में बहुत मित्रता थी। इसलिए गदाधरसिंह ने मुझे वहीं पहुँचा देना उत्तम समझा। दरवाजे पर पहुँचने के साथ ही बलभद्रसिंहजी को इत्तिला करवाई गई। यद्यपि वे उस समय गहरी नींद में सोये हुए थे, मगर सुनने के साथ ही निकल आए और बड़ी खातिरदारी के साथ मुझे और गदाधरसिंह को घर के अन्दर अपने कमरे में ले गए जहाँ सिवाय उनके और कोई भी न था। बलभद्रसिंह ने मेरे सिर पर हाथ फेरा और बड़े प्यार से अपनी गोद में बैठा कर गदाधरसिंह से हाल पूछा। गदाधरसिंह ने सब हाल, जो मैं बयान कर चुकी हूँ, उनसे कहा और इसके बाद नसीहत की कि "इन्दिरा को बड़ी हिफाजत से अपने पास रखिये, जब तक दुश्मनों का अन्त न हो जाय, तब तक इसका प्रकट होना उचित नहीं है, मैं फिर जमानिया जाता हूँ और देखता हूँ कि

वहाँ क्या हाल है । इन्द्रदेव से मुलाकात होने पर मैं इन्दिरा को यहाँ पहुँचा देना बयान कर दूँगा ।" बलभद्रसिंह ने बहुत ही प्रसन्न होकर गदाधरसिंह को धन्यवाद दिया और वे थोड़ी देर तक बातचीत करने के बाद सवेरा होने के पहले ही वहाँ से रवाना हो गये। गदाधरसिंह के चले जाने के बाद बलभद्रसिंहजी मुझसे बातचीत करते रहे और सवेरा हो जाने पर मुझे लेकर घर के अन्दर गए । उनकी स्त्री ने मुझे बड़े प्यार से गोद में ले लिया और लक्ष्मीदेवी ने तो मेरी ऐसी कदर की जैसे कोई अपनी जान की कदर करता है । मुझे वहाँ बहुत दिनों तक रहना पड़ा था । इसलिए मुझसे और लक्ष्मीदेवी से हद से ज्यादा मुहब्बत हो गई थी । मैं बड़े आराम से उनके यहाँ रहने लगी । मालूम होता है कि गदाधरसिंह ने जमानिया में जाकर मेरे पिता से मेरा सब हाल कहा क्योंकि थोड़े ही दिन बाद मेरे पिता मुझ को देखने के लिए बलभद्रसिंह के यहाँ आये और उस समय उनकी जुबानी मालूम हुआ कि मेरी माँ पुनः मुसीबत में गिरफ्तार हो गई अर्थात् महल में पहुँचने के साथ ही गायब हो गई । मैं अपनी माँ के लिए बहुत रोई । मगर मेरे पिता ने मुझे दिलासा दिया । केवल एक दिन रहकर मेरे पिता जमानिया की तरफ चले गए और मुझे वहाँ ही छोड़ गए ।

मैं कह चुकी हूँ कि मुझसे और लक्ष्मीदेवी से बड़ी मुहब्बत हो गई थी । इसीलिए मैंने अपने नाना साहब और कलमदान का कुल हाल उससे कह दिया था और यह भी कह दिया था कि उस कलमदान पर तीन तस्वीरें बनी हुई हैं, दो को तो मैं नहीं जानती, मगर बिचली तस्वीर मेरी है और उसके नीचे मेरा नाम लिखा हुआ है । जमानिया जाकर मेरे पिता ने क्या-क्या काम किया, सो मैं नहीं कह सकती । परन्तु यह अवश्य सुनने में आया था कि उन्होंने बड़ी चालाकी और ऐयारी से उन कमेटी वालों का पता लगाया और राजा साहब ने उन सभी को प्राण-दण्ड दिया ।

गोपालसिंह—निःसन्देह उन दुष्टों का पता लगाना इन्द्रदेव ही का काम था । जैसी-जैसी ऐयारियाँ इन्द्रदेव ने कीं वैसी कम ऐयारों को सूझेंगी । अफसोस, उस समय वह कलमदान हाथ न आया, नहीं तो सहज ही में सब दुष्टों का पता लग जाता और यही सबब था कि दुष्टों की सूची में दारोगा, हेलासिंह या जयपालसिंह का नाम न चढ़ा और वास्तव में ये ही तीनों उस कमेटी के मुखिया थे जो मेरे हाथ से बच गये और फिर उन्हीं की बदौलत मैं गारत हुआ ।

इन्द्रजीतसिंह—ताज्जुब नहीं कि दारोगा के बारे में इन्द्रदेव ने सुस्ती कर दी हो और गुरुभाई का मुलाहिजा कर गये हों ।

गोपालसिंह—यह भी हो सकता है ।

आनन्दसिंह—(इन्दिरा से) क्या उस कलमदान के अन्दर का हाल तुम्हें भी मालूम न था ?

इन्दिरा—जी नहीं, अगर मुझे मालूम होता तो ये तीनों दुष्ट क्यों बचने पाते ? हाँ, मेरी माँ उस कलमदान को खोल चुकी थी और उसे उसके अन्दर का हाल मालूम था, मगर वह तो गिरफ्तार कर ली गई थी फिर उन भेदों को कौन खोलता ?

आनन्दसिंह—आखिर उस कलमदान के अन्दर का हाल तुम्हें कब मालूम हुआ ?

इन्दिरा—अभी थोड़े ही दिन हुए जब मैं कैदखाने में अपनी माँ के पास पहुँची तो उसने उस कलमदान का भेद बताया था।

आनन्दसिंह—मगर फिर उस कलमदान का पता न लगा ?

इन्दिरा—जी नहीं, उसके बाद आज तक उस कलमदान का हाल मुझे मालूम न हुआ। मैं नहीं कह सकती कि उसे कौन ले गया या वह क्या हुआ। हाँ, इस समय राजा साहब की जुबानी सुनने में आया है कि वही कलमदान कृष्ण जिन्न ने राजा वीरेन्द्रसिंह के दरबार में पेश किया था।

गोपालसिंह—उस कलमदान का हाल मैं जानता हूँ। सच तो यह है कि सारा बखेड़ा उस कलमदान ही के सबब से हुआ। यदि वह कलमदान मुझे या इन्द्रदेव को उस समय मिल जाता तो लक्ष्मीदेवी की जगह मुन्दर मेरे घर न आती और मुन्दर तथा दारोगा की बदौलत मेरी गिनती मुर्दों में न होती और न भूतनाथ ही पर आज इतने जुर्म लगाये जाते। वास्तव में उस कलमदान को गदाधरसिंह ही ने उन दुष्टों की सभा में से लूट लिया था जो आज भूतनाथ के नाम से मशहूर है। इसमें कोई शक नहीं कि उसने इन्दिरा की जान बचाई। मगर कलमदान को छिपा दिया गया और उसका हाल किसी से न कहा। वड़े लोगों ने सच कहा है कि "विशेष लोभ आदमी को चौपट कर देता है।" वही हाल भूतनाथ का हुआ। पहले भूतनाथ बहुत नेक और ईमानदार था और आज कल भी वह अच्छी राह पर चल रहा है। मगर बीच में थोड़े दिनों तक उसके ईमान में फर्क पड़ गया था, जिसके लिए आज वह अफसोस कर रहा है। आप इन्दिरा का और हाल सुन लीजिए, फिर कलमदान का भेद मैं आपसे बयान करूँगा।

इन्द्रजीतसिंह—जो आज्ञा। (इन्दिरा से) अच्छा, तुम अपना हाल कहो कि बलभद्रसिंह के यहाँ जाने के बाद फिर तुम पर क्या बीती ?

इन्दिरा—मैं बहुत दिनों तक उनके यहाँ आराम से अपने को छिपाए हुए बैठी रही और मेरे पिता कभी-कभी वहाँ जाकर मुझसे मिल आया करते थे। यह मैं नहीं कह सकती कि पिता ने मुझे बलभद्रसिंह के यहाँ क्यों छोड़ रखा था। जब बहुत दिनों के बाद लक्ष्मीदेवी की शादी का दिन आया और बलभद्रसिंहजी लक्ष्मीदेवी को लेकर यहाँ आये तो मैं भी उनके साथ आई। (गोपालसिंह की तरफ इशारा करके) आपने जब मेरे आने की खबर सुनी तो मुझे अपने यहाँ बुलवा भेजा। अस्तु मैं लक्ष्मीदेवी को जो दूसरी जगह टिकी हुई थी, छोड़ कर राजमहल में चली आई। राजमहल में चले आना ही मेरे लिए काल हो गया क्योंकि दारोगा ने मुझे देख लिया और अपने पिता तथा राजा साहब की तरह मैं भी दारोगा की तरफ से बेफिक्र थी। इस शादी में मेरे पिता मौजूद न थे। मुझे इस बात का ताज्जुब हुआ। मगर जब राजा साहब से मैंने पूछा तो मालूम हुआ कि वे बीमार हैं, इसीलिए नहीं आये। जिस दिन मैं राजमहल में आई उसी दिन रात को लक्ष्मीदेवी की शादी थी। शादी हो जाने पर सवेरे जब मैंने लक्ष्मीदेवी की सूरत देखी तो मेरा कलेजा धक से हो गया, क्योंकि लक्ष्मीदेवी के बदले मैंने किसी दूसरी औरत को घर में पाया। हाय उस समय मेरे दिल की जो हालत थी मैं बयान नहीं कर सकती। मैं घबराई हुई बाहर की तरफ दौड़ी। जिसमें राजा साहब को इस बात की खबर दूँ

और इनसे उसका सबब पूछूँ। राजा साहब जिस कमरे में थे, उसका रास्ता जनाने महल से मिला हुआ था, अतएव मैं भीतर-ही-भीतर उस कमरे में चली गई, मगर वहाँ राजा साहब के बदले दारोगा को बैठे हुए पाया। मेरी सूरत देखते ही एक दफे दारोगा के चेहरे का रंग उड़ गया मगर तुरन्त ही उसने अपने को सम्हाल कर मुझसे पूछा, "क्यों इन्दिरा, क्या हाल है ? तू इतने दिनों तक कहाँ थी ?" मुझे उस चाण्डाल की तरफ से कुछ भी शक न था। इसलिए मैं उसी से पूछ बैठी कि "लक्ष्मीदेवी के बदले में मैं किसी दूसरी औरत को देखती हूँ, इसका क्या सबब है ?" यह सुनते ही दारोगा घबरा उठा और बोला, "नहीं-नहीं, तूने वास्तव में किसी दूसरे को देखा होगा, लक्ष्मीदेवी तो उस बाग वाले कमरे में है। चल, मैं तुझे उसके पास पहुँचा आऊँ !" मैंने खुश होकर कहा कि 'चलो पहुँचा दो !' दारोगा झट उठ खड़ा हुआ और मुझे साथ लेकर भीतर ही भीतर बाग वाले कमरे की तरफ चला। वह रास्ता बिल्कुल एकान्त था, थोड़ी ही दूर जाकर दारोगा ने एक कपड़ा मेरे मुँह पर डाल दिया। ओह, उसमें किसी प्रकार की महक आ रही थी, जिसके सबब दो-तीन दफे से ज्यादा मैं साँस नहीं ले सकी और बेहोश हो गई। फिर मुझे कुछ भी खबर न रही कि दुनिया के परदे पर क्या हुआ या क्या हो रहा है।

गोपालसिंह—इन्दिरा की कथा के सम्बन्ध में गदाधरसिंह (भूतनाथ) का हाल छूटा जाता है। क्योंकि इन्दिरा उस विषय में कुछ भी नहीं जानती, इसलिए बयान नहीं कर सकती। मगर बिना उसका हाल जाने किस्से का सिलसिला ठीक न होगा। इसलिए मैं स्वयं गदाधरसिंह का हाल बीच ही में बयान कर देना उचित समझता हूँ।

इन्द्रजीतसिंह—हाँ-हाँ, जरूर कहिये। कलमदान का हाल जाने बिना आनन्द नहीं मिलता।

गोपालसिंह—उस गुप्त सभा में यकायक पहुँच कर कलमदान को लूटने वाला वही गदाधरसिंह था। उसने कलमदान को खोल डाला और उसके अन्दर जो कुछ कागजात थे, उन्हें अच्छी तरह पढ़ा। उसमें एक तो वसीयतनामा था जो दामोदरसिंह ने इन्दिरा के नाम लिखा था और उसमें अपनी कुल जायदाद का मालिक इन्दिरा को ही बनाया था। इसके अतिरिक्त और सब कागज उसी गुप्त कमेटी के और सब सभासदों के नाम लिखे हुए थे, साथ ही इसके एक कागज दामोदरसिंह ने अपनी तरफ से उस कमेटी के विषय में लिख कर रख दिया था। जिसके पढ़ने से मालूम हुआ कि दामोदरसिंह उस सभा के मंत्री थे, दामोदरसिंह के खयाल से वह वह सभा अच्छे कामों के लिए स्थापित हुई थी और उन आदमियों को सजा देना उसका काम था जिन्हें मेरे पिता दोष साबित होने पर भी प्राण-दण्ड न देकर केवल अपने राज्य से निकाल दिया करते थे और ऐसा करने से रिआया में नाराजी फैलती जाती थी। कुछ दिनों के बाद उस सभा में बेईमानी शुरू हो गई और उसके सभासद लोग उसके जरिए से रुपया पैदा करने लगे, तभी दामोदरसिंह को भी उस सभा से घृणा हो गई। परन्तु नियमानुसार वह उस सभा को छोड़ नहीं सकते थे और छोड़ देने पर उसी सभा द्वारा प्राण जाने का भय था। एक दिन दारोगा ने सभा में प्रस्ताव किया कि बड़े महाराज को मार डालना चाहिए। इस प्रस्ताव का दामोदरसिंह ने अच्छी तरह खण्डन किया। मगर दारोगा की

बात सबसे भारी समझी जाती थी। इसलिए दामोदरसिंह की किसी ने भी न सुनी और बड़े महाराज को मारना निश्चय हो गया। ऐसा करने में दारोगा और रघुबरसिंह का फायदा था क्योंकि वे दोनों आदमी लक्ष्मीदेवी के बदले में हेलासिंह की लड़की मुन्दर के साथ मेरी शादी करना चाहते थे और बड़े महाराज के रहते यह बात बिल्कुल असम्भव थी। आखिर दामोदरसिंह ने अपनी जान का कुछ खयाल न किया और सभा-सम्बन्धी मुख्य कागज और सभा के सभासदों (मेम्बरों) का नाम तथा अपना वसीयतनामा लिख कर कलमदान में बन्द किया और कलमदान अपनी लड़की के हवाले कर दिया जैसा कि आप इन्दिरा की जुबानी सुन चुके हैं। जब गदाधरसिंह को सभा का पूरा हाल, जितने आदमियों को सभा मार चुकी थी, उनके नाम और सभा के मेम्बरों के नाम मालूम हो गये, तब उसे लालच ने घेरा और उसने सभा के सभासदों से रुपये वसूल करने का इरादा किया। कलमदान में जितने कागज थे, उसने सभी की नकल ले ली और असल कागज तथा कलमदान कहीं छिपा कर रख आया। इसके बाद गदाधरसिंह दारोगा के पास गया और उससे एकान्त में मुलाकात करके बोला कि "तुम्हारी गुप्त सभा का हाल अब खुलना चाहता है और तुम लोग जहन्नुम में पहुँचना चाहते हो। वह दामोदरसिंह वाला कलमदान तुम्हारी सभा से लूट ले जाने वाला मैं ही हूँ, और मैंने उस कलमदान के अन्दर का बिल्कुल हाल जान लिया। अब वह कलमदान मैं तुम्हारे राजा साहब के हाथ में देने के लिए तैयार हूँ। अगर तुम्हें विश्वास न हो तो इन कागजों को देखो जो मैं अपने हाथ से नकल करके तुम्हें दिखाने के लिए ले आया हूँ।"

इतना कहकर गदाधरसिंह ने वे कागज दारोगा के सामने फेंक दिये। दारोगा के तो होश उड़ गये और मौत भयानक रूप से उसकी आँखों के सामने नाचने लगी। उसने चाहा कि किसी तरह गदाधरसिंह को खपा (मार) डाले, मगर यह बात असम्भव थी। क्योंकि गदाधरसिंह बहुत ही काइयाँ और हर तरह से होशियार तथा चौकन्ना था, अतएव सिवाय उसे राजी करने के दारोगा को और कोई बात न सूझी। आखिर बीस हजार अशर्फी चार रोज के अन्दर दे देने के वादे पर दारोगा ने अपनी जान बचाई और कलमदान भूतनाथ से माँगा, भूतनाथ ने बीस हजार अशर्फी लेकर दारोगा की जान छोड़ देने का वादा किया और कलमदान देना भी स्वीकार किया, अतः दारोगा ने उतने ही को गनीमत समझा और चार दिन के बाद बीस हजार अशर्फी गदाधरसिंह को अदा करके आप पूरा कंगाल बन बैठा। इसके बाद गदाधरसिंह ने और मेम्बरों से भी कुछ वसूल किया और कलमदान दारोगा को दे दिया, मगर दारोगा से इस बात का इकरारनामा लिखा लिया कि वह किसी ऐसे काम में शरीक न होगा और न खुद ऐसा काम करेगा जिसमें इन्द्रदेव, सरयू, इन्दिरा और मुझ(गोपालसिंह)को किसी तरह का नुकसान पहुँचे। इन सब कामों से छुट्टी पाकर गदाधरसिंह दारोगा से अपने घर के लिए विदा हुआ, मगर वास्तव में वह फिर भी घर न गया और भेष बदल कर इसलिए जमानिया में घूमने लगा कि रघुबरसिंह के भेदों का पता लगाये जो बलभद्रसिंह के साथ विश्वासघात करने वाला था। वह फकीरी सूरत में रोज रघुबरसिंह के यहाँ आकर नौकरों और सिपाहियों में बैठने और हेलमेल बढ़ाने लगा। थोड़े ही दिनों में उसे मालूम हो गया कि रघुबरसिंह

अभी तक हेलासिंह से पत्र-व्यवहार करता है और पत्र ले जाने और ले आने का काम केवल बेनीसिंह करता है जो रघुबरसिंह का मातबर सिपाही है। जब एक दफे बेनीसिंह हेलासिंह के यहाँ गया तो गदाधरसिंह ने उसका पीछा किया और मौका पाकर उसे गिरफ्तार करना चाहा, लेकिन बेनीसिंह इस बात को समझ गया और दोनों में लड़ाई हो गई। गदाधरसिंह के हाथ से बेनीसिंह मारा गया और गदाधरसिंह, बेनीसिंह बनकर रघुबरसिंह के यहाँ रहने तथा हेलासिंह के यहाँ पत्र लेकर जाने और जवाब ले आने लगा। इस हीले से तथा कागजों की चोरी करने से थोड़े ही दिनों में रघुबरसिंह का सब भेद उसे मालूम हो गया और तब उसने अपने को रघुबरसिंह पर प्रकट किया, लाचार हो रघुबरसिंह ने भी उसे बहुत-सा रुपया देकर अपनी जान बचाई, यह किस्सा बहुत बड़ा है और इसका पूरा-पूरा हाल मुझे भी मालूम नहीं है, जब भूतनाथ अपना किस्सा आप बयान करेगा, तब पूरा हाल मालूम होगा, फिर भी मतलब यह कि उस कलमदान की बदौलत भूतनाथ ने रुपया भी बहुत पैदा किया और साथ ही अपने दुश्मन भी बहुत बनाये जिसका नतीजा वह अब भोग रहा है और कई नेक काम करने पर भी उसकी जान को अभी तक छुट्टी नहीं मिलती। केवल इतना ही नहीं, जब भूतनाथ असली बलभद्रसिंह का पता लगावेगा, तब और भी कई विचित्र बातों का पता लगेगा, मैंने तो सिर्फ इन्दिरा के किस्से का सिलसिला बैठाने के लिए बीच ही में इतना बयान कर दिया है।

इन्द्रजीतसिंह—यह सब हाल आपको कब और कैसे मालूम हुआ?

गोपालसिंह—जब आपने मुझे कैद से छुड़ाया उसके बाद हाल ही में ये सब बातें मुझे मालूम हुई हैं, और जिस तरह मालूम हुईं, सो अभी कहने का मौका नहीं। अब आप इन्दिरा का किस्सा सुनिये, फिर जो कुछ शंका रहेगी, उसके मिटाने का उद्योग किया जायगा।

इन्दिरा—जो आज्ञा! दारोगा ने फिर मुझे बेहोश कर दिया और जब मैं होश में आई तो अपने को एक लम्बे-चौड़े कमरे में पाया! मेरे हाथ-पैर खुले हुए थे और वह कमरा भी बहुत साफ और हवादार था। उसके दो तरफ की लकड़ी की दीवार थी और एक तरफ की ईंट और चूने से बनी हुई थी। एक तरफ की दीवार में दो दरवाजे थे और दूसरी तरफ की पक्की दीवार में छोटी-छोटी तीन खिड़कियाँ बनी हुई थीं जिनमें से हवा बखूबी आ रही थी। मगर वे खिड़कियाँ इतनी ऊँची थीं कि उन तक मेरा हाथ नहीं जा सकता था। बाकी दोनों तरफ की दीवारों में, जो लकड़ी की थीं, तरह-तरह की सुन्दर और बड़ी तस्वीरें बनी हुई थीं और छत में दो रोशनदान थे जिनमें से सूर्य की चमक आ रही थी तथा उस कमरे में अच्छी तरह उजाला हो रहा था। एक तरफ की पक्की दीवार में दो दरवाजे थे, उनमें से एक दरवाजा खुला हुआ और दूसरा बन्द था। मैं जब होश में आई तो अपना सिर किसी की गोद में पाया। मैं घबराकर उठ बैठी और उस औरत की तरफ देखने लगी जिसकी गोद में मेरा सिर था। वह मेरे ननिहाल की वही दाई थी जिसने मुझे गोद में खिलाया था और जो मुझे बहुत प्यार करती थी। यद्यपि मैं कैद में थी और माँ-बाप की जुदाई में अधमरी हो रही थी, फिर भी अपनी दाई को देखते ही

थोड़ी देर के लिए सब दुःख भूल गई और ताज्जुब के साथ मैंने उस दाई से पूछा, "अन्ना, तू यहाँ कैसे आई ?" (मैं अपनी दाई को 'अन्ना' कह के पुकारा करती थी।)

अन्ना—बेटी, मैं यह तो नहीं जानती कि तू यहाँ कब से है, मगर मुझे आये अभी दो घण्टे से ज्यादा नहीं हुए हैं। मुझे कम्बख्त दारोगा ने धोखा देकर गिरफ्तार कर लिया और बेहोश करके यहाँ पहुँचा दिया, मगर इस जगह तुझे देखकर मैं अपना दुःख बिल्कुल भूल गई। तू अपना हाल तो बता कि यहाँ कैसे आई ?

मैं—मुझे भी कम्बखत दारोगा ने ही बेहोश करके यहाँ तक पहुँचाया है। राजा गोपालसिंहजी की शादी हो गयी। मगर जब मैंने अपनी प्यारी लक्ष्मीदेवी के बदले में किसी दूसरी औरत को वहाँ देखा तो घबराकर इसका सबब पूछने के लिए राजा साहब के पास गई, मगर उनके कमरे में केवल दारोगा बैठा हुआ था, मैं उसी से पूछ बैठी। बस यह सुनते ही वह मेरा दुश्मन हो गया, धोखा देकर दूसरे मकान की तरफ ले चला और रास्ते में एक कपड़ा मेरे मुँह पर डालकर बेहोश कर दिया। उसके बाद की मुझे कुछ भी खबर नहीं है। दारोगा ने तुझे क्या कहकर कैद किया ?

अन्ना—मैं एक काम के लिए बाजार में गई थी। रास्ते में दारोगा का नौकर मिला। उसने कहा कि इन्दिरा दारोगा साहब के घर में आई है, उसने मुझे तुझको बुलाने के लिए भेजा है और बहुत ताकीद की है कि खड़े-खड़े सुनती जाओ। तो उसकी बात सच समझ उसी वक्त दारोगा के घर चली गई, मगर उस हरामजादे ने मेरे साथ भी बेईमानी की, बेहोशी की दवा मुझे जबर्दस्ती सुँघाई। मैं नहीं कह सकती कि एक घण्टे तक बेहोश रही या एक दिन तक, पर जब मैं यहाँ पहुँची तब मैं होश में आई, उस समय केवल दारोगा नंगी तलवार लिए सामने खड़ा था। उसने मुझसे कहा, "देख, तू वास्तव में इन्दिरा के पास पहुँचाई गई है। लड़की कैदखाने में रहने योग्य नहीं है, इसलिए तू भी इसके साथ कैद की जाती है और तुझे हुक्म दिया जाता है कि हर तरह इसकी खातिर और तसल्ली करना और जिस तरह हो, इसे खिलाना-पिलाना। देख, उस कोने में खाने-पीने का सब सामान रखा है।"

मैं—मेरी नानी का क्या हाल है ? अफ़सोस, मैं तो उससे मिल भी न सकी, अब इस आफत में फँस गई !

अन्ना—तेरी नानी का मैं क्या हाल बताऊँ, वह तो नाममात्र को जीती है, अब उसका बचना कठिन है।

अन्ना की जुबानी अपनी नानी का हाल सुन के मैं बहुत रोई-कलपी। अन्ना ने मुझे बहुत समझाया और धीरज देकर कहा कि ईश्वर का ध्यान कर, उसकी कृपा से हम लोग जरूर इस कैद से छूट जायेंगे। मालूम होता है कि दारोगा तेरे जरिये से कोई काम निकालना चाहता है, अगर ऐसा न हो तो वह तुझे मार डालता और तेरी हिफाजत के लिए मुझे यहाँ न लाता, अब जहाँ तक हो उसका काम पूरा न होने देना चाहिए। खैर, जब वह यहाँ आकर तुझसे कुछ कहे-सुने तो तू मुझ पर टाल दिया करना। फिर जो-कुछ होगा मैं समझ लूंगी। अब तू कुछ खा-पी ले। फिर जो कुछ होगा देखा जायगा। अन्ना के समझाने से मैं खाना खाने के लिए तैयार हो गई। खाने-पीने का सामान सब उस घर

में मौजूद था, मैंने भी खाया-पीया, इसके बाद अन्ना के पूछने पर मैंने अपना सब हाल शुरू से आखिर तक उसे कह सुनाया, इतने में शाम हो गई। मैं कह चुकी हूँ कि उस कमरे की छत में रोशनदान बना हुआ था जिसमें से रोशनी बखूबी आ रही थी, इसी रोशनदान के सबब से हम लोगों को मालूम हुआ कि संध्या हो गयी। थोड़ी ही देर बाद दरवाजा खोलकर दो आदमी उस कमरे में आये, एक ने चिराग जला दिया और दूसरे ने खाने-पीने का ताजा सामान रख दिया और बासी बचा हुआ उठाकर ले गया। उसके जाने के बाद फिर मुझसे और अन्ना से बातचीत होती रही और दो घण्टे के बाद मुझे नींद आ गई।

इन्द्रजीतसिंह—(गोपालसिंह से)इस जगह मुझे एक बात का सन्देह हो रहा है।

गोपालसिंह—वह क्या?

इन्द्रजीतसिंह—इन्दिरा, लक्ष्मीदेवी को पहचानती थी, इसलिए दारोगा ने उसे तो गिरफ्तार कर लिया, मगर इन्द्रदेव का उसने क्या बन्दोबस्त किया, क्योंकि लक्ष्मीदेवी को तो इन्द्रदेव भी पहचानते थे।

गोपालसिंह—इसका सबब शायद यह है कि ब्याह के समय इन्द्रदेव यहाँ मौजूद न थे और उसके बाद भी लक्ष्मीदेवी को देखने का उन्हें मौका न मिला। मालूम होता है कि दारोगा ने इन्द्रदेव से मिलने के बारे में नकली लक्ष्मीदेवी को कुछ समझा दिया था जिससे वर्षों तक मुन्दर ने इन्द्रदेव के सामने से अपने को बचाया और इन्द्रदेव ने भी इस बात की कुछ परवाह न की। अपनी स्त्री और लड़की के गम में इन्द्रदेव ऐसा डूबे कि वर्षों बीत जाने पर भी वह जल्दी घर से नहीं निकलते थे, इच्छा होने पर कभी-कभी मैं स्वयं उनसे मिलने के लिए जाया करता था। कई वर्ष बीत जाने पर जब मैं कैद हो गया और सभी ने मुझे मरा हुआ जाना, तब इन्द्रदेव के खोज करने पर लक्ष्मीदेवी का पता लगा और उसने लक्ष्मीदेवी को कैद से छुड़ाकर अपने पास रखा। इन्द्रदेव को भी मेरे मरने का निश्चय हो गया था, इसलिए मुन्दर के विषय में उन्होंने ज्यादा बखेड़ा उठाना व्यर्थ समझा और दुश्मनों से बदला लेने के लिए लक्ष्मीदेवी को तैयार किया। कैद से छूटने के बाद मैं खुद इन्द्रदेव से मिलने के लिए गुप्त रीति से गया था, तब उन्होंने लक्ष्मीदेवी का हाल मुझसे कहा था।

इन्द्रजीतसिंह—इन्द्रदेव ने लक्ष्मीदेवी को कैद से क्योंकर छुड़ाया था और उस विषय में क्या किया सो मालूम न हुआ।

राजा गोपालसिंह ने लक्ष्मीदेवी का कुल हाल जो हम ऊपर लिख आये हैं, बयान किया और इसके बाद फिर इन्दिरा ने अपना किस्सा कहना शुरू किया।

इन्दिरा—उसी दिन आधी रात के समय जब मैं सोई हुई थी और अन्ना भी मेरे बगल में लेटी हुई थी, यकायक इस तरह की आवाज आई जैसे किसी ने अपने सिर पर से कोई गठरी उतारकर फेंकी हो। उस आवाज ने मुझे तो न जगाया, मगर अन्ना झट उठ बैठी और इधर-उधर देखने लगी। मैं बयान कर चुकी हूँ कि इस कमरे में दो दरवाजे थे। उनमें से एक दरवाजा तो लोगों के आने-जाने के लिए था और वह बाहर से बन्द रहता, मगर दूसरा खुला हुआ था जिसके अन्दर मैं तो नहीं गई थी, मगर अन्ना हो

आई थी और कहती थी कि उसके अन्दर तीन कोठरियाँ हैं, एक पायखाना है और दो कोठरियाँ खाली पड़ी हैं। अन्ना को शक हुआ कि उसी कोठरी के अन्दर से आवाज आई है। उसने सोचा कि शायद दारोगा का कोई आदमी यहाँ आकर उस कोठरी में गया हो। थोड़ी देर तक तो वह उसके अन्दर से किसी के निकलने की राह देखती रही, मगर इसके बाद उठ खड़ी हुई। अन्ना थी तो औरत मगर उसका दिल बड़ा ही मजबूत था, वह मौत से भी जल्दी डरने वाली न थी। उसने हाथ में चिराग उठा लिया और उस कोठरी के अन्दर गई। पैर रखने के साथ ही उसकी निगाह एक गठरी पर पड़ी, मगर इधर-उधर देखा तो कोई आदमी नजर न आया। दूसरी कोठरी के अन्दर गई और तीसरी कोठरी में भी झाँक के देखा, मगर कोई आदमी नजर न आया, तब उसने चिराग एक किनारे रख दिया और उस गठरी को खोला। इतने ही में मेरी आँख खुल गई और घर में अँधेरा देखकर मुझे डर मालूम हुआ। मैंने हाथ-पैर फैलाकर अन्ना को उठाना चाहा, मगर वह तो वहाँ थी ही नहीं। मैं घबराकर उठ बैठी। यकायक उस कोठरी की तरफ मेरी निगाह गई और उसके भीतर चिराग की रोशनी दिखाई दी। मैं घबराकर जोर-जोर से 'अन्ना-अन्ना' पुकारने लगी। मेरी आवाज सुनते ही वह चिराग और गठरी लिए बाहर निकल आई और बोली "ले बेटी, मैं तुझे एक खुशखबरी सुनाती हूँ।"

अन्ना ने यह कहकर गठरी मेरे आगे रख दी कि 'देख, इसमें क्या है!' मैंने बड़े शौक से वह गठरी खोली, मगर उसमें अपनी प्यारी माँ के कपड़े देखकर मुझे रुलाई आ गई। ये वे ही कपड़े थे जो मेरी माँ पहनकर घर से निकली जब उन दोनों ऐयारों ने उसे गिरफ्तार कर लिया था और ये ही कपड़े पहने हुए कैदखाने में मेरे साथ जब दुश्मनों ने जबर्दस्ती उसे मुझसे जुदा किया था। उन कपड़ों पर खून के छींटे पड़े हुए थे और उन्हीं छींटों को देखकर मुझे रुलाई आ गई। अन्ना ने कहा, "तू रोती क्यों है, मैं कह जो चुकी कि तेरे लिए खुशखबरी लाई हूँ, इन कपड़ों को मत देख, बल्कि इनमें एक चिट्ठी तेरी माँ के हाथ की लिखी हुई है उसे देख!" मैंने उन कपड़ों को अच्छी तरह खोला और उनके अन्दर से वह चिट्ठी निकाली। मालूम होता है जब मैं 'अन्ना-अन्ना' कह के चिल्लाई तब वह जल्दी में उन सभी को लपेटकर बाहर निकल आई थी। खैर, जो हो, मगर वह चिट्ठी अन्ना पढ़ चुकी थी क्योंकि वह पढ़ी-लिखी थी। मैं बहुत कम पढ़-लिख सकती थी, केवल नाम लिखना भर जानती थी, मगर अपनी माँ के अक्षर अच्छी तरह पहचानती थी, क्योंकि वही मुझे पढ़ना-लिखना सिखाती थी। अतः चिट्ठी खोलकर मैंने अन्ना को पढ़ने को कहा और अन्ना ने पढ़ कर मुझे सुनाया। उसमें यह लिखा हुआ था—

"मेरी प्यारी बेटी इन्दिरा,

जितना मैं तुझे प्यार करती थी निःसन्देह तू भी मुझे उतना ही चाहती थी, मगर अफसोस, विधाता ने हम दोनों को जुदा कर दिया और मुझे तेरी भोली सूरत देखने के लिए तरसना पड़ा। परन्तु कोई चिन्ता नहीं, यद्यपि मेरी तरह तू भी दुःख भोग रही है मगर तू चाहेगी तो मैं कैद से छूट जाऊँगी और साथ ही इसके तू भी कैदखाने से बाहर

होकर मुझसे मिलेगी। अब मेरा और तेरा दोनों का कैद से छूटना तेरे ही हाथ है और छूटने की तरकीब केवल यही है कि दारोगा साहब जो कुछ तुझे कहें उसे बेखटके कर दे।

अगर ऐसा करने से इनकार करेगी तो मेरी और तेरी दोनों की जान मुफ्त ही में जायगी।

तेरी प्यारी मां—सरयू"

2

अब हम रोहतासगढ़ किले के तहखाने में दुश्मनों से घिरे हुए राजा वीरेन्द्रसिंह वगैरह का कुछ हाल लिखते हैं।

जिस समय राजा वीरेन्द्रसिंह और तेजसिंह इत्यादि ने तहखाने के ऊपरी हिस्से से आई हुई यह आवाज सुनी कि 'होशियार, होशियार, देखो यह चाण्डाल बेचारी किशोरी को पकड़े लिए जाता है' इत्यदि—तो सभी की तबीयत बहुत ही बेचैन हो गई। राजा वीरेन्द्रसिंह, तेजसिंह, इन्द्रदेव और देवीसिंह वगैरह घबरा कर चारों तरफ देखने और सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिए।

कमलिनी हाथ में तिलिस्मी खंजर लिए हुए कैदखाने वाले दरवाजे के बीच ही में खड़ी थी। उसने इन्द्रदेव से कहा—"मुझे भी उसी कोठरी के अन्दर पहुँचाइये, जिसमें किशोरी को रखा था, फिर मैं उसे छुड़ा लूँगी।"

इन्द्रदेव—बेशक उस कोठरी के अन्दर तुम्हारे जाने से किशोरी को मदद पहुँचेगी मगर किसी ऐयार को भी अपने साथ लेती जाओ।

देवीसिंह—मुझे साथ जाने के लिए कहिये।

इन्द्रदेव—(वीरेन्द्रसिंह से) आप देवीसिंहजी को साथ जाने की आज्ञा दीजिये।

वीरेन्द्रसिंह—(देवीसिंह से) जाइये।

तेजसिंह—नहीं, कमलिनी के साथ मैं खुद जाऊंगा, क्योंकि मेरे पास भी राजा गोपालसिंह का दिया हुआ तिलिस्मी खंजर है।

इन्द्रदेव—राजा गोपालसिंह ने आपको तिलिस्मी खंजर कब दिया?

तेजसिंह—जब कमलिनी की सहायता से मैंने उन्हें मायारानी की कैद से छुड़ाया था तब उन्होंने उसी तिलिस्मी बाग के चौथे दर्जे में से एक तिलिस्मी खंजर निकालकर मुझे दिया था जिसे मैं हिफाजत से रखता हूँ। कमलिनी के साथ देवीसिंह के जाने से कोई फायदा न होगा क्योंकि जब कमलिनी तिलिस्मी खंजर से काम लेगी तो उसकी चमक से और लोगों की तरह देवीसिंह की आँखें बन्द हो जायँगी···

इन्द्रदेव—(बात काट कर) ठीक है ठीक है, मैं समझ गया। अच्छा, तो आप ही जाइये, देर न कीजिये।

इतना कहकर इन्द्रदेव बड़ी फुर्ती से कैदखाने के अन्दर चला गया और उस कोठरी का दरवाजा जिसमें किशोरी, कामिनी, लक्ष्मीदेवी, लाड़िली और कमला को रख दिया था पुनः उसी ढंग से खोला जैसे पहले खोला था। दरवाजा खुलने के साथ ही तेजसिंह को साथ लिए हुए कमलिनी उस कोठरी के अन्दर घुस गई और वहाँ कामिनी, लक्ष्मीदेवी, लड़िली और कमला को मौजूद पाया मगर किशोरी का पता न था। कमलिनी ने उन औरतों को तुरत कोठरी के बाहर निकालकर राजा वीरेन्द्रसिंह के पास चले जाने के लिए कहा और आप दूसरे काम का उद्योग करने लगी। बाकी औरतों के बाहर होते ही इन्द्रदेव ने जंजीर छोड़ दी और कोठरी का दरवाजा बन्द हो गया। कमलिनी ने अपने तिलिस्मी खंजर से रोशनी करके चारों तरफ गौर से देखा। बगल वाली दीवार में एक छोटा-सा दरवाजा खुला हुआ दिखाई दिया जिसमें ऊपर के हिस्से में जाने के लिए सीढ़ियाँ थीं। दोनों उस दरवाजे के अन्दर चले गये और सीढ़ियाँ चढ़ कर छत के ऊपर जा पहुँचे; अब तेजसिंह को मालूम हुआ कि इसी जगह से उस गुप्त मनुष्य के बोलने की आवाज आ रही थी।

इस ऊपर वाले हिस्से की छत बहुत लम्बी-चौड़ी थी और वहाँ कई बड़े-बड़े दालान थे और उन दालानों में से कई तरफ निकल जाने के रास्ते भी थे। तेजसिंह और कमलिनी ने देखा कि वहाँ पर बहुत-सी लाशें पड़ी हुई हैं जिनमें से शायद दो ही चार में दम हो, और जमीन भी वहाँ की खून से तरबतर हो रही थी। अपने पैर को खून और लाशों से बचा कर किसी तरफ निकल जाना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव था, अतः कमलिनी ने इस बात का कुछ भी खयाल न किया और लाशों पर पैर रखती हुई बराबर चलती गई। और एक दालान में पहुँची जिसमें से दूसरी तरफ निकल जाने के लिए एक खुला हुआ दरवाजा था। दरवाजे के उस पार पैर रखते ही दोनों की निगाह कृष्ण जिन्न पर पड़ी जिसे दुश्मन चारों तरफ से घेरे हुए थे और वह तिलिस्मी तलवार से सभी को काट कर गिरा रहा था। यद्यपि वह तिलिस्मी फौलादी जाल की पोशाक पहने हुए था और इस सबब से उसके ऊपर दुश्मनों की तलवारें कुछ काम नहीं करती थीं तथापि ध्यान देने से मालूम होता था कि तलवार चलाते-चलाते उसका हाथ थक गया है और थोड़ी देर में हर्बा चलाने या लड़ने लायक न रहेगा। इतना होने पर भी दुश्मनों को उस पर फतह पाने की आशा न थी और मुकाबला करने से डरते थे। जिस समय कमलिनी और तेजसिंह तिलिस्मी खंजर चमकाते हुए उसके पास जा पहुँचे, उस समय दुश्मनों का जी बिल्कुल ही टूट गया और वे तलवारें जमीन पर फेंक-फेंककर 'शरण' 'शरणागत' इत्यादि पुकारने लगे।

अगर दुश्मनों को यहाँ से निकल जाने का रास्ता मालूम होता और वे लोग भाग कर अपनी जान बचा सकते तो कृष्ण जिन्न का मुकाबला कदापि न करते। लेकिन जब उन्होंने देखा कि हम लोग रास्ता न जानने के कारण भाग कर जा ही नहीं सकते तब लाचार होकर मरने-मारने के लिए तैयार हो गये थे, मगर कृष्ण जिन्न ने भी उन लोगों को अच्छी तरह यमलोक का रास्ता दिखाया क्योंकि उसके हाथ में तिलिस्मी तलवार थी। जब तेजसिंह और कमलिनी भी तिलिस्मी खंजर चमकाते हुए वहाँ पहुँच गये तब

तो दुश्मनों ने एकदम ही तलवार हाथ से फेंक दी और 'त्राहि-त्राहि', 'शरण-शरण' पुकारने लगे। उस समय कृष्ण जिन्न ने भी हाथ रोक लिया और तेजसिंह तथा कमलिनी की तरफ देखकर कहा—"बहुत अच्छा हुआ जो आप लोग आ गये !"

तेजसिंह—मालूम होता है कि आप ही ने दुश्मनों के आने से हम लोगों को सचेत किया।

कृष्ण जिन्न—हाँ, वह आवाज मेरी ही थी और मुझी से आप लोग बातचीत कर रहे थे।

तेजसिंह—तो क्या आप ही ने यह कहा था कि 'कोई शैतान बेचारी किशोरी को पकड़े लिए जाता है ?'

कृष्ण जिन्न—हाँ, यह मैंने ही कहा था, किशोरी को ले जाने वाला स्वयं उस का बाप शिवदत्त था और वह मेरे हाथ से मारा गया।

कृष्ण जिन्न और भी कुछ कहना चाहता था कि कोई आवाज उसके तथा कमलिनी और तेजसिंह के कानों में पड़ी। आवाज यह थी—"हरी, हरी, तुम लोग भागो और हमारे पीछे-पीछे चले आओ, धन्नूसिंह की मदद से हम लोग निकल जायेंगे।" इस आवाज को सुनकर वे लोग भी पीछे की तरफ भाग गये जिन्होंने कृष्ण जिन्न और तेजसिंह के आगे तलवारें फेंक दी थीं मगर कृष्ण जिन्न और तेजसिंह ने उन लोगों को रोकना या मारना उचित न जाना और चुपचाप खड़े रहकर भागने वालों का तमाशा देखते रहे। थोड़ी देर में ही उनके सामने की जमीन दुश्मनों से खाली हो गई और सामने से आती हुई मनोरमा दिखाई पड़ी। मनोरमा को देखते ही कमलिनी तिलिस्मी खंजर उठाकर उसकी तरफ झपटी और उस पर वार करना ही चाहती थी कि मनोरमा ने कुछ पीछे हटकर कहा, "हैं हैं श्यामा, जरा देख के, समझ के !"

मनोरमा की बात और श्यामा का शब्द सुनकर कमलिनी रुक गई और बड़े गौर से मनोरमा का मुँह देखने के बाद बोली, "तू कौन है ?"

मनोरमा—बीरूसिंह!

कमलिनी—निशान ?

मनोरमा—चन्द्रकला।

कमलिनी—तुम अकेले हो या और भी कोई है ?

बीरूसिंह—शिवदत्त के सिपाही धन्नूसिंह की सूरत बनाकर मेरे गुरु सरयूसिंह भी आये हैं। उन्होंने दुश्मनों को बाहर निकलने का रास्ता बताया है। इस तहखाने में जितने दरवाजे कल्याणसिंह ने बन्द किये थे वे सब भी गुरुजी ने खोल दिये क्योंकि उनके सामने ही कल्याणसिंह ने सब दरवाजे बन्द किये थे और उन्होंने उसकी तरकीब देख ली थी।

कृष्ण जिन्न—शाबाश ! (कमलिनी से) अच्छा इन लोगों का किस्सा दूसरे समय सुनना, इस समय तुम किशोरी को लेकर राजा वीरेन्द्रसिंह के पास चली जाओ जिसे हमने शिवदत्त के पंजे से छुड़ाया है और जो (हाथ का इशारा करके) उस तरफ जमीन पर बदहवास पड़ी है। अब इस काम में देर मत करो। मैं यहाँ से पुकार कर कह देता हूँ,

जिस राह से तुम आई हो उस कोठरी का दरवाजा इन्द्रदेव खोल देंगे, तेजसिंह और बीरूसिंह को मैं थोड़ी देर के लिए अपने साथ लिए जाता हूँ, ये लोग किले में तुम लोगों के पास आ जायेंगे।

कमलिनी—क्या आप राजा वीरेन्द्रसिंह के पास नहीं चलेंगे ?

कृष्ण जिन्न—नहीं।

कमलिनी—क्यों ?

कृष्ण जिन्न—हमारी खुशी। राजा वीरेन्द्रसिंह से कह दीजिये कि सभी को लिए हुए इसी समय तहखाने के बाहर चले जायँ।

इतना कहकर कृष्ण जिन्न उस जगह कमलिनी को ले गया जहाँ बेचारी किशोरी बदहवास पड़ी हुई थी। दुश्मन लोग सामने से बिल्कुल भाग गये थे, सिवाय जख्मियों और मुर्दों के वहाँ पर कोई भी मुकाबला करने वाला न था और दुश्मनों के हाथों से गिरी हुई मशालें इधर-उधर पड़ी हुई कुछ बल रही थीं और कुछ ठंडी हो गई थीं। बेचारी किशोरी बिल्कुल बदहवास पड़ी हुई थी मगर तेजसिंह की तरकीब से वह बहुत जल्द होश में आ गई और कमलिनी उसे अपने साथ लेकर राजा वीरेन्द्रसिंह के पास चली गई। कृष्ण जिन्न ने उसी सूराख में से इन्द्रदेव को दरवाजा खोलने के लिए आवाज दे दी और तेजसिंह तथा बीरूसिंह को लिए दूसरी तरफ का रास्ता लिया।

किशोरी को साथ लिए हुए थोड़ी ही देर में कमलिनी राजा वीरेन्द्रसिंह के पास जा पहुँची और जो कुछ उसने देखा-सुना था, सब कहा। वहाँ से भी बचे-बचाये दुश्मन लोग भाग गये थे और मुकाबला करने वाला कोई मौजूद नहीं था।

इन्द्रदेव—(राजा वीरेन्द्रसिंह से) कृष्ण जिन्न ने जो कुछ कहला भेजा है उसे मैं पसन्द करता हूँ, सभी को लेकर इसी समय तहखाने के बाहर हो जाना चाहिए।

वीरेन्द्रसिंह—मेरी भी यही राय है, ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए कि आज की ग्रहदशा सहज में कट गई। निःसन्देह आपके दोनों ऐयारों ने दुश्मनों के साथ यहाँ आकर कोई अनूठा काम किया होगा और कृष्ण जिन्न ने मानो पूरी सहायता ही की और किशोरी की जान बचा ली।

इन्द्रदेव—निःसन्देह ईश्वर ने बड़ी कृपा की मगर इस बात का अफसोस है कि कृष्ण जिन्न यहाँ न आकर ऊपर-ही-ऊपर चले गये और मैं उन्हें देख न सका तथा इस तहखाने की सैर भी इस समय आपको न करा सका।

वीरेन्द्रसिंह—कोई चिन्ता नहीं, फिर कभी देखा जायेगा, इस समय तो यहाँ से चल ही देना चाहिए।

राजा वीरेन्द्रसिंह की इच्छानुसार कैदियों को भी साथ लिए हुए सब कोई तहखाने के बाहर हुए। कैदियों को कैदखाने भेजा, औरतें महल में भेज दी गईं और उनकी हिफाजत का विशेष प्रबन्ध किया गया, क्योंकि अब राजा वीरेन्द्रसिंह को इस बात का विश्वास न रहा कि रोहतासगढ़ किले के अन्दर और महल में दुश्मनों के आने का खटका नहीं है क्योंकि तहखाने के रास्तों का हाल दिन-ब-दिन खुलता ही जाता था।

इन्द्रदेव को राजा वीरेन्द्रसिंह ने अपने कमरे के बगल में डेरा दिया और बड़ी

इज्जत के साथ रक्खा। आज की बची हुई रात सोच-विचार और तरद्दुद ही में बीती। शेरअलीखाँ भूतनाथ और कल्याणसिंह का हाल भी सभी को मालूम हुआ और यह भी मालूम हुआ कि कल्याणसिंह और उसके कई आदमी कैदखाने में बन्द हैं।

दूसरे दिन सवेरे जब राजा वीरेन्द्रसिंह ने कैदखाने में से कल्याणसिंह को अपने पास बुलाया तो मालूम हुआ कि रात ही को होश में आने के बाद कल्याणसिंह ने जमीन पर सिर पटक कर अपनी जान दे दी। वीरेन्द्रसिंह ने उसकी अवस्था पर शोक प्रकट किया और उसकी लाश को इज्जत के साथ जला कर हड्डियाँ गंगाजी में डलवा देने का हुक्म दिया और यही हुक्म शिवदत्त की लाश के लिए भी दिया।

पहर दिन चढ़ने के बाद जब राजा वीरेन्द्रसिंह स्नान और संध्या-पूजा से छुट्टी पा कुछ अन्न-जल ले निश्चिन्त हुए तो महल में अपने आने की इत्तिला करवाई और उसके बाद इन्द्रदेव को साथ लिए हुए महल में जाकर एक सजे हुए सुन्दर कमरे में बैठे। उनकी इच्छानुसार किशोरी, कामिनी, कमला, कमलिनी, लाड़िली और लक्ष्मीदेवी अदब के साथ सामने बैठ गईं। किशोरी का चेहरा उसके बाप के गम में उदास हो रहा था, राजा वीरेन्द्रसिंह ने उसे समझाया और दिलासा दिया। इसी समय तारासिंह ने राजा साहब के पास पहुँच कर तेजसिंह, भूतनाथ, सरयूसिंह और बीरूसिंह के आने की इत्तिला की और मर्जी होने पर ये लोग राजा वीरेन्द्रसिंह के सामने हाजिर हुए तथा सलाम करने के बाद हुक्म पाकर जमीन पर बैठ गये। इन लोगों के आने का सभी को इन्तजार था, शिवदत्त और कल्याणसिंह की कार्रवाई तथा उनके काम में विघ्न पड़ने का हाल सभी कोई सुनना चाहते थे।

वीरेन्द्रसिंह—(भूतनाथ से) मैंने सुना था कि शेरअलीखाँ को तुम अपने साथ ले गए थे?

भूतनाथ—जी हाँ, शेरअलीखाँ को मैं अपने साथ ले गया था और साथ लेता भी आया, तेजसिंह की आज्ञा से वे अपने डेरे पर चले गए जहाँ रहते थे।

वीरेन्द्रसिंह—(तेजसिंह से)कृष्ण जिन्न तुमको अपने साथ क्यों ले गए थे?

तेजसिंह—कुछ काम था, जो मैं आपसे किसी दूसरे समय कहूँगा। आप पहले सरयूसिंह और भूतनाथ का हाल सुन लीजिये।

वीरेन्द्रसिंह—अच्छी बात है, आज के मामले में निःसन्देह सरयूसिंह ने बड़ी मदद पहुँचाई और भूतनाथ की होशियारी ने भी दुश्मनों का बहुत-कुछ नुकसान किया।

तेजसिंह—जिस तरफ से दुश्मन लोग इस तहखाने के अन्दर आये थे, भूतनाथ और शेरअलीखाँ उसी मुहाने पर जाकर बैठ गए और भाग कर जाते हुए दुश्मनों को खूब ही मारा, यहाँ तक कि एक भी जीता बचकर न जा सका।

इन्द्रदेव—(सरयूसिंह से) अच्छा, तुम अपना हाल कह जाओ।

इन्द्रदेव की आज्ञा पाकर सरयूसिंह ने अपना और भूतनाथ का हाल बयान किया। मनोरमा और धन्नूसिंह का हाल सुनकर सब कोई हँसने लगे, इसके बाद भूतनाथ का मनोरमा को अपने लड़के नानक के साथ घर भेजकर शेरअलीखाँ के पास आना, कल्याणसिंह और उसके आदमियों का मुकाबला करना, फिर शेरअलीखाँ को अपने साथ

लेकर सुरंग के मुहाने पर जाकर बैठना और दुश्मनों का सत्यानाश करना इत्यादि बयान किया। इसके बाद तेजसिंह ने एक चिट्ठी राजा वीरेन्द्रसिंह के हाथ में दी और कहा, "कृष्ण जिन्न ने यह चिट्ठी आपके लिए दी है।"

राजा वीरेन्द्रसिंह ने यह चिट्ठी ले ली और मन में पढ़ जाने के बाद इन्द्रदेव के हाथ में देकर कहा—"आप इसे जोर से पढ़ जाइये, जिसमें सब कोई सुन लें!"

इन्द्रदेव ने चिट्ठी पढ़कर सभी को सुनाई। उसका मतलब यह था—

"इत्तिफाक से आज इस तहखाने में पहुँच गया और किशोरी की जान बच गई। सरयूसिंह और भूतनाथ ने निःसन्देह बड़ी मदद की, सच तो यह है कि आज इन्हीं के बदौलत दुश्मनों ने नीचा देखा, मगर भूतनाथ ने एक काम बड़ी बेवकूफी का किया, अर्थात् मनोरमा को नानक के हाथ में दे दिया और उसे घर ले जाकर असली बलभद्रसिंह का पता लगाने के लिए कहा। यह भूतनाथ की भूल है कि वह नानक को किसी काम के लायक समझता है यद्यपि नानक के हाथ से आज तक कोई काम ऐसा न निकला जिसकी तारीफ की जाये, वह निरा बेवकूफ और गदहा है कोई नाजुक काम उसके हाथ में देना भी भारी भूल है। मनोरमा को उसके हाथ में देकर भूतनाथ ने बुरा किया। नानक कमीने को मालिक के काम का तो कुछ खयाल न रहा और मनोरमा के साथ शादी की धुन सवार हो गई, जिसका नतीजा यह निकला कि मनोरमा ने नानक को खूब जूतियाँ लगाईं और तिलिस्मी खंजर भी ले लिया, मैं बहुत खुश होता यदि मनोरमा नानक का कान-नाक भी काट लेती। आपको और आपके ऐयारों को होशियार करता हूँ और कहे देता हूँ कि औरत के गुलाम नानक बेईमान पर कोई भी कभी भरोसा न करे। आप जरूर अपने एक ऐयार को नानक के घर तहकीकात करने के लिए भेजें, तब आपको नानक और नानक के घर की हालत मालूम होगी। अतः अब आपका रोहतासगढ़ में रहना ठीक नहीं है, आप कैदियों और किशोरी, कामिनी, कमलिनी और लक्ष्मीदेवी इत्यादि सभी को लेकर चुनार चले जायें। मैं यह बात इस खयाल से नहीं कहता कि यहाँ आपको दुश्मनों का डर है, नहीं-नहीं, अव्वल तो अब आपका कोई ऐसा दुश्मन ही नहीं रहा, जो रोहतासगढ़ तहखाने का रत्ती-बराबर भी हाल जानता हो, दूसरे, इस तहखाने के कुछ दरवाजे (दीवानखाने वाले एक सदर दरवाजे को छोड़कर) जो गिनती में ग्यारह थे, मैंने अच्छी तरह बन्द कर दिये और उनका हाल तेजसिंह को बता दिया है। मैं समझता हूँ, इनसे ज्यादा रास्ते तहखाने में आने-जाने के लिए नहीं हैं, इतने रास्तों का हाल यहाँ का राजा दिग्विजयसिंह भी न जानता होगा, हाँ कमलिनी जरूर जानती होगी, क्योंकि वह 'रिक्तगन्थ' पढ़ चुकी है। यदि आप तहखाने की सैर किया चाहते हैं, तो इस इरादे को अभी रोक दीजिये, कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह के आने पर यह काम कीजियेगा, क्योंकि यहाँ का सबसे ज्यादा हाल उन्हीं दोनों भाइयों को मालूम होगा, हाँ बलभद्रसिंह का पता लगाने का उद्योग करना चाहिए और यहाँ के तहखाने की भी अच्छी तरह सफाई हो जानी चाहिए, जिसमें एक भी मुर्दा इसके अन्दर रह न जाये। यदि इन्द्रदेव चाहें तो नकली बलभद्रसिंह को आप इन्द्रदेव के हवाले कर दीजियेगा और असली बलभद्रसिंह तथा इन्दिरा का पता लगाने का बोझ इन्द्रदेव ही के ऊपर डालियेगा। भूतनाथ को भी

चाहिए कि इन्द्रदेव के साथ रहकर अपनी खैरख्वाही दिखाये और पुरानी कालिख अपने चेहरे से अच्छी तरह धो डाले नहीं तो उसके हक में अच्छा न होगा, और आप अपने एक ऐयार को हरामखोर नानक की तरफ रवाना कीजिए। मैं आपका ध्यान पुनः मनोरमा की तरफ दिलाता हूँ और कहता हूँ कि तिलिस्मी खंजर का उसके हाथ लग जाना बहुत ही बुरा हुआ। मनोरमा साधारण औरत नहीं है, उसकी तारीफ आप सुन ही चुके होंगे, तिलिस्मी खंजर को पाकर अब वह जो न कर डाले, वही आश्चर्य। उसके कब्जे से खंजर निकालने का शीघ्र उद्योग कीजिये और इस कामको सबसे ज्यादा जरूरी समझिये। इसके अतिरिक्त तेजसिंह की जबानी जो कुछ मैंने कहला भेजा है उस पर भी ध्यान दीजिये।"

इस चिट्ठी को सुनकर सभी को ताज्जुब हुआ। राजा वीरेन्द्रसिंह तो चुप ही रहे, सिर्फ इन्द्रदेव के हाथ से चिट्ठी लेकर तेजसिंह को दे दी और बोले, "सब काम इसी के मुताबिक होना चाहिए।" इसके बाद एक-एक के चेहरे को गौर से देखने लगे। भूतनाथ का चेहरा मारे क्रोध के लाल हो रहा था, नानक की अवस्था और नालायकी पर उसे बड़ा ही रंज हुआ था। लक्ष्मीदेवी के चेहरे पर भी हद से ज्यादा उदासी छाई हुई थी, बाप की फिक्र के साथ-ही-साथ उसे इस बात का बड़ा रंज और ताज्जुब था कि राजा गोपालसिंह ने सब हाल सुनकर भी उसकी कुछ खबर न ली, न तो मिलने के लिए आये और न कोई चिट्ठी ही भेजी। वह हजार सोचती और गौर करती थी, मगर इसका सबब कुछ भी उसके ध्यान में न आता था और न उसका दिल इसी बात को कबूल करता था कि राजा गोपालसिंह उसे इसी अवस्था में छोड़ देंगे। ज्यादा ताज्जुब तो उसे इस बात का था कि राजा गोपालसिंह ने मायारानी के बारे में भी कोई हुक्म नहीं लगाया जिसकी बदौलत वह हद से ज्यादा तकलीफ उठा चुके थे। अब इस खयाल ने उसे और सताना शुरू किया कि हम लोगों को चुनार जाना होगा, जहाँ गोपालसिंह का पहुँचना और भी कठिन है, इत्यादि तरह-तरह की बात वह सोच रही थी और न रुकने वाले आँसुओं को रोकने का जी-जान से उद्योग कर रही थी। कमलिनी का चेहरा भी उदास था, राजा गोपालसिंह के विषय में वह भी तरह-तरह की बातें सोच रही थी और उनसे तथा नानक से स्वयं मिलना चाहती थी, मगर राजा वीरेन्द्रसिंह की मर्जी के खिलाफ कुछ करना भी उचित नहीं समझती थी।

राजा वीरेन्द्रसिंह ने इन्द्रदेव की तरफ देखकर कहा, "आप क्या सोच रहे हैं? कृष्ण जिन्न पर मुझे बहुत बड़ा विश्वास है और उसने जो कुछ लिखा है, मैं उसे करने के लिए तैयार हूँ।"

इन्द्रदेव—आप मालिक हैं, आपको हर तरह पर अख्तियार है, जो चाहें करें और मुझे भी जो आज्ञा दें, करने के लिए तैयार हूँ। कृष्ण जिन्न की तो मैंने सूरत भी नहीं देखी है इसलिए उनके विषय में कुछ भी नहीं कह सकता, मगर मुझे अफसोस इस बात का है कि मैं यहाँ आकर कुछ भी न कर सका, न तो बलभद्रसिंह ही का पता लगा और न इन्दिरा के विषय में ही कुछ मालूम हुआ।

वीरेन्द्रसिंह—नकली बलभद्रसिंह जब तुम्हारे कब्जे में हो जाएगा, तो मैं उम्मीद करता हूँ कि तुम इन दोनों ही का पता लगा सकोगे और कृष्ण जिन्न के लिखे मुताबिक

मैं नकली बलभद्रसिंह को तुम्हारे हवाले करने के लिए तैयार हूँ। मैं तुम पर भी बहुत विश्वास रखता हूँ और तुम्हें अपना समझता हूँ। अगर कृष्ण जिन्न ने न भी लिखा होता और तुम नकली बलभद्रसिंह को माँगते तो भी मैं तुम्हें दे देता, अब भी अगर तुम माया-रानी या दारोगा को लेना चाहो तो मैं देने को तैयार हूँ, केवल इतना ही नहीं, इसके अतिरिक्त तुम अगर और भी कोई बात कहो तो करने के लिए तैयार हूँ।

राजा वीरेन्द्रसिंह की बात सुनकर इन्द्रदेव उठ खड़ा हुआ और झुककर सलाम करने के बाद हाथ जोड़ कर बोला, "यह जानकर बहुत ही प्रसन्न हुआ कि महाराज मुझ पर विश्वास रखते हैं और नकली बलभद्रसिंह को मेरे हवाले करने के लिए तैयार हैं तथा और भी जिसे मैं चाहूँ ले जाने की प्रार्थना कर सकता हूँ। यदि महाराज की मुझ पर इतनी ही कृपा है तो मैं कह सकता हूँ कि सिवाय नकली बलभद्रसिंह के और किसी कैदी को ले जाना नहीं चाहता, मगर लक्ष्मीदेवी, कमलिनी और लाड़िली को अपने साथ ले जाने की प्रार्थना करता हूँ। अपनी धर्म की प्यारी लड़की लक्ष्मीदेवी पर बहुत स्नेह रखता हूँ और अभी बहुत कुछ उसके हाथ से··· (रुककर) हाँ, तो यदि महाराज मुझ पर विश्वास कर सकते हैं, तो इन लोगों को और उस कलमदान को मुझे दे दें, जिस पर 'इन्दिरा' लिखा हुआ है। भूतनाथ के कागजात अपने साथ लेते जायें, मैं असली बलभद्रसिंह का पता लगाकर सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा और उस समय अपने सामने भूतनाथ के मुक-दमे का फैसला कराऊँगा। आप भूतनाथ को आज्ञा दें कि कृष्ण जिन्न ने उसके विषय में जो कुछ लिखा है उसे नेकनीयती के साथ पूरा करें।"

इन्द्रदेव की बात सुनकर राजा वीरेन्द्रसिंह गौर में पड़ गये। वे लक्ष्मीदेवी, कम-लिनी और लाड़िली को अपने साथ चुनार ले जाना चाहते थे और कृष्ण जिन्न ने भी ऐसा करने को लिखा था, मगर इन्द्रदेव की अर्जी भी नामंजूर नही कर सकते थे क्योंकि इन्द्रदेव का लक्ष्मीदेवी पर हक था और उसी ने लक्ष्मीदेवी की रक्षा की थी। कमलिनी और लाड़िली पर राजा वीरेन्द्रसिंह का कोई अधिकार न था क्योंकि वे बिलकुल स्वतन्त्र थीं। वीरेन्द्रसिंह ने कुछ देर तक गौर करने के बाद इन्द्रदेव से कहा, "मुझे कुछ उज्र नहीं है, लक्ष्मीदेवी, कमलिनी और लाड़िली यदि आपके साथ रहने में प्रसन्न हैं तो आप उन्हें ले जायें और वह कलमदान भी आपको मिल जायेगा।"

इन्द्रदेव और राजा वीरेन्द्रसिंह की बातें सुनकर लक्ष्मीदेवी, कमलिनी और लाड़िली बहुत प्रसन्न हुईं और हाथ जोड़कर राजा वीरेन्द्रसिंह से बोलीं, "हम लोग अपने धर्म के पिता इन्द्रदेव के घर जाने में बहुत प्रसन्न हैं, वहाँ हमें अपने बाप का पता लगने का हाल बहुत जल्द मिलेगा।"

वीरेन्द्रसिंह—बहुत अच्छा, (तेजसिंह से) वह कलमदान इन्द्रदेव को दे दो और इन लोगों के तथा नकली बलभद्रसिंह के जाने का बन्दोबस्त करो। हम भी आज चुनार-गढ़ की तरफ कूच करेंगे। भैरोंसिंह को मनोरमा की गिरफ्तारी के लिए रवाना करो और तारासिंह को नानक के घर भेजो। (देवीसिंह की तरफ देखकर) एक बहुत ही नाजुक काम तुम्हारे सुपुर्द करने की इच्छा है जो तुम्हारे कान में कहेंगे।

देवीसिंह राजा वीरेन्द्रसिंह के पास चले गये और उनकी तरफ सिर झुका दिया।

वीरेन्द्रसिंह ने देवीसिंह के कान में कहा, "लक्ष्मीदेवी, कमलिनी और लाड़िली की निगह-बानी तुम्हारे जिम्मे, मगर गुप्त।"

देवीसिंह सलाम करके पीछे हट गये और दरबार बरखास्त हो गया।

3

शेरअलीखाँ बड़ी इज्जत और आबरू के साथ घर भेजे गये, उनके सेनापति महबूबखाँ को भी छुट्टी मिली, भैरोंसिंह मनोरमा की फिक्र में गये, तारासिंह नानक के घर चले और कुछ फौजी सिपाहियों के साथ नकली बलभद्रसिंह लक्ष्मीदेवी, कमलिनी और लाड़िली को लिए हुए इन्द्रदेव ने अपने गुप्त स्थान की तरफ प्रस्थान किया। भूतनाथ बातें करता हुआ उन्हीं के साथ चल पड़ा और थोड़ी दूर जाने के बाद आज्ञा लेकर अपने अड्डे की तरफ रवाना हुआ जो बराबर की पहाड़ी पर था और देवीसिंह ने न मालूम किधर का रास्ता लिया। राजा वीरेन्द्रसिंह की सवारी भी उसी दिन चुनारगढ़ की तरफ चली और तेजसिंह राजा साहब के साथ गये।

हम सबसे पहले तारासिंह के साथ चलकर नानक के घर पहुँचते हैं और उसकी जगतप्रिय स्त्री की अवस्था पर ध्यान देते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि लड़कपन में नानक उत्साही था और उसे नाम पैदा करने की बड़ी लालसा थी, परन्तु रामभोली के प्रेम ने उसका खयाल बदल दिया और उसमें खुदगर्जी का हिस्सा कुछ ज्यादा हो गया। आखीर में जब उसने श्यामा नामक एक स्त्री से शादी कर ली, जिसका जिक्र कई दफे लिखा जा चुका है, तब से तो उसकी बुद्धि बिल्कुल ही भ्रष्ट हो गई। नानक की स्त्री श्यामा बड़ी चतुर, लालची और कुलटा थी, मगर नानक उसे पतिव्रता और साध्वी जानकर माता के समान उसकी इज्जत करता था। नानक के नातेदार और दोस्तों की आमद-रफ्त उसके घर में विशेष थी। श्यामा को रुपये-पैसे की कमी न थी और वह अपनी दौलत-जमीन के अन्दर गाड़ कर रखा करती थी, जिसका हाल सिवाय एक नौजवान खिदमतगार के, जिसका नाम हनुमान था और कोई भी नहीं जानता था। हनुमान यद्यपि नानक का नौकर था, परन्तु इस सबब से उसकी माँ कुछ दिनों तक भूतनाथ की खिदमत में रह चुकी थी, वह अपने को नौकर नहीं समझता था, बल्कि घर का मालिक समझता था। नानक की स्त्री उसे बहुत चाहती थी, यहाँ तक कि एक दिन उसने अपने मुँह से उसे अपना देवर स्वीकार किया था, इस सबब से वह और भी सिर चढ़ गया था। नानक के यहाँ एक मजदूरनी भी थी, वह नानक के काम की चाहे न हो, मगर उसकी स्त्री के लिए उपयोगी पात्र थी और उसके द्वारा नानक की स्त्री का बहुत काम निकलता था।

तारासिंह अपने दो चेलों को साथ लिए रोहतासगढ़ से रवाना होकर भेस बदले हुए तीसरे ही दिन नानक के घर पहुँचा। ठीक दोपहर का समय था और नानक अपने किसी दोस्त के यहाँ गया था, मगर उसका प्यारा खिदमतगार हनुमान दरवाजे पर बैठा

अपने पड़ौसी साईसों और कोचवानों के साथ गप्पें लड़ा रहा था। तारासिंह थोड़ी देर तक इधर-उधर टहलता और टोह लेता रहा। जब उसे मालूम हो गया कि हनुमान नानक का प्यारा नौकर है और उम्र में भी अपने से बड़ा नहीं है तो वहाँ से लौटा और कुछ दूर जाकर किसी सुनसान अँधेरी गली में मकान किराए पर लेने का बन्दोबस्त करने लगा। संध्या होने के पहले ही इस काम से भी निश्चिन्ती हो गई अर्थात् उसने एक बहुत बड़ा मकान किराये पर ले लिया, जो मुद्दत से खाली पड़ा हुआ था, क्योंकि लोग उसमें भूत-प्रेतों का वास समझते थे और कोई उसमें रहना पसन्द नहीं करता था। उसमें जाने के लिए तीन रास्ते थे और उसके अन्दर कई कोठरियाँ ऐसी थीं कि यदि उसमें किसी को बन्द कर दिया जाये, तो हजार चिल्लाने और ऊधम मचाने पर भी किसी बाहर वाले को खबर न हो। तारासिंह ने उसी मकान में डेरा जमाया और बाजार जाकर दो ही घण्टे में वे सब चीजें खरीद लाया, जिनकी उसने जरूरत समझी और जो एक अमीराना ढंग से रहने वाले आदमी के लिए आवश्यक थीं। इस काम से भी छुट्टी पाकर उसने मोमबत्ती जलाई और आईना तथा ऐयारी का बटुआ सामने रखकर अपनी सूरत बदलने का उद्योग करने लगा। शीघ्र ही एक खूबसूरत नौजवान अमीर की सूरत बनाकर वह घर से बाहर निकला और मकान में एक चेले को छोड़ कर नानक के घर की तरफ रवाना हुआ। दूसरा चेला जो तारासिंह के साथ था उसे बहुत-सी बातें समझाकर दूसरे काम के लिए भेजा।

जब तारासिंह नानक के मकान पर पहुँचा, तो उसने हनुमान को दरवाजे पर बैठा पाया। इस समय हनुमान अकेला था और हुक्का पीने का बन्दोबस्त कर रहा था। उसके पास ही ताक(आला) पर एक चिराग जल रहा था जिसकी रोशनी चारों तरफ फैल रही थी। तारासिंह हनुमान के पास जाकर खड़ा हो गया। हनुमान ने बड़े गौर से उसकी सूरत देखी और रौब में आकर हुक्का छोड़ के खड़ा हो गया। उस समय चिराग की रोशनी में तारासिंह बड़े शान-शौकत का आदमी मालूम पड़ रहा था। खूबसूरती बनाने की तारासिंह को जरूरत न थी, क्योंकि वह स्वयं खूबसूरत और नौजवान आदमी था, परन्तु रूप बदलने की नीयत से उसने अपने चेहरे पर रोगन जरूर लगाया था, जिससे वह इस समय और भी खूबसूरत और शौकीन लग रहा था।

तारासिंह को देखते ही हनुमान उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर बोला, 'हुक्म !'

तारासिंह—हमारे साथ एक नौकर था, वह राह भूल कर न मालूम कहाँ चला गया, उम्मीद थी कि वह हमको ढूंढ़ने के बाद सीधा घर पर चला जायेगा, मगर इस समय प्यास के मारे हमारा गला सूखा जा रहा है।

हनुमान—(एक छोटी चौकी की तरफ इशारा करके) सरकार इस चौकी पर बैठ जायें, मैं अभी पानी लाता हूँ।

इतना सुनकर तारासिंह चौकी पर बैठ गया और हनुमान पानी लाने के लिए अन्दर चला गया। थोड़ी देर में पानी का भरा हुआ एक लोटा और गिलास लिए हनुमान बाहर आया और तारासिंह को पीने के लिए गिलास में पानी ढालकर दिया, उसी समय तारासिंह ने दरवाजे का पर्दा हिलते हुए देखा और यह भी मालूम किया कि कोई औरत

भीतर से झाँक रही है। पानी पीने के बाद तारासिंह ने पाँच रुपये हनुमान के हाथ में दिये और वहाँ से उठकर दूसरी तरफ का रास्ता लिया।

हनुमान केवल एक गिलास पानी पिलाने के बदले में पाँच रुपये पाकर बड़ा ही प्रसन्न हुआ और दाता की अमीरी पर आश्चर्य करने लगा। उसे विश्वास हो गया कि यह कोई बड़ा भारी अमीर आदमी या कोई राजकुमार है और साथ ही इसके दिल का अमीर तथा जी खोल कर देने वाला भी है।

दूसरे दिन संध्या के पहले ही हनुमान ने तारासिंह को अपने दरवाजे के सामने से जाते देखा और उसके साथ एक नौकर को भी देखा जो बड़े शान के साथ कीमती कपड़े पहने और तलवार लगाए, तारासिंह के पीछे-पीछे जा रहा था। हनुमान ने उठकर तारासिंह को बड़े अदब के साथ सलाम किया। तारासिंह ने अपने नौकर को जो वास्तव में उसका चेला था, कुछ कहकर हनुमान के पास छोड़ा और आगे का रास्ता लिया।

तारासिंह के नौकर में और हनुमान में दो घण्टे तक खूब बातचीत हुई, जिसे हम यहाँ लिखना नापसन्द करते हैं, हाँ, इस बातचीत का जो कुछ नतीजा निकला वह अवश्य दिखाया जायेगा क्योंकि नानक के घर की जाँच करने ही के लिए तारासिंह का आना इस शहर में हुआ था।

बहुत देर तक बातचीत करने के बाद तारासिंह का नौकर उठ खड़ा हुआ और हनुमान के हाथ में कुछ देकर घर का रास्ता लिया जहाँ तारासिंह उसके आने का इन्तजार कर रहा था। जब तारासिंह ने नौकर को आते देखा तो पूछा—

तारासिंह—कहो, क्या हुआ ?

नौकर—सब ठीक है, वह तो आपको देख भी चुकी है।

तारासिंह—हाँ, रात को जब मैं वहाँ पानी पी रही था, टाट का पर्दा हिलते हुए देखा था, तो और भी कुछ हालचाल मालूम हुआ ?

नौकर—जी हाँ, बड़ी-बड़ी बातें हुईं। वह तो पूरी खानगी है, कल दोपहर के पहले मैं आपको उन लोगों के नाम भी बताऊँगा, जिनसे उसका ताल्लुक है और उम्मीद है कि कल वह स्वयं बन-ठनकर आपके पास आवे।

तारासिंह—ठीक है, तो क्या तुम्हें उसका नाम भी मालूम हुआ ?

नौकर—जी हाँ, उसका नाम श्यामा है और अपने पति अर्थात् नानक के लिए तो वह रूपगर्विता नायिका है।

तारासिंह—बड़े अफसोस की बात है। निःसन्देह भूतनाथ के लिए यह एक कलंक है। ऐसी औरत का पति इस योग्य नहीं कि हम लोग उसे अपने पास बिठावें या उसका छुआ पानी भी पीयें। खैर, अब तुम घर में बैठो, मैं गश्त लगाने के लिए जाता हूँ।

दूसरे दिन दोपहर के समय तारासिंह का वही नौकर नानक के घर से निकला तथा इधर-उधर से घूमता-फिरता तारासिंह के पास आया और बोला, "आज श्यामा के कई प्रेमियों के नाम मैं लिख लाया हूँ।"

तारासिंह—अच्छा बताओ तो सही, शायद उन लोगों में से किसी को मैं जानता हूँ या किसी का नाम भी सुना हो।

नौकर—श्यामा के एक प्रेमी का नाम 'जलशायी बाबू' है।

तारासिंह—(गौर करके) जलशायी बाबू को तो मैं जानता हूँ, वे तो बड़े नेक और बुद्धिमान हैं।

नौकर—जी हाँ, वही लम्बे और गोरे से, वे तरह-तरह के कपड़े राजधानी से लाकर उसे दिया करते हैं, और दूसरे प्रेमी का नाम 'त्रिभुवन नायक' है और उन्हें महत्व की पदवी भी है, और तीसरे प्रेमी का नाम मायाप्रसाद है जो राजा साहब के कोषाध्यक्ष हैं, और चौथे प्रेमी का नाम आनन्दवन बिहारी है, और पाँचवें···

तारासिंह—बस-बस-बस, मैं विशेष नाम सुनना पसन्द नहीं करता।

नौकर—जो हुक्म, (एक कागज दिखाकर) मैं तो पचीसों नाम लिख लाया हूँ।

तारासिंह—ठीक है, तुम इस फेहरिस्त को अपने पास रखो, आवश्यकता पड़ने पर महाराज को दिखाई जायेगी, हमारा काम तो उसके आज यहाँ आ जाने से ही निकल जायेगा।

नौकर—जी हाँ, आज वह यहाँ जरूर आवेगी, हनुमान मेरे साथ आकर घर देख गया है।

4

रात लगभग घण्टे भर के जा चुकी है। नानक के घर में उसकी स्त्री श्रृंगार कर चुकी है और कपड़े बदलने की तैयारी कर रही है। वह एक खुले हुए संदूक के पास खड़ी तरह-तरह की साड़ियों पर नजर दौड़ा रही है और उनमें से एक साड़ी इस समय पहनने के लिए चुना चाहती है। हाथ में चिराग लिए हुए हनुमान उसके पास खड़ा है।

हनुमान—मेरी प्यारी भावज, यह काली साड़ी बड़ी मजेदार है, बस इसी को निकाल लो और यह चोली भी अच्छी है।

श्यामा—यह मुझे पसन्द नहीं। तू घड़ी-घड़ी मुझे 'भावज' क्यों कहता है?

हनुमान—क्या तुम मेरी भावज नहीं हो?

श्यामा—भावज तो जरूर हूँ, यदि तू दूसरी माँ का बेटा होता तो हमारी आधी दौलत बँटवा लेता और ऐसा न होने पर भी मैं तुझे देवर समझती हूँ, मगर भावज पुकारने की आदत अच्छी नहीं, अगर कोई सुन लेगा तो क्या कहेगा!

हनुमान—यहाँ इस समय सुनने वाला कौन है?

श्यामा—इस समय यहाँ चाहे कोई न हो, मगर पुकारने की आदत पड़ी रहने से कभी न कभी किसी के सामने···

हनुमान—नहीं-नहीं, मैं ऐसा बेवकूफ नहीं हूँ। देखो, इतने दिनों से मुझसे तुमसे गुप्त प्रेम है, मगर आज तक किसी को मालूम न हुआ। अच्छा देखो यह साड़ी बढ़िया है इसको जरूर पहनो।

श्यामा—अरे बाबा, इस साड़ी को तो देखते ही मुझे क्रोध चढ़ आता है। उस दिन यह साड़ी पहन कर मैं बिरादरी में उनके यहाँ गई थी, बस एक ने झट से टोक ही तो दिया, कहने लगी कि 'यह साड़ी फलाने की दी हुई है।' इतना सुनते ही मैं लाल हो गई, मगर कर क्या सकती थी, क्योंकि बात सच थी, आखिर चुपचाप उठकर अपने घर चली आई। मैं यह साड़ी कभी न पहनूंगी।

हनुमान—अच्छा, यह हरी साड़ी पहनो।

श्यामा—हाँ, इसे पहनूंगी और यह चोली।

हनुमान—लाओ, चोली मैं पहना दूं।

श्यामा—(हनुमान के गाल पर चपत लगाकर) चल दूर हो।

हनुमान—(चौंककर) अरे हाँ देखो तो सही कैसी भूल हो गई।

श्यामा—(ताज्जुब से) सो क्या?

हनुमान—तुम्हें तो मर्दाना कपड़ा पहन के चलना चाहिए।

श्यामा—हाँ, है तो ऐसा ही, मगर वहाँ क्या करूँगी?

हनुमान—यह साड़ी मैं बगल में दबाकर लिए चलता हूँ, वहाँ पहन लेना।

श्नामा—अच्छा, यही सही।

थोड़ी देर बाद मरदाने कपड़े पहने और सिर पर मुँड़ासा बाँधे हुए श्यामा सड़क पर दिखाई देने लगी। आगे-आगे उसका प्यारा नौकर हनुमान बगल में कपड़े की गठरी दबाए हुए जा रहा था। इस जगह से वह मकान बहुत दूर न था, जिसमें तारासिंह ने डेरा डाला था इसलिए थोड़ी ही देर में वे दोनों उस मकान के पिछले दरवाजे पर जा पहुँचे। दरवाजा खुला हुआ था, और तारासिंह का नौकर पहले ही से दरवाजे पर बैठा हुआ था। उसने दोनों को मकान के अन्दर करके दरवाजा बन्द कर लिया।

तारासिंह एक कोठरी के अन्दर फर्श पर बैठा हुआ तरह-तरह की बातों पर विचार कर रहा था, जब उसके नौकर ने पहुँच कर श्यामा के आने की इत्तिला की और कहा कि वह मर्दानी पोशाक पहन कर आ गई है और अब पूरब वाले कमरे में कपड़े बदल रही है।

तारासिंह का नौकर (चेला) तो इतना कहकर चला गया, मगर तारासिंह बड़े फेर में पड़ गया। वह सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए? उसकी चाल-चलन का पता तो पूरा-पूरा लग गया, मगर अब उसे यहाँ से क्यों कर टालना चाहिए। उसके साथ अधर्म करना तो उचित न होगा, हम ऐसा कदापि नहीं कर सकते, मगर असफोस! वाह रे निर्लज्ज नानक, क्या तुझे इन बातों की खबर न होगी? जरूर होगी, तू इन सब बातों को जरूर जानता होगा, मगर आमदनी का रास्ता खुला देख बेहयाई की नकाब डाले बैठा है। परन्तु भूतनाथ को इन बातों की खबर नहीं, वह हयादार आदमी है, अपनी थोड़ी-सी भूल के लिए कैसे-कैसे उद्योग कर रहा है, और तेरी यह दशा! लानत है तेरी औकात पर और तुफ है, तेरी शौकीनी पर!

तारासिंह इन बातों को सोच ही रहा था कि श्यामारानी मटकती हुई उसके पास जा पहुँची। तारासिंह ने बड़ी खातिर से उसे अपने पास बैठाया और उसके रूप-

गुण की प्रशंसा करने लगा।

श्यामारानी को बैठे अभी कुछ भी देर न हुई थी कि कोठरी के बाहर से चिल्लाने की आवाज आई। यह आवाज नानक के प्यारे नौकर हनुमान की थी और साथ ही किसी औरत के बोलने की आवाज भी आ रही थी।

5

किशोरी कामिनी, कमला इत्यादि तथा और बहुत से आदमियों को लिए हुए राजा वीरेन्द्रसिंह चुनार की तरफ रवाना हुए। किशोरी और कामिनी की खिदमत के लिए साथ में एक सौ पन्द्रह लौंडियाँ थी जिनमें से बीस लौंडियाँ तो उनमें से थीं जो राजा दिग्विजयसिंह की रानी के साथ रोहतासगढ़ में रहा करती थीं और रोहतासगढ़ के फतह हो जाने के बाद राजा वीरेन्द्रसिंह की ताबेदारी स्वीकार कर चुकी थीं, बाकी लौंडियाँ नई रक्खी गई थीं। इसके अतिरिक्त रोहतासगढ़ से बहुत-सी चीजें भी राजा वीरेन्द्रसिंह ने साथ ले ली थीं जिन्हें उन्होंने बेशकीमत या नायाब समझा था। रवाना होने के समय राजा साहब ने उन ऐयारों को भी अपने चुनारगढ़ जाने की इत्तिला दिलवा दी थी जो राजगृह तथा गयाजी इन्तजाम करने के लिए मुकर्रर किये गए थे।

जिस समय राजा वीरेन्द्रसिंह चुनारगढ़ की तरफ रवाना हुए, रात घण्टे भर से कुछ ज्यादा बाकी थी और पांच हजार फौज के अतिरिक्त चार हजार दूसरे काम-काज के आदमी भी साथ में थे। इसी भीड़ में मिली-जुली साधारण लौंडी का भेष धारण किये मनोरमा भी जाने लगी। उसे अपना काम पूरा होने की पक्की उम्मीद थी और वह इस धुन में लगी हुई थी कि किशोरी और कामिनी की लौंडियों में से कोई लौंडी किसी तरह पीछे रह जाय तो काम चले।

पहर दिन चढ़े तक राजा वीरेन्द्रसिंह का लश्कर बरावर चलता गया। जब धूप हुई तो एक हरे-भरे जंगल में पड़ाव डाला गया जहाँ डेरे-खेमे का इन्तजाम पहले ही से हो चुका था। पड़ाव पड़ जाने के थोड़ी देर बाद डेरों-खेमों से लदे हुए सैकड़ों ऊँट आगे की तरफ रवाना हुए जिनसे दूसरे दिन के पड़ाव का इन्तजाम होने वाला था। बाकी का दिन और तीन पहर रात तक वह जंगल गुलजार रहा और पहर रात रहते फिर वहाँ से लश्कर का कूच शुरू हुआ।

इसी तरह कूच-दर-कूच करते वीरेन्द्रसिंह का लश्कर चुनारगढ़ की तरफ रवाना हुआ। तीन दिन तक तो मनोरमा का काम कुछ भी न हुआ, पर चौथे दिन उसे अपना काम निकालने का मौका मिला जब किशोरी की एक लौंडी, जिसका नाम दया था, हाथ में लोटा लिए मैदान जाने की नीयत से पड़ाव के बाहर निकली। उस समय घड़ी-भर रात जा चुकी थी और चारों तरफ अंधकार छाया हुआ था। दया रोहतासगढ़ के राजा दिग्विजयसिंह की लौंडियों में से थी और जव किशोरी कैदियों की तरह रोहतासगढ़ में

रहती थी, दया ने उसकी खिदमत बड़ी हमदर्दी के साथ की थी।

दया को मैदान की तरफ जाते देख मनोरमा ने उसका पीछा किया। दबे पाँव उसके साथ बराबर चली गई और जब जाना कि अब वह आगे न बढ़ेगी, तो एक पेड़ की आड़ देकर खड़ी हो गई। थोड़ी देर बाद जब दया जरूरी काम से छुट्टी पाकर लौटी तो मनोरमा बेधड़क उसके पास चली गई और फुर्ती के साथ तिलिस्मी खंजर उसके मोढ़े पर रख दिया। उसी दम दया काँपी और थरथरा कर जमीन पर गिर पड़ी। मनोरमा ने उसे घसीटकर एक झाड़ी के अन्दर डाल दिया और निश्चय कर लिया कि जब राजा वीरेन्द्रसिंह का लश्कर यहाँ से कूचकर जायेगा और दिन निकल आवेगा तब सुभीते से दया की सूरत बनाकर इसको जान से मार डालूँगी और फिर तेजी के साथ चलकर लश्कर में जा मिलूँगी, आखिर ऐसा ही हुआ।

थोड़ी रात रहे राजा वीरेन्द्रसिंह का लश्कर वहाँ से कूच कर गया और जब पहर दिन चढ़े अगले पड़ाव पर पहुँचा तो किशोरी ने दया की खोज की, मगर दया का पता क्योंकर लग सकता था। बहुत-सी लौंडियाँ चारों तरफ फैल गईं और दया को ढूंढ़ने लगीं। दोपहर होते तक दया भी लश्कर में आ पहुँची जो वास्तव में मनोरमा थी। किशोरी ने पूछा, "दया, कहाँ रह गई थी ? तेरी खोज में सब लौंडियाँ अभी तक परेशान हो रही हैं।"

नकली दया ने जवाब दिया, "जिस समय लश्कर कूच हुआ तो मेरे पेट में कुछ गड़गड़ाहट मालूम हुई। थोड़ी दूर तक तो मैं जी कड़ाकर चलती गई, आखिर जब गड़-गड़ाहट ज्यादा हुई और रास्ते में एक कुआँ भी नजर आया तो लोटा-डोरी लेकर वहाँ ठहर गई। दो दफे तो टट्टी गई और तीन कै हुई, कै में बहुत-सा खट्टा पानी निकला। मैंने समझा कि बस अब किसी तरह लश्कर के साथ नहीं मिल सकती और यहाँ पड़ी बहुत दुःख भोगूँगी मगर ईश्वर ने कुशल की, थोड़ी देर तक मैं उसी कुएँ पर लेटी रही, आखिर मेरी तबीयत ठहरी तो मैं धीरे-धीरे रवाना हुई और मुश्किल से यहाँ तक पहुँची। कै करने में मुझे बहुत तकलीफ हुई और मेरा गला भी बैठ गया।"

किशोरी ने दया की अवस्था पर दुःख प्रकट किया और उसे दया की बातों पर विश्वास हो गया ! अब दया को किशोरी के साथ मेल-जोल पैदा करने में किसी तरह का खुटका न रहा और दो ही चार दिन में उसने किशोरी को अपने ऊपर बहुत ज्यादा मेहरबान बना लिया।

रोहतासगढ़ से चुनारगढ़ जाने के लिए यद्यपि भली-चंगी सड़क बनी हुई थी मगर राजा वीरेन्द्रसिंह का लश्कर सीधी सड़क छोड़ जंगल और मैदान ही में पड़ाव डालता हुआ चला जा रहा था क्योंकि हजारों आदमियों को जंगल और मैदान ही में आराम मिलता था, सड़क के किनारे उतनी ज्यादा जगह नहीं मिल सकती थी।

एक दिन जब राजा वीरेन्द्रसिंह का लश्कर एक बहुत रमणीक और हरे-भरे जंगल में पड़ाव डाले हुए था, संध्या के समय राजा वीरेन्द्रसिंह और तेजसिंह टहलते हुए अपने खेमे से कुछ दूर निकल गये और एक छोटे से टीले पर चढ़कर अस्त होते हुए सूर्य की शोभा देखने लगे; यकायक उनकी निगाह एक सवार पर पड़ी जो बड़ी तेजी के साथ

घोड़ा दौड़ाता हुआ वीरेन्द्रसिंह के लश्कर की तरफ आ रहा था। दोनों की निगाहें उसी की तरफ उठ गईं और उसे बड़े गौर से देखने लगे। थोड़ी ही देर में वह सवार टीले के पास पहुँच गया और उस समय उस सवार की भी निगाह राजा वीरेन्द्रसिंह और तेजसिंह पर पड़ी। सवार ने तुरत घोड़े का मुँह फेर दिया और बात-की-बात में राजा वीरेन्द्रसिंह के पास पहुँचकर घोड़े से नीचे उतर पड़ा। जिस टीले पर वे दोनों खड़े थे वह बहुत ऊँचा न था अतएव उस सवार ने नेजा गाड़कर घोड़े की लगाम उसमें अटका दी और बेखौफ टीले के ऊपर चढ़ गया। इस सवार के हाथ में एक चिट्ठी थी जो उसने सलाम करने के बाद राजा वीरेन्द्रसिंह को दे दी। राजा साहब ने चिट्ठी खोलकर बड़े गौर से पढ़ी और तेजसिंह के हाथ में दे दी। तेजसिंह ने भी उसे पढ़ा और राजा साहब की तरफ देखकर कहा, "निःसन्देह ऐसा ही है।"

वीरेन्द्रसिंह—तुमने तो इस विषय में मुझसे कुछ भी नहीं कहा था।

तेजसिंह—कुछ कहने की आवश्यकता न थी और अभी मैं इन बातों का निश्चय ही कर रहा था।

वीरेन्द्रसिंह—इस राय को तो मैं पसन्द करता हूँ।

तेजसिंह—राय पसन्द करने योग्य है और इसका जवाब भी लिख देना चाहिए।

वीरेन्द्रसिंह—हाँ, इसका जवाब लिख दो।

"बहुत अच्छा" कहकर तेजसिंह ने अपनी जेब से जस्ते की एक कलम निकाली और उस चिट्ठी की पीठ पर जवाब लिखकर वीरेन्द्रसिंह को दिखाया। राजा साहब ने उसे पसन्द किया और चिट्ठी उसी सवार के हाथ में दे दी गई। सवार सलाम करके टीले से नीचे उतर आया और घोड़े पर सवार हो उसी तरफ चला गया जिधर से आया था। सवार के चले जाने के बाद राजा वीरेन्द्रसिंह और तेजसिंह भी टीले से नीचे उतरे और गुप्त विषय पर बातें करते हुए लश्कर की तरफ रवाना होकर थोड़ी ही देर में अपने खेमे के अन्दर जा पहुँचे।

इस सफर में राजा वीरेन्द्रसिंह का कायदा था कि दिन-रात में एक दफे किसी समय किशोरी और कामिनी के डेरे में जरूर जाते, थोड़ी देर बैठते और हर तरह के ऊँच-नीच समझा-बुझाकर तथा दिलासा देकर अपने डेरे में लौट आते। इसी तरह उन दोनों के पास दो दफे तेजसिंह के जाने का भी मामूल था। जिस समय किशोरी और कामिनी के पास राजा साहब या तेजसिंह जाते, उस समय प्रायः सब लौंडियाँ अलग कर दी जातीं, केवल कमला उन दोनों के पास रह जाती थी। आज भी टीले पर से लौटने के बाद थोड़ी देर दम लेकर राजा वीरेन्द्रसिंह किशोरी और कामिनी के खेमे में गये और दो घड़ी तक वहाँ बैठे रहे, कुल लौंडियाँ हटा दी गई थीं।

दो घड़ी तक वहाँ ठहरने के बाद राजा साहब अपने खेमे में लौट आये और तेजसिंह के साथ बैठकर तरह-तरह की बातें करने लगे। जब रात ज्यादा चली गई तो राजा साहब ने चारपाई की शरण ली। तेजसिंह भी अपने खेमे में चले गये और खा-पीकर सो रहे।

तेजसिंह को चारपाई पर गये अभी आधा घण्टा भी न बीता था कि चोबदार

ने किशोरी की लौंडियों के आने की इत्तिला की। तेजसिंह तुरन्त उठ बैठे और इन लौंडियों को अपने पास हाजिर करने की आज्ञा दी। थोड़ी ही देर में दो लौंडियाँ तेजसिंह के सामने आईं, जिनमें से एक वही दया थी जिसे वास्तव में मनोरमा कहना चाहिए।

तेजसिंह—(लौंडियों से) इस समय तुम लोगों के आने से मुझे आश्चर्य मालूम होता है।

दयावती—निःसन्देह आश्चर्य होता होगा परन्तु क्या किया जाये, किशोरीजी की आज्ञा से हम लोगों को आना पड़ा।

तेजसिंह—क्या समाचार है?

दयावती—किशोरीजी ने हम लोगो को आपके पास भेजा है और कहा है कि 'यहाँ से थोड़ी दूर पर कोई ऐसी इमारत है जिसके अन्दर तिलिस्म होने का शक है। ज़ब मैं कैदियों की तरह रोहतासगढ़ में रहती थी तो यह बात राजा दिग्विजयसिंह की जुबानी सुनने में आई थी। यदि यह बात ठीक तो आपकी कृपा से मैं इस इमारत को देखना चाहती हूँ!'

तेजसिंह—किशोरी का कहना तो ठीक है, निःसन्देह यहाँ से थोड़ी ही दूर पर एक इमारत है जिसमें तरह-तरह की अद्भुत बातें देखने में आती हैं और मैं उस इमारत को देख चुका हूँ, मगर एक साथ कई आदमियों का उस इमारत के अन्दर जाना बहुत कठिन है। (कुछ सोचकर) अच्छा तुम लोग चलो, मैं महाराज से वहाँ जाने की आज्ञा लेकर बहुत जल्द किशोरी के पास आता हूँ।

दयावती—जो आज्ञा।

दोनों लौंडियाँ सलाम करके किशोरी के पास चली गईं और जो कुछ तेजसिंह ने उनसे कहा था वह किशोरी के सामने अर्ज किया। इस समय वहाँ किशोरी, कामिनी और कमला एक साथ बैठी हुई थीं और कई लौंडियाँ भी मौजूद थीं।

थोड़ी देर बाद तेजसिंह के आने की इत्तिला मिली और कमला उनको लेने के लिए खेमे के बाहर गई। जब तेजसिंह खेमे के अन्दर आये तो उन्हें देख किशोरी और कामिनी उठ खड़ी हुईं और जब तेजसिंह बैठ गये तो अदब के साथ उनके सामने बैठ गईं।

तेजसिंह—(किशोरी से)उस इमारत की याद यकायक कैसे आ गई?

किशोरी—अकस्मात् उस इमारत की याद आ गई। कामिनी बहिन को भी उसके देखने का बहुत शौक है। मैंने सोचा कि ऐसा मौका फिर काहे को मिलेगा। वह इमारत रास्ते में ही में पड़ती है, यदि आपकी कृपा होगी तो हम लोग उसे देख लेंगी।

तेजसिंह—बात तो ठीक है, और वह इमारत भी देखने योग्य है, मैं तुम्हें वहाँ ले जा सकता हूँ और महाराज से आज्ञा भी ले आता हूँ मगर तुम अपने साथ किसी लौंडी को वहाँ न ले जा सकोगी।

किशोरी—कामिनी बहिन और कमला का चलना तो आवश्यक है और ये दोनों न जायेंगी तो मुझे उसके देखने का आनन्द ही क्या मिलेगा?

तेजसिंह—इन दोनों के लिए मैं मना नहीं करता, मैं रथ जोतने के लिए हुक्म दे आया हूँ अभी आता होगा, तुम तीनों उस रथ पर सवार हो जाओ, घोड़े की रास मैं लूंगा और तुम लोगों को वहाँ ले चलूंगा, सिवाय हम चार आदमियों के और कोई भी न जायेगा।

किशोरी—जब स्वयं आप हम लोगों के साथ हैं तो हमें और किसी की जरूरत क्या है ?

तेजसिंह—यदि इस समय हम लोग रथ पर सवार होकर रवाना होंगे तो घण्टे भर के अन्दर ही वहाँ जा पहुँचेंगे, छः-सात घण्टे में उस इमारत को अच्छी तरह से देख लेंगे, इसके बाद यहाँ लौटने की कोई जरूरत नहीं है, अगले पड़ाव की तरफ चले जायेंगे, जब तक हमारा लश्कर यहाँ से कूच करके अगले पड़ाव पर पहुँचेगा तब तक हम लोग भी वहाँ पहुँच जायेंगे।

किशोरी—जैसी मर्जी।

थोड़ी ही देर बाद इत्तिला मिली कि दो घोड़ों का रथ हाजिर है। तेजसिंह उठ खड़े हुए, पर्दे का इन्तजाम किया गया। किशोरी, कामिनी और कमला उस पर सवार कराई गईं, तेजसिंह ने घोड़ों की रास सम्हाली और रथ तेजी के साथ वहाँ से रवाना हुआ।

6

रात बीत गई, पहर भर दिन चढ़ने के बाद राजा वीरेन्द्रसिंह का लश्कर अगले पड़ाव पर जा पहुँचा और उसके घण्टे भर बाद तेजसिंह भी रथ लिये हुए आ पहुँचे। रथ जनाने डेरे के आगे लगाया गया, पर्दा करके जनानी सवारी (किशोरी, कामिनी और कमला)उतारी गईं और रथ नौकरों के हवाले करके तेजसिंह राजा साहब के पास चले गये।

आज के पड़ाव पर हमारे बहुत दिनों के बिछड़े हुए ऐयार लोग अर्थात् पन्नालाल, रामनारायण, चुन्नीलाल और पण्डित बद्रीनाथ भी आ मिले क्योंकि इन लोगों को राजा साहब के चुनारगढ़ जाने की इत्तिला पहले ही से दे दी गई थी। ये लोग उसी समय उस खेमे से चले गये जहाँ कि राजा वीरेन्द्रसिंह और तेजसिंह एकान्त में बैठे बातें कर रहे थे। इन चारों ऐयारों को आशा थी कि राजा वीरेन्द्रसिंह के साथ-ही-साथ चुनारगढ़ जायेंगे मगर ऐसा न हुआ। इसी समय कई काम उन लोगों के सुपुर्द हुए और राजा साहब की आज्ञानुसार वे चारों ऐयार वहाँ से रवाना होकर पूरब की तरफ चले गये।

राजा वीरेन्द्रसिंह और तेजसिंह को इस बात की आहट लग गई थी कि मनोरमा भेष बदले हुए हमारे लश्कर के साथ चल रही है और धीरे-धीरे उसके मददगार लोग भी रूप बदले हुए लश्कर में चले आ रहे हैं मगर तेजसिंह को उसके गिरफ्तार करने का मौका

नहीं मिलता था। उन्हें इस बात का पूरा-पूरा विश्वास था कि मनोरमा निःसन्देह किसी लौंडी की सूरत में होगी; मगर बहुत-सी लौंडियों में से मनोरमा को, जो बड़ी धूर्त और ऐयार थी, छाँटकर निकालना कठिन काम था। मनोरमा के न पकड़े जाने का एक सबब और भी था, तेजसिंह इस बात को तो सुन ही चुके थे कि मनोरमा ने बेवकूफ नानक से तिलिस्मी खंजर ले लिया है, अस्तु तेजसिंह का ख्याल यही था कि मनोरमा तिलिस्मी खंजर अपने पास अवश्य रखती होगी। यद्यपि राजा साहब की बहुत-सी लौंडियाँ खंजर रखती थीं मगर तिलिस्मी खंजर रखने वालों को पहचान लेना तेजसिंह मामूली काम समझते थे और उनकी निगाह इसलिए बार-बार तमाम लौंडियों की उँगलियों पर पड़ती थी कि तिलिस्मी खंजर के जोड़ की अँगूठी किसी-न-किसी की उँगली में जरूर दिखाई दे जायेगी और जिसकी उँगली में वैसी अँगूठी दिखाई देगी; वे उसे ही मनोरमा समझ के तुरन्त गिरफ्तार कर लेंगे।

यह सब कुछ था, मगर मनोरमा भी कुछ कम चागली न थी और उसकी होशियारी और चालाकी ने तेजसिंह को पूरा धोखा दिया। इस बात को मनोरमा भी पहले ही से विचार चुकी थी कि मेरे हाथ में तिलिस्मी खंजर के जोड़ की अँगूठी अगर तेजसिंह देखेंगे तो मेरा भेद खुल जायेगा, अतएव उसने बड़ी मुस्तैदी और हिम्मत का काम किया अर्थात् इस लश्कर में आ मिलने के पहले ही उसने इस बात को आजमाया कि तिलिस्मी खंजर के जोड़ की अँगूठी केवल उँगली ही में पहनने से काम देती है या बदन के किसी भी हिस्से के साथ लगे रहने से उसका फायदा पहुँचता है। परीक्षा करने पर जब यह मालूम हुआ कि वह तिलिस्मी अँगूठी केवल उँगली ही में पहनने के लिए नहीं है बल्कि बदन के किसी भी हिस्से के साथ लगे रहने से भी अपना काम कर सकती है तब उसने अपनी जाँघ चीर के तिलिस्मी खंजर के जोड़ की अँगूठी उसमें भर दी और ऊपर से सीं कर तथा मरहम-पट्टी लगाकर आराम कर लिया। इसी सबब से आज तिलिस्मी खंजर रहने पर भी तेजसिंह उसे पहचान नहीं सके, मगर तेजसिंह का दिल इस बात को भी कबूल नहीं कर सकता था कि मनोरमा इस लश्कर में नहीं है, बल्कि मनोरमा के मौजूद होने का विश्वास उन्हें उतना ही था, जितने पढ़े-लिखे आदमी को एक और एक मिलकर दो होने का विश्वास होता है।

आज तेजसिंह ने यह हुक्म जारी किया कि किशोरी, कामिनी और कमला के खेमे में[1] उस समय कोई लौंडी न रहे और न जाने पावे जब वे तीनों निद्रा की अवस्था में हों अर्थात् जब वे तीनों जागती रहें तब तक तो लौंडियाँ उनके पास रहें और आ-जा सकें परन्तु जब वे तीनों सोने की इच्छा करें तब एक भी लौंडी खेमे में न रहने पावे और जब तक कमला घण्टी बजाकर किसी लौंडी को बुलाने का इशारा न करे, तब तक कोई लौंडी खेमे के अन्दर न जाये, और उस खेमे के चारों तरफ बड़ी मुस्तैदी के साथ पहरा देने का इन्तजाम रहे।

इस आज्ञा को सुनकर मनोरमा बहुत ही चिटकी और मन में कहने लगी कि

---

1. किशोरी, कामिनी और कमला एक ही खेमे में साथ-साथ रहा करती थीं।

'तेजसिंह भी बड़ा बेवकूफ आदमी है, भला ये सब बातें मनोरमा के हौसले को कम कर सकती हैं। बल्कि मनोरमा अपने काम में अब और शीघ्रता करेगी ! क्या मनोरमा केवल इसी काम के लिए इस लश्कर में आई है कि किशोरी को मारकर चली जाये ? नहीं-नहीं, वह इससे भी बढ़कर काम करने के लिए आई है। अच्छा-अच्छा, तेजसिंह को इस चालाकी का मजा आज ही न चखाया, तो कोई बात नहीं ! किशोरी, कामिनी और कमला को या इन तीनों में से किसी एक को आज ही न मार खपाया तो मनोरमा नाम नहीं। रह तो जा नालायक, देखें, तेरी होशियारी कहाँ तक काम करती है !' ऐसी-ऐसी बहुत-सी बातें मनोरमा ने सोचीं और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने का उद्योग करने लगी।

7

रात आधी से ज्यादा जा चुकी है। उस लम्बे-चौड़े शाही खेमे के चारों तरफ बड़ी मुस्तैदी के साथ पहरा फिर रहा है जिसमें किशोरी, कामिनी और कमला गहरी नींद में सोई हुई हैं। उसके दोनों बगल और भी दो बड़े-बड़े डेरे हैं जिनमें लौंडियाँ हैं और उन दोनों डेरों के चारों तरफ भी दो फौजी सिपाही घूम रहे हैं। मनोरमा चुपचाप अपने बिस्तर पर से उठी, कनात उठाकर चोरों की तरह खेमे के नीचे से बाहर निकल गई, और पैर दबाती हुई किशोरी के खेमे की तरफ चली। दूर से उसने देखा कि चार फौजी सिपाही हाथ में नंगी तलवारें लिए हुए घूम-घूम कर पहरा दे रहे हैं। वह हाथ में तिलिस्मी खंजर लिए हुए खेमे के पीछे चली गई। जब पहरा देने वाले टहलते हुए कुछ आगे निकल गये, तब उसने कदम बढ़ाया और तिलिस्मी खंजर म्यान से निकालकर उनके रास्ते में रख दिया, इसके बाद पीछे हटकर पुनः आड़ में खड़ी हो गई तथा पहरा देने वालों की तरफ ध्यान देकर देखने लगी। जब पहरा देने वाले लौटकर उस खंजर के पास पहुँचे तो एक की निगाह उस खंजर पर जा पड़ी जिसका लोहा तारों की रोशनी में चमक रहा था। उसने झुककर खंजर उठाना चाहा, मगर छूने के साथ ही बेहोश होकर औंधे मुँह जमीन पर गिर पड़ा। उसकी यह अवस्था देख उसके साथियों को भी आश्चर्य हुआ। दूसरे ने झुककर उसे उठाना चाहा और जब खंजर पर उसका हाथ पड़ा तो उसकी भी वही दशा हुई जो पहले सिपाही की हुई थी। इस तिलिस्मी खंजर का हाल और गुण गिने-चुने आदमियों को मालूम था और जिन्हें मालूम था, वे भी उसे बहुत छिपाकर रखते थे। बेचारे फौजी सिपाहियों को इस बात की कुछ खबर न थी और धोखे में पड़कर जैसा कि ऊपर लिख चुके हैं, एक दूसरे के बाद सिपाही खंजर छू-छूकर बेहोश हो गये। उस समय मनोरमा पेड़ की आड़ से बाहर निकलकर चारों बेहोश सिपाहियों के पास पहुँची, अपना खंजर उठा लिया और उसी खंजर से खेमे के पीछे कनात में बड़ा-सा छेद करने के बाद बड़ी होशियारी से खेमे के अन्दर घुस गई। उस समय किशोरी, कामिनी और कमला गहरी नींद में खर्राटे ले रही थीं जिन्हें एकदम दुनिया से उठा देने की फिक्र में

मनोरमा लगी हुई थी। मनोरमा उनके सिरहाने की तरफ खड़ी हो गई और सोचने लगी, "निःसन्देह इस समय मेरा वार खाली नहीं जा सकता, तिलिस्मी खंजर के एक ही वार में सिर कटकर अलग हो जायगा, मगर एक के सिर कटने की आहट पाकर बाकी की दोनों जाग जायेंगी, ऐसा न होना चाहिए, इस समय इन तीनों ही को मारना मेरा काम है, अच्छा पहले इस तिलिस्मी खंजर से इन तीनों को बेहोश कर देना चाहिए।" इतना सोचकर मनोरमा ने तिलिस्मी खंजर बदन से लगाकर उन तीनों को बेहोश कर दिया और फिर सिर काटने के लिए तैयार हो गई। उसने तिलिस्मी खंजर का एक भरपूर हाथ पहले किशोरी की गर्दन पर जमाया जिससे सिर कटकर अलग हो गया, दूसरा हाथ उसने कामिनी की गर्दन पर जमाया और उसका सिर काटने के बाद कमला का सिर भी धड़ से अलग कर दिया, इसके बाद खुशी-भरी निगाहों से तीनों लाशों की तरफ देखने लगी और बोली, "इन्हीं तीनों ने दुनिया में ऊधम मचा रखा था। जिस तरह इस समय इन तीनों को मार कर मैं खुश हो रही हूँ उसी तरह बहुत जल्द वीरेन्द्र, इन्द्रजीत, आनन्द और गोपाल को भी मारकर खुशी भरी निगाहों से उनकी लाशों को देखूँगी। तब दुनिया में मायारानी और मनोरमा के सिवाय कोई और भी प्रतापी दिखाई न देगा !" मनोरमा इतना कह ही चुकी थी कि पीछे की तरफ से आवाज आई—"नहीं-नहीं, ऐसा न हुआ है और न कभी होगा !"

8

अब हम थोड़ा-सा हाल इन्द्रदेव का बयान करते हैं जो लक्ष्मीदेवी, कमलिनी, लाड़िली और नकली बलभद्रसिंह को साथ लेकर अपने घर की तरफ रवाना हुए थे और जिनके साथ कुछ दूर तक भूतनाथ भी गया।

नकली बलभद्रसिंह हथकड़ी-बेड़ी से जकड़ा हुआ एक डोली पर सवार कराया गया था और कुछ फौजी सिपाही उसे चारों तरफ से घेरे हुए जा रहे थे। लक्ष्मीदेवी, कमलिनी तथा लाड़िली पालकियों पर सवार कराई गई थीं और उन तीनों पालकियों के आगे-पीछे बहुत से सिपाही जा रहे थे। इन्द्रदेव एक उम्दा घोड़े पर सवार थे और भूतनाथ पैदल उनके साथ-साथ जा रहा था। दोपहर दिन चढ़े बाद जब इन लोगों का डेरा एक सुहावने जंगल में पड़ा तो भूतनाथ ने इन्द्रदेव से बिदा माँगी। इन्द्रदेव ने कहा, "मुझे तो कोई उज्र नहीं, मगर लक्ष्मीदेवी और कमलिनी से पूछ लेना जरूरी है। तुम मेरे साथ उनके पास चलो, मैं उन लोगों से तुम्हें छुट्टी दिला देता हूँ।"

लक्ष्मीदेवी, कमलिनी और लाड़िली की पालकियाँ एक घने पेड़ के नीचे आमने-सामने रखी हुई थीं और उनके चारों तरफ कनात घिरी हुई थी। बीच में उम्दा फर्श बिछा हुआ था और तीनों बहिनें उस पर बैठी बातें कर रही थीं। इन्द्रदेव अपने साथ भूतनाथ को लिए उन तीनों के पास गये और कमलिनी की तरफ देखकर बोले, "भूतनाथ

बिदा होने की आज्ञा माँगता है।"

इन्द्रदेव को देखकर तीनों बहिनें उठ खड़ी हुईं और कमलिनी ने भूतनाथ को भी अपने सामने फर्श पर बैठने का इशारा किया। भूतनाथ बैठ गया तो बातें होने लगीं—

कमलिनी—(भूतनाथ से) भूतनाथ, तुम्हारे मामले ने तो हम दोनों को बहुत परेशान कर रखा है। पहले तो यही विश्वास हो गया था कि तुम ही मेरे पिता के घातक हो और यह जयपालसिंह वास्तव में हमारा पिता है, वह खयाल तो अब जाता रहा, मगर तुम अभी तक बेकसूर साबित न हुए।

भूतनाथ—कसूरवार तो मैं जरूर हूँ, पहले ही तुमसे कह चुका हूँ कि 'मेरे हाथ से कई बुरे काम हो चुके हैं, जिनके लिए मैं अब भी पछता रहा हूँ और अब नेक काम करके दुनिया में नेक नाम होना चाहता हूँ' और तुमने मेरी सहायता करने की प्रतिज्ञा भी की थी। तब से तुम स्वयं देख रही हो कि मैं कैसे-कैसे काम कर रहा हूँ। यह सब कुछ है। मगर मैंने तुम्हारे पिता, माता या तुम तीनों बहिनों के साथ कभी कोई बुराई नहीं की, इसे तुम निश्चय समझो, शायद यही सबब है कि ऐसे नाजुक समय में भी कृष्ण जिन्न ने मेरी सहायता की, मालूम होता है कि वह मेरा हाल अच्छी तरह जानता है।

कमलिनी—खैर, यह तो जब तुम्हारा मुकदमा होगा, तब मालूम हो जायगा, क्योंकि मैं बिल्कुल नहीं जानती कि कृष्ण जिन्न कौन है, उसने तुम्हारा पक्ष क्यों लिया, और राजा वीरेन्द्रसिंह ने क्यों कृष्ण जिन्न की बात मानकर तुम्हें कैद से छुट्टी दे दी।

लक्ष्मीदेवी—(भूतनाथ से) मगर मैं जहाँ तक समझती हूँ यही जान पड़ता है कि तुम कृष्ण जिन्न को अच्छी तरह पहचानते हो।

भूतनाथ—नहीं-नहीं, कदापि नहीं। (खंजर हाथ में लेकर) मैं कसम खाकर कहता हूँ कि कृष्ण जिन्न को बिल्कुल नहीं पहचानता, मगर उसकी कुदरत देखकर जरूर आश्चर्य करता हूँ और उससे डरता भी हूँ। यद्यपि उसने मुझे कैद से छुड़ा दिया, मगर तुम देखती हो कि भागकर जान बचाने की नीयत मेरी नहीं है। कई दफे स्वतन्त्र हो जाने पर भी मैंने तुम्हारे काम से मुँह नहीं फेरा और समय पड़ने पर जान तक देने को तैयार हो गया।

कमलिनी—ठीक है, ठीक है! और अबकी दफे रोहतासगढ़ में पहुँचकर भी तुमने बड़ा काम किया, मगर इस बारे में मुझे एक बात का आश्चर्य मालूम होता है।

भूतनाथ—वह क्या ?

कमलिनी—तुमने अपना हाल बयान करते समय कहा था कि 'मैंने तिलिस्मी खंजर से शेरअलीखाँ की सहायता की थी।'

भूतनाथ—हाँ, बेशक कहा था।

कमलिनी—तुम्हें जो तिलिस्मी खंजर मैंने दिया था, वह तो मायारानी ने उस समय अपने कब्जे में कर लिया था जब जमानिया तिलिस्म के अन्दर जाने वाली सुरंग में उसने तुम लोगों को बेहोश किया था। उसने राजा गोपालसिंह का भी तिलिस्मी खंजर लेकर नागर को दे दिया था। नागर वाला तिलिस्मी खंजर तो भैरोंसिंह ने (इन्द्रदेव की तरफ इशारा कर) आपसे ले लिया था जो मेरी इच्छानुसार अब तक भैरोंसिंह

के पास है, परन्तु तुम्हारे पास तिलिस्मी खंजर कहाँ से आ गया जिससे तुमने काम लिया और जो अब तक तुम्हारे पास है।

भूतनाथ—आपको मालूम हुआ होगा कि मेरा खंजर जो मायारानी ने ले लिया था उसे कृष्ण जिन्न ने रोहतासगढ़ किले के अन्दर उस समय मायारानी से छीन लिया था जब वह शेरअलीखाँ को लेकर वहाँ गई थी।

कमलिनी—हाँ, ठीक है, तो क्या वही खंजर कृष्ण जिन्न ने फिर तुम्हें दे दिया?

भूतनाथ—जी हाँ, (तिलिस्मी खंजर और उसके जोड़ की अँगूठी कमलिनी के आगे रखकर) अब यदि मर्जी हो तो ले लीजिये, यह हाजिर है।

कमलिनी—(कुछ सोचकर) नहीं, अब यह खंजर तुम अपने ही पास रखो, जब कृष्ण जिन्न ने जिन्हें राजा वीरेन्द्रसिंह और तेजसिंह मानते हैं, तुम्हें दे दिया तो अब बिना उनकी इच्छा के छीन लेना मैं उचित नहीं समझती। (ऊँची साँस लेकर) क्या कहा जाय, तुम्हारे मामले में अक्ल कुछ भी काम नहीं करती।

इन्द्रदेव—भूतनाथ तुम देखते हो कि नकली बलभद्रसिंह को मैं अपने साथ लिए जाता हूँ, अगर तुम भी मेरे साथ चल के उससे बातचीत करते तो···

भूतनाथ—नहीं-नहीं, आप मुझे अपने साथ ले चलकर उसका मुकाबला न कराइये, उसका सामना होने से ही मेरी जान सूख जाती है! यह तो मैं जानता ही हूँ कि एक न एक दिन मेरा और उसका सामना धूमधाम के साथ होगा और जो कुछ कसूर मैंने किया है या उसका बिगाड़ा है, खुले बिना न रहेगा, परन्तु अभी आप क्षमा करें, थोड़े दिनों में मैं अपने बचाव का सामान इकट्ठा कर लूँगा और तब तक बलभद्रसिंह का भी पता लग जायगा, उनसे भी सहायता मिलने की मुझे आशा है। हाँ, यदि आप मेरी प्रार्थना स्वीकार न करें तो लाचार मैं साथ चलने के लिए हाजिर हूँ।

इन्द्रदेव—(कुछ सोचकर) खैर, कोई चिन्ता नहीं। तुम जाओ, बलभद्रसिंह को खोज निकालने का उद्योग करो, और इन्दिरा का भी पता लगाओ। अब मुझसे कब मिलोगे?

भूतनाथ—आठ-दस दिन के बाद आपसे मिलूँगा, फिर जैसा मौका हो।

कमलिनी—अच्छा जाओ, मगर जो कुछ करना है, उसे दिल लगा के करो।

भूतनाथ—मैं कसम खाकर कहता हूँ कि बलभद्रसिंह को खोज निकालने की फिक्र सबसे ज्यादा दुनिया में जिस आदमी को है वह मैं हूँ।

इतना कहकर भूतनाथ उठ खड़ा हुआ और अपने अड्डे की तरफ चल दिया। तीसरे दिन अपने अड्डे पर पहुँचा जो 'बराबर' की पहाड़ी पर था। वहाँ उसने अपने आदमी दाऊ बाबा की जुबानी नानक का हाल सुना और क्रोध में भरा हुआ केवल दो घण्टे वहाँ रहने के बाद पहाड़ी के नीचे उतरकर उस जंगल की तरफ रवाना हो गया जहाँ पहले-पहले श्यामसुन्दरसिंह और भगवनिया के सामने नकली बलभद्रसिंह से उसकी मुलाकात हुई थी।

9

लक्ष्मीदेवी, कमलिनी, लाड़िली और नकली बलभद्रसिंह को लिए हुए इन्द्रदेव अपने गुप्त स्थान में पहुँच गये। दोपहर का समय है। एक सजे हुए कमरे के अन्दर ऊँची गद्दी के ऊपर इन्द्रदेव बैठे हुए हैं, पास ही में एक दूसरी गद्दी बिछी हुई है जिस पर लक्ष्मीदेवी, कमलिनी और लाड़िली बैठी हुई हैं, उनके सामने हथकड़ी-बेड़ी और रस्सियों से जकड़ा हुआ नकली बलभद्रसिंह बैठा है, और उसके पीछे हाथ में नंगी तलवार लिए इन्द्रदेव का ऐयार सरयूसिंह खड़ा है।

नकली बलभद्रसिंह—(इन्द्रदेव से) जिस समय मुझसे और भूतनाथ से मुलाकात हुई थी, उस समय भूतनाथ की क्या दशा हुई, वो स्वयं तेजसिंह देख चुके हैं। अगर भूतनाथ सच्चा होता तो मुझसे क्यों डरता? मगर बड़े अफसोस की बात है कि राजा वीरेन्द्र सिंह ने कृष्ण जिन्न के कहने से भूतनाथ को छोड़ दिया और जिस सन्दूकची को मैंने पेश किया था उसे न खोला, वह खुलती तो भूतनाथ का बाकी भेद छिपा न रहता।

इन्द्रदेव—जो भी हो, मैं राजा साहब की बातों में दखल नहीं दे सकता। मगर इतना कह सकता हूँ कि भूतनाथ ने चाहे तुम्हारे साथ हद से ज्यादा बुराई की हो, मगर लक्ष्मीदेवी के साथ कोई बुराई नहीं की थी, इसके अतिरिक्त छोड़ दिये जाने पर भी भूतनाथ भागने का उद्योग नहीं करता और समय पड़ने पर हम लोगों का साथ देता है।

नकली बलभद्रसिंह—अगर भूतनाथ आप लोगों का काम न करे तो आप लोग उस पर दया न करेंगे, यही समझकर वह···

इन्द्रदेव—(चिढ़कर) ये सब वाहियात बातें हैं, मैं तुमसे बकवास करना पसन्द नहीं करता, तुम यह बताओ कि जयपाल हो या नहीं?

नकली बलभद्रसिंह—मैं वास्तव में बलभद्रसिंह हूँ।

इन्द्रदेव—(क्रोध के साथ) अब भी तू झूठ बोलने से बाज नहीं आता, मालूम होता है कि तेरी मौत आ चुकी है, अच्छा देख मैं तुझे किस दुर्दशा के साथ मारता हूँ! (सरयूसिंह से) तुम पहले इसकी दाहिनी आँख उँगली डालकर निकाल लो।

नकली बलभद्रसिंह—(लक्ष्मीदेवी से) देखो, तुम्हारे बाप की क्या दुर्दशा हो रही है!

लक्ष्मीदेवी—मुझे अब अच्छी तरह से निश्चय हो गया कि तू हमारा बाप नहीं है। आज जब मैं पुरानी बातों को याद करती हूँ तो तेरी और दारोगा की बेईमानी साफ मालूम हो जाती है। सबसे पहले जिस दिन तू कैदखाने में मुझसे मिला था, उसी दिन मुझे तुझ पर शक हुआ था, मगर तेरी इस बात पर कि 'जहरीली दवा के कारण मेरा बदन खराब हो गया है' मैं धोखे में आ गयी थी।

नकली बलभद्रसिंह—और यह मोड़े वाला निशान?

लक्ष्मीदेवी—यह भी बनावटी है, अच्छा अगर तू मेरा बाप है तो मेरी एक बात का जवाब दे।

नकली बलभद्रसिंह—पूछो।

लक्ष्मीदेवी—जिन दिनों मेरी शादी होने वाली थी और जमानिया जाने के लिए मैं पालकी पर सवार होने लगी थी, तब मेरी क्या दुर्दशा हुई थी और मैं किस ढंग से पालकी पर बैठाई गई थी?

नकली बलभद्रसिंह—(कुछ सोचकर) अब इतनी पुरानी बात तो मुझे याद नहीं है। मगर मैं सच कहता हूँ कि मैं ही बलभद्र···

इन्द्रदेव—(क्रोध से सरयूसिंह से) बस, अब विलम्ब करने की आवश्यकता नहीं।

इतना सुनते ही सरयूसिंह ने धक्का देकर नकली बलभद्र को गिरा दिया और औजार डालकर उसकी दाहिनी आँख निकाल ली। नकली बलभद्रसिंह, जिसे अब हम जयपाल के नाम से लिखेंगे, दर्द से तड़पने लगा और बोला, "अफसोस, मेरे हाथ-पैर बँधे हुए हैं, अगर खुले होते तो बेदर्दी का मजा चखा देता।"

इन्द्रदेव—अभी अफसोस क्या करता है, थोड़ी देर में तेरी दूसरी आँख भी निकाली जायगी और उसके बाद तेरा एक-एक अंग काटकर अलग किया जायगा! (सरयूसिंह से) हाँ, सरयूसिंह, अब इसकी दूसरी आँख भी निकाल लो और इसके बाद दोनों पैर काट डालो।

जयपालसिंह—(चिल्लाकर) नहीं-नहीं! जरा ठहरो! मैं तुम्हें बलभद्रसिंह का सच्चा हाल बताता हूँ।

इन्द्रदेव—अच्छा बताओ।

जयपालसिंह—पहले मेरी आँख में कोई दवा लगाओ जिसमें दर्द कम हो जाय, तब मैं तुमसे सब हाल कहूँगा।

इन्द्रदेव—ऐसा नहीं हो सकता, बताना हो तो जल्द बता, नहीं तेरी दूसरी आँख भी निकाल ली जायगी।

जयपालसिंह—अच्छा, मैं अभी बताता हूँ। दारोगा ने उसे अपने बँगले में कैद कर रखा था, मगर अफसोस, मायारानी ने उस बँगले को बारूद के जोर से उड़ा दिया, उम्मीद है, उसी में उस बेचारे की हड्डी-पसली भी उड़ गई होगी।

इन्द्रदेव—(सरयूसिंह से) सरयूसिंह, यह हरामजादा अपनी बदमाशी से बाज न आवेगा, अब तुम एक काम करो, इसकी जो आँख तुमने निकाली है, उसके गड़हे में पिसी हुई लाल मिर्च भर दो।

इतना सुनते ही जयपाल चिल्ला उठा और हाथ जोड़कर बोला—

जयपालसिंह—माफ करो, माफ करो, अब मैं झूठ न बोलूँगा, मुझे जरा दम ले लेने दो, जो कुछ हाल है मैं सच-सच कह दूँगा। इस तरह तड़प-तड़पकर जान देना मुझे मंजूर नहीं। मुझे क्या पड़ी है जो दारोगा का पक्ष करके इस तरह अपनी जान दूँ, कभी नहीं, अब मैं कदापि तुमसे झूठ न बोलूँगा।

इन्द्रदेव—अच्छा-अच्छा, दम ले ले। कोई चिन्ता नहीं, जब तू बलभद्रसिंह का हाल बताने को तैयार ही है तो मैं तुझे क्यों सताने लगा।

जयपालसिंह—(कुछ ठहर कर) इसमें कोई शक नहीं कि बलभद्रसिंह अभी तक

जीता है और इन्दिरा तथा इन्दिरा की माँ के विषय में भी मैं आशा करता हूँ कि दोनों जीती होंगी।

इन्द्रदेव—बलभद्रसिंह के जीते रहने का तो तुझे निश्चय है, मगर इन्दिरा और उसकी माँ के बारे में 'आशा है' से क्या मतलब ?

जयपालसिंह—इन्दिरा और इन्दिरा की माँ को दारोगा ने तिलिस्म में बन्द करना चाहा था, उस समय न मालूम किस ढंग से इन्दिरा तो छूटकर निकल गई, मगर उसकी माँ जमानिया तिलिस्म के चौथे दर्जे में कैद कर दी गई। इसी से उसके बारे में निश्चय रूप से नहीं कह सकता, मगर बलभद्रसिंह अभी तक जमानिया में उस मकान के अन्दर कैद है जिसमें दारोगा रहता था। यदि आप मुझे छुट्टी दें या मेरे साथ चलें तो मैं उसे बाहर निकाल लूँ या आप खुद जाकर जिस ढंग से चाहें उसे छुड़ा लें।

इन्द्रदेव—मुझे तेरी यह बात भी सच नहीं जान पड़ती।

जयपालसिंह—नहीं-नहीं, अबकी दफे मैंने सच बता दिया है।

इन्द्रदेव—यदि मैं वहाँ जाऊँ और बलभद्रसिंह न मिले तो !

जयपालसिंह—मिलने न मिलने से मुझे कोई मतलब नहीं, क्योंकि उस मकान में से ढूँढ़ निकालना आपका काम है, अगर आप ही पता लगाने में कसर कर जायेंगे, तो मेरा क्या कसूर ! हाँ, एक बात और है, इधर थोड़े दिन के अन्दर दारोगा ने किसी दूसरी जगह उन्हें रख दिया हो तो मैं नहीं जानता, मगर दारोगा का रोजनामचा यदि आपको मिल जाय और उसे पढ़ सकें तो बलभद्रसिंह के छूटने में कुछ कसर न रहे।

इन्द्रदेव—क्या दारोगा रोजनामचा बराबर लिखा करता था ?

जयपालसिंह—जी हाँ, वह अपना रत्ती-रत्ती हाल रोजनामचे में लिखता था।

इन्द्रदेव—वह रोजनामचा क्योंकर मिलेगा ?

जयपालसिंह—जमानिया के पक्के घाट के ऊपर ही एक तेली रहता है, उसका मकान बहुत बड़ा है और दारोगा की बदौलत वह भी अमीर हो गया है। उसका नाम भी जयपाल है और उसी के पास दारोगा का रोजनामचा है, यदि आप उससे ले सकें तो अच्छी बात है, नहीं तो कहिये मैं उसके नाम की एक चिट्ठी लिख दूँगा।

इन्द्रदेव—(कुछ सोचकर) बेशक, तुझे उसके नाम की एक चिट्ठी लिख देनी होगी, मगर इतना याद रखना कि यदि बात झूठ निकली तो मैं बड़ी दुर्दशा के साथ तेरी जान लूँगा !

जयपालसिंह—और अगर सच निकली तो क्या मैं छोड़ दिया जाऊँगा ?

इन्द्रदेव—(मुस्कुराकर) हाँ, अगर तेरी मदद से बलभद्रसिंह को हम पा जायेंगे तो तेरी जान छोड़ दी जायगी, मगर तेरे दोनों पैर काट डाले जायेंगे या तेरी दूसरी आँख भी बेकाम कर दी जायगी।

जयपालसिंह—सो क्यों ?

इन्द्रदेव—इसलिए कि तू फिर किसी काम के लायक न रहे और न किसी के साथ बुराई कर सके।

जयपालसिंह—फिर मुझे खाने को कौन देगा ?

इन्द्रदेव—मैं दूंगा।

जयपाल—खैर, जैसी आपकी मर्जी ! मुझे स्वीकार है, मगर इस समय तो मेरी आँख में कोई दवा डालिये नहीं तो मैं मर जाऊंगा।

इन्द्रदेव—हाँ-हाँ, तेरी आँख का इलाज भी किया जायगा, मगर पहले तू उस तेली के नाम की चिट्ठी लिख दे।

जयपाल—अच्छा, मैं लिख देता हूँ, मेरे हाथ खोल कर कलम-दवात-कागज मेरे आगे रक्खो।

यद्यपि आँख की तकलीफ बहुत ज्यादा थी मगर जयपाल भी बड़े ही कड़े दिल का आदमी था। उसका एक हाथ खोल दिया गया, कलम-दवात-कागज उसके सामने रक्खा गया, और उसने जयपाल तेली के नाम एक चिट्ठी लिखकर अपनी निशानी कर दी। चिट्ठी में यह लिखा हुआ था—

"मेरे प्यारे जयपाल चक्री,

दारोगा वाबा वाला रोजनामचा इन्हें दे देना, नहीं तो मेरी और दारोगा की जान न बचेगी। हम दोनों आदमी इन्हीं के कब्जे में हैं।"

इन्द्रदेव ने वह चिट्ठी लेकर अपनी जेब में रक्खी और सरयूसिंह को जयपाल को दूसरी कोठरी में ले जाकर कैद करने का हुक्म दिया तथा जयपाल की आँख में दवा लगाने के लिए भी कहा।

धूर्तराज जयपाल ने निःसन्देह इन्द्रदेव को धोखा दिया। उसने जो तेली के नाम चिट्ठी लिखकर दी उसके पढ़ने से दोनों मतलब निकलते हैं। "हम दोनों आदमी इन्हीं के कब्जे में हैं" ये ही शब्द इन्द्रदेव को फँसाने के लिए काफी थे, अतः देखना चाहिए वहाँ जाने पर इन्द्रदेव की क्या हालत होती है।

लक्ष्मीदेवी, कमलिनी और लाड़िली को हर तरह से समझा-बुझाकर दूसरे दिन प्रातःकाल इन्द्रदेव जमानिया की तरफ रवाना हुए।

10

अब हम अपने पाठकों को काशीपुरी में एक चौमंजिले मकान के ऊपर ले चलते हैं। यह निहायत संगीन और मजबूत बना हुआ है। नीचे से ऊपर तक गेरू से रँगे रहने के कारण देखने वाला तुरन्त कह देगा कि यह किसी गुसाईं का मठ है, काशी के मठधारी गुसाईं नाम ही के साधु या गुसाईं होते हैं। वास्तव में तो उनकी दौलत, उनका व्यापार, उनका रहन-सहन और बर्ताव किसी तरह गृहस्थों और बनियों से कम नहीं होता बल्कि दो हाथ ज्यादा ही होता है। अगर किसी ने धर्म और शास्त्र पर कृपा करके गुसाईंपने की कोई निशानी रख भी ली तो केवल इतनी ही कि एक टोपी गेरुए रंग की सिर पर या गेरुए रंग का एक दुपट्टा कन्धे पर रख लिया, सो भी भरसक रेशमी और बेशकीमत

तो होना ही चाहिए, बस ! अतः इस समय जिस मकान में हम अपने पाठकों को ले चलते हैं, देखनेवाले उस मकान को भी किसी ऐसे ही साधु या गुसाईं का मठ कहेंगे पर वास्तव में ऐसा नहीं है। इस मकान के अन्दर कोई विचित्र मनुष्य रहता है और उसके काम भी बड़े ही अनूठे हैं।

यह मकान भी कई मंजिल का है। नीचे वाली तीनों मंजिलों को छोड़कर इस समय हम ऊपर वाली चौथी मंजिल पर चलते हैं जहाँ एक छोटे-से कमरे में तीन औरतें बैठी हुई आपस में बातें कर रही हैं। रात दो पहर से कुछ ज्यादा जा चुकी है। कमरे के अन्दर यद्यपि बहुत से शीशे लगे हैं मगर रोशनी सिर्फ एक शमादान और एक दीवारगीर की ही हो रही है। शमादान फर्श के ऊपर जल रहा है जहाँ तीनों औरतें बैठी हैं। उनमें एक औरत तो निहायत हसीन और नाजुक है और यद्यपि उसकी उम्र लगभग चालीस वर्ष के पहुँच गई होगी मगर उसकी नजाकत, सुडौली और चेहरे का लोच अभी तक कायम है, उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में अभी तक गुलाबी डोरियाँ और मस्तानापन मौजूद है, सिर के बड़े-बड़े और घने बालों में चाँदी की तरह चमकने वाले बाल दिखाई नहीं देते और न अलग से देखने में ज्यादा उम्र की ही मालूम पड़ती है, साथ ही इसके बाली-पत्ते-गोप-सिकरी-कड़े-छन्द और अँगूठियों की तरफ ध्यान देने से वह रुपये वाली भी मालूम पड़ती है। उसके पास बैठी हुईं दोनों औरतें भी उसी की तरह कमसिन और खूबसूरत नहीं तो कुछ बदसूरत भी नहीं हैं। जो बहुत हसीन और इस मकान की मालिक औरत है उसका नाम बेगम[1] है और बाकी दोनों में एक औरतों का नाम नौरतन और दूसरी का जमालो है।

बेगम—चाहे जयपालसिंह गिरफ्तार हो गया हो मगर भूतनाथ उसका मुकाबल नहीं कर सकता और न भूतनाथ उसे अपनी हिफाजत ही में रख सकता है।

जमालो—ठीक है, मगर जब लक्ष्मीदेवी और राजा वीरेन्द्रसिंह को यह मालूम हो गया कि यह असली बलभद्रसिंह नहीं और इसने बहुत बड़ा धोखा देना चाहा था तो वे उसे जीता कब छोड़ेंगे !

बेगम—तो क्या वह खाली इतने ही कसूर पर मारा जायगा कि उसने अपने को बलभद्रसिंह जाहिर किया ?

जमालो—क्या यह छोटा-सा कसूर है ! फिर असली बलभद्रसिंह का पता लगाने के लिए भी तो लोग उसे दिक करेंगे।

बेगम—अगर इन्साफ किया जायगा तो जयपाल गदाधरसिंह से ज्यादा दोषी न ठहरेगा, ऐसी अवस्था में मुझे यह आशा नहीं होती कि राजा वीरेन्द्रसिंह उसे प्राणदण्ड देंगे।

नौरतन—राजा वीरेन्द्रसिंह चाहे उसे प्राथदण्ड की आज्ञा न भी दें मगर इन्द्रदेव उसे कदापि जीता न छोड़ेगा और यह बात बहुत बुरी हुई कि राजा वीरेन्द्रसिंह ने उसे इन्द्रदेव के हवाले कर दिया।

---

1. बेगम नाम से मुसलमान न समझना चाहिए।

बेगम—जो हो मगर जिस समय मैं उन लोगों के सामने जा खड़ी होऊँगी उस समय जयपाल को छुड़ा ही लाऊँगी, क्योंकि उसी की बदौलत मैं अमीरी कर रही हूँ और उसके लिए नीच से नीच काम करने को भी तैयार हूँ।

जमालो—सो कैसे? क्या तुम असली बलभद्रसिंह के साथ उसका बदला करोगी?

बेगम—हाँ, मैं इन्द्रदेव और लक्ष्मीदेवी से कहूँगी कि तुम जयपालसिंह को मेरे हवाले करो तो असली बलभद्रसिंह को मैं तुम्हारे हवाले कर दूँगी। अफसोस तो इतना ही है कि गदाधरसिंह की तरह जयपालसिंह दिलावर और जीवट का आदमी नहीं है। अगर जयपालसिंह के कब्जे में बलभद्रसिंह होता तो वह थोड़ी ही तकलीफ में इन्द्रदेव या लक्ष्मीदेवी को उसका हाल बता देता।

जमालो—ठीक है मगर जब बलभद्रसिंह तुम्हारे कब्जे से निकल जायगा, तब जयपालसिंह तुम्हारी इज्जत और कदर क्यों करेगा और क्यों दबेगा? सिवाय इसके अब तो दारोगा भी स्वतंत्र नहीं रहा जिसके भरोसे पर जयपाल कूदता था और तुम्हारा घर भरता था।

बेगम—(कुछ सोचकर) हाँ बहिन, सो तो तुम सच कहती हो। और बलभद्रसिंह को छोड़ने से पहले ही मुझे अपना घर ठीक कर लेना चाहिए, मगर ऐसा करने में भी दो बातों की कसर पड़ती है।

जमालो—वह क्या?

बेगम—एक तो वीरेन्द्रसिंह के पक्ष वाले मुझ पर यह दोष लगावेंगे कि तूने बलभभद्रसिंह को क्यों कैद कर रक्खा था, दूसरे, जब से मनोरमा के हाथ तिलिस्मी खंजर लगा है तब से उसका दिमाग आसमान पर चढ़ गया है, वह मुझसे कसम खाकर कह गई है कि 'थोड़े ही दिनों में राजा वीरेन्द्रसिंह और उनके पक्ष वालों को इस दुनिया से उठा दूँगी।' अगर उसका कहना सच हुआ और उसने फिर मायारानी को जमानिया की गद्दी पर ला बैठाया तो मायारानी मुझ पर दोष लगावेंगी कि तूने जयपाल को इतने दिनों तक क्यों छिपा रक्खा और दारोगा से मिलकर मुझे धोखे में क्यों डाला।

नौरतन—बेशक ऐसा ही होगा, मगर इस बात को मैं कभी नहीं मान सकती कि अकेली मनोरमा एक तिलिस्मी खंजर पाकर राजा वीरेन्द्रसिंह के ऐयारों का मुकाबला करेगी और उनके पक्ष वालों को इस दुनिया से उठा देगी। क्या उन लोगों के पास तिलिस्मी खंजर न होगा?

जमालो—मैं भी यही कहने वाली थी, मैंने इस विषय पर बहुत गौर किया मगर सिवा इसके मेरा दिल और कुछ भी नहीं कहता कि राजा वीरेन्द्रसिंह, उनके लड़के और उनके ऐयारों का मुकाबला करने वाला आज दिन इस दुनिया में कोई भी नहीं है, और एक बड़े भारी तिलिस्म के राजा गोपालसिंह भी प्रकट हो गये हैं। ऐसी अवस्था में मायारानी और उनके पक्ष वालों की जीत कदापि नहीं हो सकती।

बेगम—ऐसा ही है, और गदाधरसिंह भी किसी-न-किसी तरह अपनी जान बचा ही लेगा। देखो, इतना बखेड़ा हो जाने पर भी लोगों ने गदाधरसिंह को, जिसने

अपना नाम अब भूतनाथ रख लिया है छोड़ दिया और अब वह चारों तरफ उपद्रव मचा रहा है। ताज्जुब नहीं कि वह जमीन की मिट्टी सूँघता हुआ मेरे घर में भी आ पहुँचे ! यद्यपि उसे मेरा पता कुछ भी मालूम नहीं है मगर वह विचित्र आदमी है, मिट्टी और हवा में मिल गई चीज का भी पता लगा लेता है। (ऊँची साँस लेकर) अगर मुझसे और उससे लड़ाई न हो गई होती तो आज मैं भी तीन हाथ की ऊँची गद्दी पर बैठने का साहस करती, मगर अफसोस, भूतनाथ ने मेरे साथ बहुत ही बुरा सलूक किया ! (कुछ सोचकर) यदि बलभद्रसिंह को लेकर मैं राजा वीरेन्द्रसिंह के पास चली जाऊँ और भूतनाथ के ऊपर नालिश करूँ तो मैं बहुत अच्छी रहूँ ! मेरे मुकदमे की जवाबदेही भूतनाथ कदापि नहीं कर सकता और राजा साहब उसे जरूर प्राणदण्ड की आज्ञा देंगे। बलभद्र-सिंह को छिपा रखने का यदि मुझ पर दोष लगाया जायगा तो मैं कह सकूँगी कि जिस जमाने में जो राजा होता है प्रजा उसी का पक्ष करती है। अगर मैंने मायारानी और दारोगा के जमाने में उन लोगों का पक्ष किया तो कुछ बुरा नहीं किया। मैं इस बात को बिल्कुल नहीं जानती थी बल्कि दारोगा भी नहीं जानता था कि राजा गोपालसिंह को मायारानी ने कैद कर रक्खा है, अतः अब आपका राज्य हुआ है तो मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुई हूँ।

जमालो—बात तो बहुत अच्छी है, फिर इस बात में देर क्यों कर रही हो ? इस काम को जितना जल्द करोगी, तुम्हारा भला होगा।

बेगम—(कुछ सोचकर) अच्छी बात है, ऐसा करने के लिए मैं कल ही यहाँ से रवाना हो जाऊँगी।

इतने ही में दरवाजे के बाहर से यह आवाज आई, "मगर भूतनाथ को भी तो अपनी जान प्यारी है, वह ऐसा करने के लिए तुम्हें जाने कब देगा ?"

तीनों ने चौंककर दरवाजे की तरफ निगाह की और भूतनाथ को कमरे के अन्दर आते हुए देखा।

बेगम—(भूतनाथ से) आओ जी मेरे पुराने दोस्त, भला तुमने मेरे सामने आने का साहस तो किया !

भूतनाथ—साहस और जीवट तो हमारा असली काम है।

बेगम—(अपनी बाईं तरफ बैठने का इशारा करके) इधर बैठ जाओ। मालूम होता है कि पुरानी बातों को तुम बिल्कुल ही भूल गये।

भूतनाथ—(बेगम की दाहिनी तरफ बैठकर)हम दुनिया में आने से भी छः महीने पहले की बात याद रखने वाले आदमी हैं, आज वह दिन नहीं है जिस दिन तुम्हें और जयपाल को देखने के साथ ही डर से मेरे बदन का खून रगों के अन्दर ही जम जाता था, बल्कि आज का दिन उसके बिल्कुल विपरीत है।

बेगम—अर्थात् आज तुम मुझे देखकर खुश होते हो।

भूतनाथ—बेशक !

बेगम—क्या आज तुम मुझसे बिल्कुल नहीं डरते ?

भूतनाथ—रत्ती भर नहीं !

बेगम--क्या अब मैं अगर राजा वीरेन्द्रसिंह के यहाँ तुम पर नालिश करूँ तो मेरा मुकदमा सुना न जायगा और तुम साफ छूट जाओगे ?

भूतनाथ—मगर अब तुम्हें राजा वीरेन्द्रसिंह के सामने पहुँचने ही कौन देगा ?

बेगम—(क्रोध से) रोकेगा ही कौन ?

भूतनाथ—गदाधरसिंह, जो तुम्हें अच्छी तरह सता चुका है और आज फिर सताने के लिए आया है !

बेगम—(क्रोध को पचाकर और कुछ सोचकर) मगर यह तो बताओ कि तुम बिना इत्तिला कराये यहाँ चले क्यों आये ? और पहरे वाले सिपाहियों ने तुम्हें आने कैसे दिया ?

भूतनाथ—तुम्हारे दरवाजे पर कौन है जिसकी जुबानी मैं इत्तिला करवाता या जो मुझे यहाँ आने से रोकता ?

बेगम-- क्या पहरे के सिपाही सब मर गये ?

भूतनाथ—मर ही गये होंगे !

बेगम—क्या सदर दरवाजा खुला हुआ और सुनसान है ?

भूतनाथ—सुनसान तो है मगर खुला हुआ नहीं है, कोई चोर न घुस आवे इस खयाल से आते समय मैं सदर दरवाजा भीतर से वन्द करता आया हूँ । डरो मत, कोई तुम्हारी रकम उठाकर न ले जायगा ।

बेगम—(मन-ही-मन चिढ़ के) जमालो, जरा नीचे जाकर देख तो सही कम्बख्त सिपाही सब क्या कर रहे हैं ।

भूतनाथ—(जमालो से) खबरदार, यहाँ से उठना मत, इस समय इस मकान में मेरी हुकूमत है, बेगम या जयपाल की नहीं ! (बेगम से) अच्छा, अब सीधी तरह से बता दो कि बलभद्रसिंह को कहाँ पर कैद कर रक्खा है ?

बेगम—मैं बलभद्रसिंह को क्या जानूं ?

भूतनाथ—तो अभी किसको लेकर राजा वीरेन्द्रसिंह के पास जाने के लिए तैयार हो गई थी ।

बेगम—तेरे बाप को लेकर जाने वाली थी !

इतना सुनते ही भूतनाथ ने कस के चपत बेगम के गाल पर जमाई जिससे वह तिलमिला गई और कुछ ठहरने के बाद तकिये के नीचे से छुरा निकालकर भूतनाथ पर झपटी । भूतनाथ ने बाएँ हाथ से उसकी कलाई पकड़ ली और दाहिने हाथ से तिलिस्मी खंजर निकाल कर उसके बदन में लगा दिया, साथ ही इसके फुर्ती से नौरतन और जमालो के बदन में भी तिलिस्मी खंजर लगा दिया जिससे बात-की-वात में तीनों बेहोश होकर जमीन पर लम्बी हो गईं । इसके बाद भूतनाथ ने बड़े गौर से चारों तरफ देखना शुरू किया । इस कमरे में दो आलमारियाँ थीं जिनमें वड़े-बड़े ताले लगे हुए थे, भूतनाथ ने तिलिस्मी खंजर मार कर एक आलमारी का कब्जा काट डाला और आलमारी खोल कर उसके अन्दर की चीजें देखने लगा । पहले एक गठरी निकाली, जिसमें बहुत से कागज बँधे हुए थे । शमादान के सामने वह गठरी खोली और एक-एक करके कागज

देखने और पढ़ने लगा यहाँ तक कि सब कागज देख गया और शमादान में लगा-लगा कर सब जला के खाक कर दिये। इसके बाद एक सन्दूकड़ी निकाली जिसमें ताला लगा हुआ था। इस सन्दूकड़ी में भी कागज भरे हुए थे, भूतनाथ ने उन कागजों को भी जला दिया। इसके बाद फिर आलमारी में ढूँढ़ना शुरू किया मगर और कोई चीज उसके काम की न निकली।

भूतनाथ ने अब उस दूसरी आलमारी का कब्जा भी खंजर से काट डाला और अन्दर की चीजों को ध्यान देकर देखना शुरू किया। इस आलमारी में यद्यपि बहुत-सी चीजें भरी हुई थीं मगर भूतनाथ ने केवल तीन चीजें उसमें से निकाल लीं। एक तो दस-बारह पन्ने की छोटी-सी किताब थी जिसे पाकर भूतनाथ बहुत खुश हुआ और चिराग के सामने जल्दी-जल्दी पलट कर दो-तीन पन्ने पढ़ गया, दूसरा एक ताली का गुच्छा था, भूतनाथ ने उसे भी ले लिया, और तीसरी चीज एक हीरे की अँगूठी थी जिसके साथ एक पुर्जा भी बंधा हुआ था। यह अँगूठी एक डिबिया के अन्दर रक्खी हुई थी। भूतनाथ ने अँगूठी में से पुर्जा खोलकर पढ़ा और इसके पाने से बहुत प्रसन्न होकर धीरे से बोला, "बस, अब मुझे और किसी चीज की जरूरत नहीं है।"

इन कामों से छुट्टी पाकर भूतनाथ बेगम के पास आया जो अभी तक बेहोश पड़ी हुई थी और उसकी तरफ देखकर बोला, "अब यह मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकती, ऐसी अवस्था में एक औरत के खून से हाथ रँगना व्यर्थ है।"

भूतनाथ हाथ में शमादान लिए निचले खण्ड में उतर गया जहाँ उसके साथी दो आदमी हाथ में नंगी तलवार लिये हुए मौजूद थे। उसने अपने साथियों की तरफ देख कर कहा, "बस हमारा काम हो गया। बलभद्रसिंह इसी मकान में कैद है, उसे निकाल कर यहाँ से चल देना चाहिए।" इतना कहकर भूतनाथ ने शमादान अपने एक साथी के हाथ में दे दिया और एक कोठरी के दरवाजे पर जा खड़ा हुआ जिसमें दोहरा ताला लगा हुआ था। तालियों का गुच्छा जो ऊपर से लाया था, उसी में से ताली लगा कर ताला खोला और अपने आदमियों को साथ लिए हुए कोठरी के अन्दर घुसा। वह कोठरी खाली थी मगर उसमें से एक दूसरी कोठरी में जाने के लिए दरवाजा था और उसकी जंजीर में भी ताला लगा हुआ था। ताली लगा कर उस ताले को भी खोला और दूसरी कोठरी के अन्दर गया। इसी कोठरी में लक्ष्मीदेवी, कमलिनी और लाड़िली का बाप बलभद्रसिंह कैद था।

दरवाजा खोलते समय जंजीर खटकने के साथ ही बलभद्रसिंह चैतन्य हो गया था। जिस समय उसकी निगाह यकायक भूतनाथ पर पड़ी वह चौंक उठा और ताज्जुब-भरी निगाहों से भूतनाथ को देखने लगा। भूतनाथ ने भी ताज्जुब की निगाह से बलभद्रसिंह को देखा और अफसोस किया, क्योंकि बलभद्रसिंह की अवस्था बहुत ही खराब हो रही थी, शरीर सूख के काँटा हो गया था, चेहरे पर और बदन में झुर्रियाँ पड़ गई थीं, सिर, मूँछ और दाढ़ी के बाल तथा नाखून इतने बढ़ गये थे कि जंगली मनुष्य में और उसमें कुछ भी भेद न जान पड़ता था, अँधेरे में रहते-रहते कुल बदन पीला पड़ गया था, सूरत-शक्ल से भी बहुत ही डरावना मालूम पड़ता था। एक कम्बल, मिट्टी की ठिलिया,

और पीतल का लोटा बस यही उसकी बिसात थी। कोठरी में और कुछ भी न था। भूतनाथ को देख कर यह जिस ढंग से चौंका और काँपा, उसे देखकर भूतनाथ ने गर्दन नीची कर ली और तब धीरे से कहा, "आप उठिये और जल्दी निकल चलिये, मैं आपको छुड़ाने के लिए आया हूँ।"

बलभद्रसिंह—(आश्चर्य से) क्या तू मुझे छुड़ाने के लिए आया है ! क्या यह बात सच है ?

भूतनाथ—जी हाँ।

बलभद्रसिंह—मगर मुझे विश्वास नहीं होता।

भूतनाथ—खैर, इस समय आप यहाँ से निकल चलिये, फिर जो कुछ सवाल-जवाब या सोच-विचार करना हो, कीजियेगा।

बलभद्रसिंह—(खड़े होकर) कदाचित् यह बात सच हो ! और अगर झूठ भी हो तो कोई हर्ज नहीं, क्योंकि मैं इस कैद में रहने के बनिस्बत जल्द मर जाना अच्छा समझता हूँ !

भूतनाथ ने इस बात का कुछ जवाब न दिया और बलभद्रसिंह को अपने पीछे-पीछे आने का इशारा किया। बलभद्रसिंह इतना कमजोर हो गया था कि उसे मकान के नीचे उतरना कठिन जान पड़ता था इसलिए भूतनाथ ने उसका हाथ थाम लिया और नीचे उतार कर दरवाजे के बाहर ले गया। मकान के दरवाजे के बाहर बल्कि गली भर में सन्नाटा छाया हुआ था क्योंकि यह मकान ऐसी अँधेरी और सन्नाटे की गली में था कि वहाँ शायद महीने में एक दफे किसी भले आदमी का गुजर नहीं होता होगा। दरवाजे पर पहुँच कर भूतनाथ ने बलभद्रसिंह से पूछा, "आप घोड़े पर सवार हो सकते हैं ?"

इसके जवाब में बलभद्रसिंह ने कहा, "मुझे उचक कर सवार होने की ताकत तो नहीं, हाँ अगर घोड़े पर बैठा दोगे तो गिरूँगा नहीं !"

भूतनाथ ने शमादान मकान के भीतर चौक में रख दिया और तब बलभद्रसिंह को आगे बढ़ा लेगया। थोड़ी ही दूर पर एक आदमी दो कसे-कसाये घोड़ों की बागडोर थामे बैठा हुआ था। भूतनाथ एक घोड़े पर बलभद्रसिंह को सवार करा के दूसरे घोड़े पर आप जा बैठा और अपने तीनों आदमियों को कुछ कहकर वहाँ से रवाना हो गया।

11

रात बहुत कम बाकी थी जब बेगम, नौरतन और जमालो की बेहोशी दूर हुई।

बेगम—(चारों तरफ देख कर) हैं, यहाँ तो बिल्कुल अंधकार हो रहा है। जमालो, तू कहाँ है ?

नौरतन—जमालो नीचे गई है।

बेगम—क्यों ?

नौरतन—जब हम दोनों होश में आईं तो यहाँ बिल्कुल अंधकार देख कर घबराने लगीं। नीचे चौक में कुछ रोशनी मालूम होती थी, जमालो ने झाँक कर देखा तो यहाँ वाला शमादान चौक में बलता पाया। आहट लेने पर जब मालूम हुआ कि नीचे कोई भी नहीं है तो शमादान लेने के लिए नीचे गई है।

बेगम—हाय, यह क्या हुआ ?

नौरतन—पहले रोशनी आने दो तो कहूँगी। लो, जमालो आ गई।

बेगम—क्यों बहिन जमालो, क्या नीचे बिल्कुल सन्नाटा है ?

जमालो—(शमादान जमीन पर रख कर) हाँ, बिल्कुल सन्नाटा है। तुम्हारे सब आदमी भी न मालूम कहाँ गायब हो गये।

बेगम—हाय-हाय, यहाँ तो दोनों आलमारियाँ टूटी पड़ी हैं ! है है, मालूम होता है कि कागज सभी जला कर राख कर दिये गए ! (एक आलमारी के पास जाकर और अच्छी तरह देख कर) बस, सर्वनाश हो गया ! ताज्जुब यह है कि उसने मुझे जीता क्यों छोड़ दिया !

दोनों आलमारियों और उनकी चीजों की खराबी देख कर बेगम की दशा पागलों जैसी हो गई। उसकी आँखों से आँसू जारी थे और वह घबरा कर चारों तरफ घूम रही थी। थोड़ी ही देर में सवेरा हो गया और तब वह मकान के नीचे आई। एक कोठरी के अन्दर से कई आदमियों के चिल्लाने की आवाज सुनाई पड़ी। आवाज से वह पहचान गई कि उसके सिपाही लोग उसमें बन्द हैं। जब जंजीर खोली तो वे सब बाहर निकले और घबराहट के साथ चारों तरफ देखने लगे। बेगम के पास जाने के पहले ही भूतनाथ ने इन आदमियों को तिलिस्मी खंजर की मदद से बेहोश करके इस कोठरी के अन्दर बन्द कर दिया था।

बेगम ने सभी से बेहोशी का सबब पूछा जिसके जवाब में उन्होंने कहा कि "एक आदमी ने आकर एक खंजर यकायक हम लोगों के बदन से लगाया, हम लोग कुछ भी न सोच सके कि वह पागल है या चोर। बस, एकदम बेहोश हो गये और तन-बदन की सुध जाती रही। फिर क्या हुआ यह हम नहीं जानते। जब होश में आये तो अपने को कोठरी के अन्दर पाया।"

इसके बाद बेगम ने उन लोगों से कुछ भी न पूछा और नौरतन तथा जमालो को साथ लेकर ऊपर वाले उस खण्ड में चली गई जहाँ बलभद्रसिंह कैद था। जब बेगम ने उस कोठरी को खुला पाया और बलभद्रसिंह को उसमें न देखा, तब और हताश हो गई और जमालो की तरफ देख कर बोली, "बहिन, तुमने सच कहा था कि राजा वीरेन्द्रसिंह के पक्षपातियों का मनोरमा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती ! देखो, भूतनाथ के पास भी वैसा ही तिलिस्मी खंजर मौजूद है और उस खंजर की बदौलत उसने जो काम किया उसे भी तुम देख चुकी हो। अगर मैं इसका बदला भूतनाथ से लिया भी चाहूँ तो नहीं ले सकती। क्योंकि अब न तो मेरे कब्जे में बलभद्रसिंह रहा और न वे सबूत रह गये जिनकी बदौलत मैं भूतनाथ को दबा सकती थी। हाय, एक दिन वह था कि मेरी सूरत देख कर भूतनाथ अधमरा हो जाता था और एक आज का दिन है कि मैं भूतनाथ

का कुछ भी नहीं कर सकती। न मालूम इस मकान का और मेरा पता उसे कैसे मालूम हुआ और इतना कर गुजरने पर भी उसने मेरी जान क्यों छोड़ दी ? निःसन्देह इसमें भी कोई भेद है। उसने अगर मुझे छोड़ दिया तो सुखी रहने के लिए नहीं, बल्कि इसमें भी उसने कुछ अपना फायदा सोचा होगा।"

जमालो—बेशक ऐसा ही है, शुक्र करो कि वह तुम्हारी दौलत नहीं ले गया, नहीं तो बड़ा ही अंधेर हो जाता और तुम टुकड़े-टुकड़े को मोहताज हो जातीं। अब तुम इसका भी निश्चय रखो कि जैपालसिंह की जान कदापि नहीं बच सकती।

बेगम—बेशक ऐसा ही है, अब तुम्हारी क्या राय है ?

जमालो—मेरी राय तो यही है कि अब तुम एक पल भी इस मकान में न ठहरो और अपनी जमा-पूंजी लेकर यहाँ से चल दो। तुम्हारे पास इतनी दौलत है कि किसी दूसरे शहर में आराम से रहकर अपनी जिन्दगी बिता सको, जहाँ वीरेन्द्रसिंह के ऐयारों को जाने की जरूरत न पड़े !

बेगम—तुम्हारी राय बहुत ठीक है, तो क्या तुम दोनों मेरा साथ दोगी ?

जमालो—मैं जरूर तुम्हारा साथ दूंगी।

नौरतन—मैं भी ऐसी अवस्था में तुम्हारा साथ नहीं छोड़ सकती। जब सुख के दिनों में तुम्हारे साथ रही तो क्या अब दुःख के जमाने में तुम्हारा साथ छोड़ दूंगी ? ऐसा नहीं हो सकता।

बेगम—अच्छा, तो अब निकल भागने की तैयारी करनी चाहिए।

जमालो—जरूर।

इतने ही में मकान के बाहर बहुत से आदमियों के शोरगुल की आवाज इन तीनों को मालूम पड़ी। बेगम की आज्ञानुसार पता लगाने के लिए जमालो नीचे उतर गई और थोड़ी ही देर में लौट आकर बोली, "है है, गजब हो गया ! राजा साहब के सिपाहियों ने मकान को घेर लिया और तुम्हें गिरफ्तार करने के लिए आ रहे हैं।" जमालो इससे ज्यादा न कहने पाई थी कि धड़धड़ाते हुए बहुत से सरकारी सिपाही मकान के ऊपर चढ़ जाए और उन्होंने बेगम, नौरतन और जमालो को गिरफ्तार कर लिया।

12

काशीपुरी से निकल कर भूतनाथ ने सीधे चुनारगढ़ का रास्ता लिया। पहर दिन चढ़े तक भूतनाथ और बलभद्रसिंह घोड़े पर सवार बराबर चले गए और इस बीच में उन दोनों में किसी तरह की बातचीत न हुई। जब वे दोनों जंगल के किनारे पहुँचे तो बलभद्रसिंह ने भूतनाथ से कहा, "अब मैं थक गया हूँ। घोड़े पर मजबूती के साथ नहीं बैठ सकता। वर्षों की कैद ने मुझे बिल्कुल बेकाम कर दिया। अब मुझमें दस कदम भी चलने की हिम्मत नहीं। अगर कुछ देर तक कहीं ठहरकर आराम कर लेते तो अच्छा होता।"

भूतनाथ—बहुत अच्छा ! थोड़ी दूर और चलिये । इसी जंगल में किसी अच्छे ठिकाने, जहाँ पानी भी मिल सकता हो, ठहर कर आराम कर लेंगे ।

बलभद्रसिंह—अच्छा तो अब घोड़े को तेज मत चलाओ ।

भूतनाथ—(घोड़े की तेजी कम करके) बहुत खूब ।

बलभद्रसिंह—क्यों भूतनाथ, क्या वास्तव में आज तुमने मुझे कैद से छुड़ाया है या मुझे धोखा हो रहा है ?

भूतनाथ—(मुस्करा कर) क्या आपको इस मैदान की हवा मालूम नहीं होती ? या आप अपने को घोड़े पर सवार स्वतन्त्र नहीं देखते ? फिर ऐसा सवाल क्यों करते हैं ?

बलभद्रसिंह—यह सब कुछ ठीक है। मगर अभी तक मुझे विश्वास नहीं होता कि भूतनाथ के हाथों से मुझे मदद पहुँचेगी, यदि तुम मेरी मदद करना ही चाहते तो क्या आज तक मैं कैदखाने में ही पड़ा सड़ा करता ! क्या तुम नहीं जानते थे कि मैं कहाँ और किस अवस्था में हूँ ?

भूतनाथ—बेशक, मैं नहीं जानता था कि आप कहाँ और कैसी अवस्था में हैं। अब उन पुरानी बातों को जाने दीजिए । मगर इधर जब से मैंने आपकी लड़की श्यामा (कमलिनी) की ताबेदारी की है, तब से बल्कि इससे भी बरस डेढ़ बरस पहले ही से मुझे आपकी खबर न थी । मुझे खूब अच्छी तरह विश्वास दिलाया गया था कि अब आप इस दुनिया में नहीं रहे । यदि आज के दो महीने पहले भी मुझे मालूम हो गया होता कि आप जीते हैं और कहीं कैद हैं तो मैं आपको कैद से छुड़ाकर कृतार्थ हो गया होता ।

बलभद्रसिंह—(आश्चर्य से) क्या श्यामा जीती है ?

भूतनाथ—हाँ, जीती है ।

बलभद्रसिंह—तो लाड़िली भी जीती होगी ?

भूतनाथ—हाँ, वह भी जीती है ।

बलभद्रसिंह—ठीक है, क्योंकि वे दोनों मेरे साथ उस समय जमानिया में न आई थीं जब लक्ष्मीदेवी की शादी होने वाली थी । पहले मुझे लक्ष्मीदेवी के भी जीते रहने की आशा न थी, मगर कैद होने के थोड़े ही दिन बाद मैंने सुना कि लक्ष्मीदेवी जीती है और जमानिया की रानी तथा मायारानी कहलाती है ।

भूतनाथ—लक्ष्मीदेवी के बारे में जो कुछ आपने सुना हैसब झूठ है । जमाने में बहुत बड़ा उलट-फेर हो गया जिसकी आपको कुछ भी खबर नहीं । वास्तव में मायारानी कोई दूसरी ही औरत थी और लक्ष्मीदेवी ने भी बड़े-बड़े दुःख भोगे । परन्तु ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए जिसने दुःख के अथाह समुद्र में डूबते हुए लक्ष्मीदेवी के बेड़े को पार कर दिया । अब आप अपनी तीनों लड़कियों को अच्छी अवस्था में पावेंगे । मुझे यह बात पहले मालूम न थी कि मायारानी वास्तव में लक्ष्मीदेवी नहीं है ।

बलभद्रसिंह—क्या वास्तव में ऐसी ही बात है ? क्या सचमुच मैं अपनी तीनों बेटियों को देखूंगा ? क्या तुम मुझ पर किसी तरह का जुल्म न करोगेऔर मुझे छोड़ दोगे ?

भूतनाथ—अब मैं किस तरह अपनी बातों पर आपको विश्वास दिलाऊँ । क्या आपके पास कोई ऐसा सबूत है जिससे मालूम हो कि मैंने आपके साथ बुराई की ?

बलभद्रसिंह—सबूत तो मेरे पास कोई भी नहीं। मगर मायारानी के दारोगा और जैपाल की जुबानी मैंने तुम्हारे विषय में बड़ी-बड़ी बातें सुनी थीं और कुछ दूसरे जरिये से भी मालूम हुआ है।

भूतनाथ—अब तो बस, या तो आप दुश्मनों की बातों को मानिए या मेरी इस खैरख्वाही को देखिए कि कितनी मुश्किल से आपका पता लगाया और किस तरह जान पर खेल कर आपको छुड़ा ले चला हूँ।

बलभद्रसिंह—(लम्बी साँस लेकर) खैर जो हो, आज यदि तुम्हारी बदौलत मैं किसी तरह की तकलीफ न पाकर अपनी तीनों लड़कियों से मिलूंगा तो तुम्हारा कसूर यदि कुछ हो तो मैं माफ करता हूँ।

भूतनाथ—इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। लीजिए, यह जगह बहुत अच्छी है, घने पेड़ों की छाया है और पगडण्डी से बहुत हटकर भी है!

बलभद्रसिंह—ठीक तो है, अच्छा तुम उतरो और मुझे भी उतारो।

दोनों ने घोड़ा रोका, भूतनाथ घोड़े से नीचे उतर पड़ा और उसकी बागडोर एक डाल से अड़ाने के बाद धीरे-से बलभद्रसिंह को भी नीचे उतारा। जीनपोश बिछा कर उन्हें आराम करने के लिए कहा और तब दोनों घोड़ों की पीठ खाली करके लम्बी बाग-डोर के सहारे एक पेड़ के साथ बाँध दिया जिसमें वे भी लोट-पोट कर थकावट मिटा लें और घास चरें।

यहाँ पर भूतनाथ ने बलभद्रसिंह की बड़ी खातिर की। ऐयारी के बटुए में से उस्तरा निकाल कर अपने हाथ से उनकी हजामत बनाई, दाढ़ी मूँड़ी, कैंची लगा कर सिर के बाल दुरुस्त किए, इसके बाद स्नान कराया और बदलने के लिए यज्ञोपवीत दिया। आज बहुत दिनों के बाद बलभद्रसिंह ने चश्मे के किनारे बैठकर संध्या-वन्दन किया और देर तक सूर्य भगवान की स्तुति करते रहे। जब सब तरह से दोनों आदमी निश्चिन्त हुए तो भूतनाथ ने खुर्जी में से कुछ मेवा निकाल कर खाने के लिए बलभद्रसिंह को दिया और आप भी खाया। बलभद्रसिंह को निश्चय हो गया कि भूतनाथ मेरे साथ दुश्मनी नहीं करता और उसने नेकी की राह से मुझे भारी कैदखाने से छुड़ाया है।

बलभद्रसिंह—गदाधरसिंह, शायद तुमने थोड़े ही दिनों से अपना नाम भूतनाथ रखा है?

भूतनाथ—जी हाँ, आज कल मैं इसी नाम से मशहूर हूँ।

बलभद्रसिंह—अस्तु, मैं बड़ी खुशी से तुम्हें धन्यवाद देता हूँ, क्योंकि अब मुझे निश्चय हो गया कि तुम मेरे दुश्मन नहीं हो।

भूतनाथ—(धन्यवाद के बदले में सलाम करके) मगर मेरे दुश्मनों ने मेरी तरफ से आपके कान बहुत भरे हैं और वे बातें ऐसी हैं कि यदि आप राजा वीरेन्द्रसिंह के सामने उन्हें कहेंगे तो मैं उनकी आँखों से उतर जाऊँगा।

बलभद्रसिंह—नहीं-नहीं, मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि तुम्हारे विषय में कोई ऐसी बात किसी के सामने न कहूँगा, जिससे तुम्हारा नुकसान हो।

भूतनाथ—(पुनः सलाम करके) और मैं आशा करता हूँ कि समय पड़ने पर आप

मेरी सहायता भी करेंगे ।

बलभद्रसिंह—मैं सहायता करने योग्य तो नहीं हूँ, मगर हाँ, यदि कुछ कर सकूंगा तो अवश्य करूँगा ।

भूतनाथ—इत्तिफाक से राजा वीरेन्द्रसिंह के ऐयारों ने जैपालसिंह को गिरफ्तार कर लिया है जो आपकी सूरत बनाकर वहाँ लक्ष्मीदेवी को धोखा देने गया था। जब उसे अपने बचाव का कोई ढंग न सूझा तो उसने आपके मार डालने का दोष मुझ पर लगाया। मैं स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था कि आप जीते हैं। परन्तु ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए कि यकायक आपके जीते रहने का शक मुझे हुआ और धीरे-धीरे वह पक्का होता गया तथा मैं आपकी खोज करने लगा। अब आशा है कि आप स्वयं मेरी तरफ से जैपालसिंह का मुँह तोड़ेंगे ।

बलभद्रसिंह—(क्रोध से) जैपाल मेरे मारने का दोष तुम पर लगाकर आप बचाना चाहता है ?

भूतनाथ—जी हाँ ।

बलभद्रसिंह—उसकी ऐसी की तैसी ! उसने तो मुझे ऐसी-ऐसी तकलीफें दी हैं कि मेरा ही जी जानता है। अच्छा, यह बताओ, इधर क्या-क्या मामले हुए और राजा वीरेन्द्रसिंह को जमानिया तक पहुँचने की नौबत क्यों आई ?

भूतनाथ ने जब से कमलिनी की ताबेदारी कबूल की थी, कुल हाल कुँअर इन्द्रजीतसिंह, आनन्दसिंह, मायारानी, दारोगा, कमलिनी, दिग्विजयसिंह और राजा गोपालसिंह वगैरह का बयान किया मगर अपने और जैपालसिंह के मामले में कुछ घटा-बढ़ा कर कहा। बलभद्रसिंह ने बड़े गौर और ताज्जुब से सब बातें सुनीं और भूतनाथ की खैरख्वाही तथा मर्दानगी की बड़ी तारीफ की। थोड़ी देर तक और बातचीत होती रही। इसके बाद दोनों आदमी घोड़ों पर सवार हो चुनारगढ़ की तरफ रवाना हुए और पहर भर के बाद उस तिलिस्म के पास पहुँचे जो चुनारगढ़ से थोड़ी दूर पर था और जिसे राजा वीरेन्द्रसिंह ने फतह किया (तोड़ा) था ।

काशी से चुनारगढ़ बहुत दूर न होने पर भी इन दोनों को वहाँ पहुँचने में देर हो गई। एक तो इसलिए कि दुश्मनों के डर से सदर राह छोड़ भूतनाथ चक्कर देता हुआ गया था। दूसरे रास्ते में ये दोनों बहुत देर तक अटके रहे। तीसरे कमजोरी के सबब से बलभद्रसिंह घोड़े को तेज चला भी नहीं सकते थे ।

पाठक, इस तिलिस्मी खँडहर की अवस्था आज दिन वैसी नहीं है जैसी आपने पहले देखी जब राजा वीरेन्द्रसिंह ने इस तिलिस्म को तोड़ा था। आज इसके चारों तरफ राजा सुरेन्द्रसिंह की आज्ञानुसार बहुत-बड़ी इमारत बन गई है और अभी तक बन रही है। इस इमारत को जीतसिंह ने अपने ढंग का बनवाया था। इसमें बड़े-बड़े तहखाने, सुरंग और गुप्त कोठरियाँ, जिनके दरवाजों का पता लगाना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव था, बनकर तैयार हुई हैं और अच्छे-अच्छे कमरे, सहन, बालाखाने इत्यादि जीतसिंह की बुद्धिमानी का नमूना दिखा रहे हैं। बीच में एक बहुत-बड़ा रमना छूटा हुआ है जिसके बीचोंबीच में तो वह खँडहर है और उसके चारों तरफ बाग लग रहा है। खँडहर की

टूटी हुई इमारत की भी मरम्मत हो चुकी है और अब वह खँडहर नहीं मालूम होता। भीतर की इमारत का का काम बिल्कुल खत्म हो चुका है, केवल बाहरी हिस्से में कुछ काम लगा हुआ है वह भी दस-पन्द्रह दिन से ज्यादे का काम नहीं है। जिस समय बलभद्रसिंह को लिए भूतनाथ वहाँ पहुँचा, उस समय जीतसिंह भी वहाँ मौजूद थे और पन्नालाल, रामनारायण और वद्रीनाथ को साथ लिए हुए फाटक के बाहर टहल रहे थे। पन्नालाल, रामनारायण और पण्डित बद्रीनाथ तो भूतनाथ को बखूबी पहचानते थे, हाँ जीतसिंह ने शायद उसे नहीं देखा था मगर तेजसिंह ने भूतनाथ की तस्वीर अपने हाथ से तैयार करके जीतसिंह और सुरेन्द्रसिंह के पास भेजी थी और उसकी विचित्र घटना का समाचार भी लिखा था।

भूतनाथ को दूर से आते हुए देखकर पन्नालाल ने जीतसिंह से कहा, "देखिए, भूतनाथ चला आ रहा है।"

जीतसिंह—(ग़ौर से भूतनाथ को देखकर) मगर यह दूसरा आदमी उसके साथ कौन है ?

पन्नालाल—मैं इस दूसरे को तो नहीं पहचानता।

जीतसिंह—(बद्रीनाथ से) तुम पहचानते हो ?

इतने में भूतनाथ और बलभद्रसिंह भी वहाँ पहुँच गये। भूतनाथ ने घोड़े पर से उतरकर जीतसिंह को सलाम किया क्योंकि वह जीतसिंह को बखूबी पहचानता था, इसके बाद धीरे से बलभद्रसिंह को भी घोड़े से नीचे उतारा और जीतसिंह की तरफ इशारा करके कहा, "यह तेजसिंह के पिता जीतसिंह हैं।" और दूसरे ऐयारों का भी नाम बताया। बलभद्रसिंह का भी परिचय सभी को देकर भूतनाथ ने जीतसिंह से कहा, "यही बलभद्रसिंह हैं जिनका पता लगाने का बोझ मुझ पर डाला गया था। ईश्वर ने मेरी इज्जत रख ली और मेरे हाथों इन्हें कैद से छुड़ा दिया ! आप तो सब हाल सुन ही चुके होंगे ?"

जीतसिंह—हाँ, मुझे सब हाल मालूम है, तुम्हारे मुकदमे ने तो हम लोगों का दिल अपनी तरफ ऐसा खींच लिया कि दिन-रात उसी का ध्यान बना रहता है, मगर तुम यकायक इस तरफ कैसे आ निकले और इन्हें कहाँ पाया ?

भूतनाथ—मैं इन्हें काशीपुरी से छुड़ाकर लिए आ रहा है, दुश्मनों के खौफ से दक्खिन दबता हुआ चक्कर देकर आना पड़ा इसीसे अब यहाँ पहुँचने की नौबत आई, नहीं तो अब तक कब का चुनार पहुँच गया होता। राजा वीरेन्द्रसिंह की सवारी चुनार की तरफ रवाना हो गई थी इसलिए मैं भी इन्हें लेकर सीधे चुनार ही आया।

जीतसिंह—बहुत अच्छा किया कि यहाँ चले आये। कल राजा वीरेन्द्रसिंह भी यहाँ पहुँच जायँगे और उनका डेरा भी इसी मकान में पड़ेगा। किशोरी, कामिनी और कमला वाला हृदय-विदारक समाचार तो तुमने सुना ही होगा ?

भूतनाथ—(चौंककर) क्या-क्या ? मुझे कुछ भी नहीं मालूम !

जीतसिंह—(कुछ सोचकर) अच्छा, आप लोग जरा आराम कर लीजिये तो हाल कहेंगे क्योंकि बलभद्रसिंह कैद की मुसीबत उठाने के कारण बहुत सुस्त और कम-

जोर हो रहे हैं। (पन्नालाल की तरफ देखकर) पूरब वाले नम्बर दो के कमरे में इन लोगों को डेरा दिलवाओ और हर तरह के आराम का बन्दोबस्त करो, इनकी खातिरदारी और हिफाजत तुम्हारे ऊपर है।

पन्नालाल—जो आज्ञा।

हमारे ऐयारों को इस बात की उत्कण्ठा बहुत ही बढ़ी-चढ़ी थी कि किसी तरह भूतनाथ के मुकदमे का फैसला हो और उसकी विचित्र घटना का हाल जानने में आये क्योंकि इस उपन्यास भर में जैसा भूतनाथ का अद्‌भुत रहस्य हैं वैसा और किसी पात्र का नहीं है। यही कारण था कि उनको इस बात की बहुत बड़ी खुशी हुई कि भूतनाथ असली बलभद्रसिंह को छुड़ाकर ले आया और कल राजा वीरेन्द्रसिंह के यहाँ आ पहुँचने पर इसका विचित्र हाल भी मालूम हो जायगा।

चन्द्रकान्ता सन्तति

सोलहवाँ भाग

1

अब हम अपने पाठकों को पुन: जमानिया के तिलिस्म में ले चलते हैं और इन्दिरा का बचा हुआ किस्सा उसी की जुबानी सुनवाते हैं जिसे छोड़ दिया गया था।

इन्दिरा ने एक लम्बी साँस लेकर अपना किस्सा यों कहना शुरू किया--

इन्दिरा—जब मैं अपनी माँ की लिखी चिट्ठी पढ़ चुकी तो जी में खुश होकर सोचने लगी कि ईश्वर चाहेगा तो अब मैं बहुत जल्द अपनी माँ से मिलूँगी और हम दोनों को इस कैद से छुटकारा मिलेगा, अब केवल इतनी ही कसर है कि दारोगा साहब मेरे पास आवें और जो कुछ वे कहें मैं उसे पूरा कर दूँ। थोड़ी देर तक सोचकर मैंने अन्ना से कहा, "अन्ना, जो कुछ दारोगा साहब कहें उसे तुरन्त करना चाहिए।"

अन्ना—नहीं बेटी, तू भूलती है, क्योंकि इन चालबाजियों को समझने लायक अभी तेरी उम्र नहीं है। अगर तू दारोगा के कहे मुताबिक काम कर देगी तो तेरी माँ और साथ ही उसके तू भी मार डाली जायगी, क्योंकि इसमें कोई सन्देह नहीं कि दारोगा ने तेरी माँ से जबर्दस्ती यह चिट्ठी लिखवाई है।

मैं—तब तुमने इस चिट्ठी के बारे में यह कैसे कहा कि मैं तेरे लिए खुश-खबरी लाई हूँ?

अन्ना—'खुश-खबरी' से मेरा मतलब यह न था कि अगर तू दारोगा के कहे मुताबिक काम कर देगी तो तुझे और तेरी माँ को कैद से छुट्टी मिल जायगी, बल्कि यह था कि तेरी माँ अभी तक जीती-जागती है इसका पता लग गया। क्या तुझे यह मालूम नहीं कि स्वयं दारोगा ही ने तुझे कैद किया है?

मैं—यह तो मैं खुद तुझ से कह चुकी हूँ कि दारोगा ने मुझे धोखा देकर कैद कर लिया है।

अन्ना—तो क्या तुझे छोड़ देने से दारोगा की जान बच जायगी? क्या दारोगा साहब इस बात को नहीं समझते कि अगर तू छूटेगी तो सीधे राजा गोपालसिंह के पास चली जायगी और अपना तथा लक्ष्मीदेवी का भेद उनसे कह देगी? उस समय दारोगा

का क्या हाल होगा ?

मैं—ठीक है, दारोगा मुझ कभी न छोड़ेगा।

अन्ना—बेशक कभी न छोड़ेगा। वह कम्बख्त तो अब तक तुझे मार डाले होता, मगर अब निश्चय हो गया कि उसे तुम दोनों से अपना कुछ मतलब निकालना है इसी-लिए अभी तक कैद किए हुए है, जिस दिन उसका काम हो जायगा उसी दिन तुम दोनों को मार डालेगा। जब तक उसका काम नहीं होता तभी तक तुम दोनों की जान बची है। (चिट्ठी की तरफ इशारा करके) यह चिट्ठी उसने इसी चालाकी से लिखवाई है जिससे तू उसका काम जल्द कर दे।

मैं—अन्ना, तू सच कहती है, अब मैं दारोगा का काम न करूँगी चाहे जो हो।

अन्ना—अगर तू मेरे कहे मुताबिक करेगी तो निःसन्देह तुम दोनों का जान बच रहेगी और किसी-न-किसी दिन तुम दोनों को कैद से छुट्टी भी मिल जायगी।

मैं—बेशक जो तू कहेगी, वही मैं करूँगी।

अन्ना—मगर मैं डरती हूँ कि अगर दारोगा तुझे धमकायेगा या मारे-पीटेगा तो तू मार खाने के डर से उसका काम जरूर कर देगी।

मैं—नहीं-नहीं, कदापि नहीं। अगर वह मेरी बोटी-बोटी भी काटकर फेंक दे तो भी मैं तेरे कहे बिना उसका कोई भी काम न करूँगी।

अन्ना—ठीक है, मगर इसके साथ ही यह भी न कह देना कि यदि अन्ना कहेगी तो मैं तेरा काम कर दूँगी।

मैं—नहीं सो तो न कहूँगी, मगर कहूँगी क्या सो तो बताओ!

अन्ना—बस जहाँ तक हो टालमटोल करती जाना। आजकल करते-करते दो-तीन दिन टाल जाना चाहिए, मुझे आशा है कि इस बीच में हम लोग छूट जायँगे।

सुबह की सुफेदी खिड़कियों में दिखाई देने लगी और दरवाजा खोलकर दारोगा कमरे के अन्दर आता हुआ दिखाई दिया, वह सीधे आकर बैठ गया और बोला "इन्दिरा, तू समझती होगी कि दारोगा साहब ने मेरे साथ दगाबाजी की और मुझे गिरफ्तार कर लिया, मगर मैं धर्म की कसम खाकर कहता हूँ कि वास्तव में यह बात नहीं है, बल्कि सच तो यह है कि स्वयं राजा गोपालसिंह तेरे दुश्मन हो रहे हैं। उन्होंने मुझे हुक्म दिया था कि इन्दिरा को गिरफ्तार करके मार डालो, और उन्हीं की आज्ञानुसार मैं उनके कमरे में बैठा हुआ गिरफ्तार करने की तरकीब सोच रहा था कि यकायक तू आ गई और मैंने तुझे गिरफ्तार कर लिया। मैं लाचार हूँ कि राजा साहब का हुक्म टाल नहीं सकता मगर साथ ही इसके जब तुझे मारने का इरादा करता हूँ तो मुझे दया आ जाती है और तेरी जान बचाने की तरकीब सोचने लगता हूँ। तुझे इस बात का ताज्जुब होगा कि गोपालसिंह तेरे दुश्मन क्यों हो गये, मगर मैं तेरा यह शक भी मिटाये देता हूँ। असल बात यह है कि राजा साहब को लक्ष्मीदेवी के साथ शादी करना मंजूर न था और जिस खूबसूरत औरत के साथ वे शादी करना चाहते थे वह विधवा हो चुकी थी और लोगों की जानकारी में वे उसके साथ शादी नहीं कर सकते थे। इसलिए लक्ष्मीदेवी के बदले में यह दूसरी औरत उलट फेर कर दी गई। उनकी आज्ञानुसार लक्ष्मीदेवी तो मार

डाली गई मगर उन लोगों को भी चुपचाप मार डालने की आज्ञा राजा साहब ने दे दी जिन्हें यह भेद मालूम हो चुका था या जिनकी बदौलत इस भेद के खुल जाने का डर था। तेरे सबब से भी लक्ष्मीदेवी का भेद अवश्य खुल जाता, इसीलिए तू भी उनकी आज्ञानुसार कैद कर ली गई। "

गोपालसिंह—(क्रोध से) क्या कम्बख्त दारोगा ने तुझे इस तरह से समझाया बुझाया ?

इन्दिरा—जी हाँ, और यह बात उसने ऐसे ढंग से अफसोस के साथ कही कि मुझे और मेरी अन्ना को भी थोड़ी देर के लिए उसकी बातों पर पूरा विश्वास हो गया, बल्कि वह उसके बाद भी बहुत देर तक आपकी शिकायत करता रहा।

गोपालसिंह—और मुझे वह बहुत दिनों तक तेरी बदमाशी का विश्वास दिलाता रहा था। अस्तु अब मुझे मालूम हुआ कि तू मेरा सामना करने से क्यों डरती थी। अच्छा, तब क्या हुआ ?

इन्दिरा—दारोगा की बात सुनकर अन्ना ने उससे कहा कि जब आपको इन्दिरा पर दया आ रही है, तो कोई ऐसी तरकीब निकालिये जिसमें इस लड़की और इसकी माँ की जान बच जाय।

दारोगा—मैं खुद इसी फिक्र में लगा हुआ हूँ। इसकी माँ को बदमाशों ने गिरफ्तार कर लिया था मगर ईश्वर की कृपा से वह बच गई, मैंने उसे उन शैतानों के हाथ से बचा लिया।

अन्ना— मगर वह लक्ष्मीदेवी को पहचानती है, और उसकी बदौलत लक्ष्मीदेवी का भेद खुल जाना सम्भव है।

दारोगा—हाँ, ठीक है, मगर इसके लिए भी मैंने एक बन्दोबस्त कर लिया है।

अन्ना—वह क्या ?

दारोगा—(एक चिट्ठी दिखाकर) देख, सरयू से मैंने यह चिट्ठी लिखवा ली है, पहले इसे पढ़ ले।

मैंने और अन्ना ने वह चिट्ठी पढ़ी। उसमें यह लिखा हुआ था—"मेरी प्यारी लक्ष्मी, मुझे इस बात का बड़ा अफसोस है कि तेरे ब्याह के समय मैं नहीं आ सकी ! इसका बहुत बड़ा कारण था जो मुलाकात होने पर तुमसे कहूँगी, मगर अपनी बेटी इन्दिरा की जुबानी यह सुनकर मुझे बड़ी खुशी हुई कि वह विवाह के समय तेरे पास थी, बल्कि ब्याह होने के एक दिन बाद तक तेरे साथ खेलती रही।"

जब मैं चिट्ठी पढ़ चुकी तो दारोगा ने कहा कि बस अब तू भी एक चिट्ठी लक्ष्मीदेवी के नाम से लिख दे और उसमें यह लिखा कि "मुझे इस बात का रंज है कि तेरी शादी होने के बाद एक दिन से ज्यादा मैं तेरे पास न रह सकी मगर मैं तेरी उस छवि को नहीं भूल सकती जो ब्याह के दूसरे दिन देखी थी।" मैं ये दोनों चिट्ठियाँ राजा गोपालसिंह को दूँगा और तुम दोनों को छोड़ देने के लिए उनसे जिद करके उन्हें समझा दूँगा कि "अब सरयू और इन्दिरा की जुबानी लक्ष्मीदेवी का भेद कोई नहीं सुन सकता, अगर ये दोनों कुछ कहेंगी तो इन चिट्ठियों के मुकाबले में स्वयं झूठी बनेंगी।"

मैंने दारोगा की बातों का यह जवाब दिया कि "बात तो आपने बहुत ही ठीक कही, अच्छा मैं आपके कहे मुताबिक चिट्ठी कल लिख दूँगी।"

दारोगा—यह काम देर करने का नहीं है, इसमें जितनी जल्दी करोगी उतनी जल्दी तुम्हें छुट्टी मिलेगी।

मैं—ठीक है मगर इस समय मेरे सिर में बहुत दर्द है, मुझसे एक अक्षर भी न लिखा जायगा।

दारोगा—अच्छा, कोई हर्ज नहीं, कल सही।

इतना कहकर दारोगा हमारे कमरे के बाहर चला गया और फिर मुझमें और अन्ना में बातचीत होने लगी। मैंने अन्ना से कहा, "क्यों अन्ना, तू क्या समझती है? मुझे तो दारोगा की बात सच जान पड़ती है।"

अन्ना—(कुछ सोचकर) जैसी चिट्ठी दारोगा तुमसे लिखाना चाहता है वह केवल इस योग्य ही नहीं कि यदि राजा गोपालसिंह दोषी हैं तो लोक-निन्दा से उनको बचावे बल्कि वह चिट्ठी बनिस्बत उनके दारोगा के काम की ज्यादा होगी, अगर यह स्वयं दोषी है तो।

मैं—ठीक है, मगर ताज्जुब की बात है कि जो राजा साहब मुझे अपनी लड़की से बढ़कर मानते थे वे ही मेरी जान के ग्राहक बन जायँ।

अन्ना—कौन ठिकाना, कदाचित ऐसा ही हो।

मैं—अच्छा तो अब क्या करना चाहिए?

अन्ना—(कुछ सोचकर) चिट्ठी तो कभी न लिखनी चाहिए चाहे राजा गोपालसिंह दोषी हों या दारोगा दोषी हो। इसमें कोई सन्देह नहीं कि चिट्ठी लिख देने के बाद तू मार डाली जायगी।

अन्ना की बात सुनकर मैं रोने लगी और समझ गई कि अब मेरी जान नहीं बचती और ताज्जुब नहीं कि दारोगा के मतलब की चिट्ठी लिख देने के कारण मेरी माँ इस दुनिया से उठा दी गई हो। थोड़ी देर तक तो अन्ना ने रोने में मेरा साथ दिया लेकिन इसके बाद उसने अपने को सम्हाला और सोचने लगी कि अब क्या करना चाहिए। कुछ देर के बाद अन्ना ने मुझसे कहा कि "बेटी, मुझे कुछ आशा हो रही है कि हम लोगों को इस कैदखाने से निकल जाने का रास्ता मिल जायगा। मैं पहले कह चुकी हूँ और अब भी कहती हूँ कि रात को (कोठरी की तरफ इशारा करके) उस कोठरी में सिर पर से गठरी फेंक देने की तरह धमाके की आवाज सुनकर मैं जाग उठी थी और जब उस कोठरी में गई तो वास्तव में एक गठरी पर निगाह पड़ी। अब जो मैं सोचती हूँ तो विश्वास होता है कि उस कोठरी में कोई ऐसा दरवाजा जरूर है जिसे खोलकर बाहर वाला उस कोठरी में आ सके या उसमें से बाहर जा सके। इसके अतिरिक्त इस कोठरी में भी तख्ते बन्दी की दीवार है जिससे कहीं-न कहीं दरवाजा होने का शक हर एक ऐसे आदमी की हो सकता है जिस पर हमारी तरह मुसीबत आई हो, अस्तु आज का दिन तो किसी तरह काट ले, रात को मैं दरवाजा ढूँढ़ने का उद्योग करूँगी।"

अन्ना की बातों से मुझे भी कुछ ढाढ़स हुई। थोड़ी देर बाद कमरे का दरवाजा

खुला और कई तरह की चीजें लिए हुए तीन आदमी कमरे के अन्दर आ पहुँचे। एक के हाथ में पानी का भरा बड़ा लोटा और गिलास था, दूसरा कपड़े की गठरी लिए हुए था, तीसरे के हाथ में खाने की चीजें थीं। तीनों ने सब चीजें कमरे में रख दीं और पहले की रक्खी हुई चीजें और चिरागदान वगैरह उठा ले गये और जाते समय कह गये कि "तुम लोग स्नान करके खाओ पीओ, तुम्हारे मतलब की सब चीजें मौजूद हैं।"

ऐसी मुसीबत में खाना-पीना किसे सूझता है, परन्तु अन्ना के समझाने-बुझाने से जान बचाने के लिए सब-कुछ करना पड़ा। तमाम दिन बीत गया, संध्या होने पर फिर हमारे कमरे के अन्दर खाने-पीने का सामान पहुँचाया गया और चिराग भी जलाया गया मगर रात को हम दोनों ने कुछ भी न खाया।

कैदखाने से निकल भागने की धुन में हम लोगों को नींद बिल्कुल न आई। शायद आधी रात बीती होगी जब अन्ना ने उठकर कमरे का वह दरवाजा अन्दर से बन्द कर लिया जिस राह से वे लोग आते थे, और इसके बाद मुझे उठने और अपने साथ उस कोठरी के अन्दर चलने के लिए कहा जिसमें से कपड़े की गठरी और मेरी माँ के हाथ की लिखी हुई चिट्ठी मिली थी। मैं उठ खड़ी हुई और अन्ना के पीछे-पीछे चली। अन्ना ने चिराग हाथ में उठा लिया और धीरे-धीरे कदम रखती हुई कोठरी के अन्दर गई। मैं पहले बयान कर चुकी हूँ कि उसके अन्दर तीन कोठरियाँ थीं, एक में पायखाना बना हुआ था और दो कोठरियाँ खाली थीं। उन दोनों कोठरियों के चारों तरफ की दीवारें भी तख्तों की थीं। अन्ना हाथ में चिराग लिए एक कोठरी के अन्दर गई और उन लकड़ी वाली दीवारों को गौर से देखने लगी। मालूम होता था कि दीवार कुछ पुराने जमाने की बनी हुई है क्योंकि लकड़ी के तख्ते खराब हो गये थे, और कई तख्तों को घुन ने ऐसा बरबाद कर दिया था कि एक कमजोर लात खाकर भी उनका बच रहना कठिन जान पड़ता था। यह सब-कुछ था मगर जैसाकि देखने में वह खराब और कमजोर मालूम होती थी वैसी वास्तव में न थी क्योंकि दीवार की लकड़ी पाँच या छः अंगुल से कम मोटी न होगी, जिसमें से सिर्फ अंगुल डेढ़ अंगुल के लगभग घुनी हुई थी। अन्ना ने चाहा कि लात मारकर एक दो तख्तों को तोड़ डाले मगर ऐसा न कर सकी।

हम दोनों आदमी बड़े गौर से चारों तरफ की दीवार को देख रहे थे कि यकायक एक छोटे से कपड़े पर अन्ना की निगाह पड़ी जो लकड़ी के दो तख्तों के बीच में फँसा हुआ था। वह वास्तव में एक छोटा-सा रूमाल था, जिसका आधा हिस्सा तो दीवार के उस पार था और आधा हिस्सा हम लोगों की तरफ था। उस कपड़े को अच्छी तरह देखकर अन्ना ने मुझे कहा, "बेटी, देख यहाँ एक दरवाजा अवश्य है। (हाथ से निशान बताकर) यह चारों तरफ की दरार दरवाजे को साफ बता रही है। कोई आदमी इस तरफ आया है मगर लौटकर जाती दफे जब उसने दरवाजा बन्द किया तो उसका रूमाल इसमें फँसकर रह गया। शायद अँधेरे में उसने इस बात का खयाल न किया हो, और देख इस कपड़े के फँस जाने के कारण दरवाजा भी अच्छी तरह बैठा नहीं है, ताज्जुब नहीं यह दरवाजा किसी खटके पर बन्द होता हो और तख्ता अच्छी तरह न बैठने के कारण खटका भी बन्द न हुआ हो।"

वास्तव में जो कुछ अन्ना ने कहा, वही बात थी, क्योंकि जब उसने उस रूमाल को अच्छी तरह पकड़ कर अपनी तरफ खींचा, तो उसके साथ लकड़ी का तख्ता भी खिंच कर हम लोगों की तरफ चला आया और दूसरी तरफ जाने के लिए रास्ता निकल आया। हम दोनों आदमी उस तरफ चले गये और एक कमरे में पहुँचे। उस लकड़ी के तख्ते में जो पेंच पर जड़ा हुआ था और जिसे हटाकर हम लोग उस पार चले गये थे, दूसरी तरफ पीतल का एक मुट्ठा लगा हुआ था, अन्ना ने उसे पकड़ कर खींचा और वह दरवाजा जहाँ-का-तहाँ खट से बैठ गया। अब हम दोनों आदमी जिस कमरे में पहुँचे, वह बहुत बड़ा था। सामने की तरफ एक छोटा-सा दरवाजा नजर आया और उसके पास जाने पर मालूम हुआ कि नीचे उतर जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। दाहिनी और बाईं तरफ की दीवार में छोटी-छोटी कई खिड़कियाँ बनी हुई थीं, दाहिनी तरफ की खिड़कियों में से एक खिड़की कुछ खुली हुई थी, मैंने और अन्ना ने उसमें झाँककर देखा, तो एक मरातिब नीचे छोटा-सा चौक नजर आया, जिसमें साफ-सुथरा फर्श लगा हुआ था, ऊँची गद्दी पर कम्बख्त दारोगा बैठा हुआ था, उसके आगे एक शमादान जल रहा था और उसके पास ही एक आदमी कलम-दवात और कागज लिए बैठा हुआ था।

हम दोनों आदमी दारोगा की सूरत देखते ही चौंके और डर कर पीछे हट गए। अन्ना ने धीरे से कहा, "यहाँ भी वही बला नजर आती है। कहीं ऐसा न हो कि वह कम्बख्त हम लोगों को देख ले या ऊपर चढ़ आवे।"

इतना कहकर अन्ना सीढ़ी की तरफ चली गई और धीरे से सीढ़ी का दरवाजा खींचकर जंजीर चढ़ा दी। वह चिराग जो अपने कमरे में से लेकर यहाँ तक आये थे, एक कोने में रखकर हम दोनों फिर उसी खिड़की के पास गये और नीचे की तरफ झाँककर देखने लगे कि दारोगा क्या कर रहा है। दारोगा के पास जो आदमी बैठा था, उसने एक लिखा हुआ कागज हाथ में उठाकर दारोगा से कहा, "जहाँ तक मुझसे बन पड़ा, मैंने इस चिट्ठी के बनाने में बड़ी मेहनत की।"

दारोगा—इसमें कोई शक नहीं कि तुमने ये अक्षर बहुत अच्छे बनाये हैं और इन्हें देखकर कोई यकायक नहीं कह सकता कि यह सरयू का लिखा हुआ नहीं है। जब मैंने वह पत्र इन्दिरा को दिखाया, तो उसे भी निश्चय हो गया कि यह उसकी माँ के हाथ का लिखा हुआ है, मगर जब गौर करके देखता हूँ, तो सरयू की लिखावट में और इसमें थोड़ा फर्क मालूम पड़ता है। इन्दिरा लड़की है, वह यह बात नहीं समझ सकती, मगर इन्द्रदेव जब इस पत्र को देखेगा तो जरूर पहचान जायेगा कि सरयू के हाथ का लिखा नहीं है, बल्कि जाल बनाया गया है।

आदमी—ठीक है, अच्छा तो मैं इसके बनाने में एक दफे और मेहनत करूँगा, क्या करूँ, सरयू की लिखावट ही ऐसी टेढ़ी-मेढ़ी है कि ठीक नकल नहीं उतरती, जिसमें इस चिट्ठी में कई अक्षर ऐसे लिखने पड़े जो कि मेरे देखे हुए नहीं हैं केवल अन्दाज ही से लिखे हैं।

दारोगा—ठीक है, ठीक है, इसमें कोई शक नहीं कि तुमने बड़ी सफाई से इसे बनाया है, खैर एक दफे और मेहनत करो, और मुझे आशा है, अबकी दफे बहुत ठीक हो

जायेगा। (लम्बी साँस लेकर) क्या कहें, कम्बख्त सरयू किसी तरह मानती ही नहीं। उसे मेरी बातों पर कुछ भी विश्वास नहीं होता, यद्यपि कल मैं उसे फिर दिलासा दूंगा, अगर उसने मेरे दम में आकर अपने हाथ से चिट्ठी लिख दी, तो इस काम को खत्म समझो, नहीं तो तुम्हें पुनः मेहनत करनी पड़ेगी। सरयू और इन्दिरा ने मेरे कहे मुताबिक चिट्ठी लिख दी, तो मैं बहुत जल्द उन दोनों को मारकर बखेड़ा तय करूंगा, क्योंकि मुझे गदाधरसिंह (भूतनाथ) का डर बराबर बना रहता है, वह सरयू और इन्दिरा की खोज में लगा हुआ है और उसे घड़ी-घड़ी मुझी पर शक होता है। यद्यपि मैं उससे कसम खाकर कह चुका हूँ कि मुझे दोनों का हाल कुछ भी मालूम नहीं है मगर उसे विश्वास नहीं होता। क्या करूँ, लाखों रुपये दे देने पर भी मैं उसकी मुट्ठी में फंसा हुआ हूँ, यदि उसे जरा भी मालूम हो जायेगा कि सरयू और इन्दिरा को मैंने कैद में रखा है तो वह बड़ा ही ऊधम मचावेगा और मुझे बरबाद किये बिना न रहेगा।

आदमी—गदाधरसिंह तो मुझे आज भी मिला था।

दारोगा—(चौंक कर) क्या वह फिर इस शहर में आया है? मुझसे तो कह गया था कि मैं दो-तीन महीने के लिए जाता हूँ, मगर वह तो दो-तीन दिन भी गैरहाजिर न रहा था।

आदमी—वह बड़ा शैतान है, उसकी बातों का कुछ भी विश्वास नहीं हो सकता, और इसका जानना तो बड़ा ही कठिन है कि वह क्या करता है, क्या करेगा या किस धुन में लगा हुआ है।

दारोगा—अच्छा, तो मुलाकात होने पर उससे क्या-क्या बात हुई?

आदमी—मैं अपने घर की तरफ जा रहा था कि उसने पीछे से आवाज दी, "ओ रघुबरसिंह, ओ जयपालसिंह!"[1]

दारोगा—बड़ा ही बदमाश है, किसी का अदब लिहाज करना तो जानता ही नहीं! अच्छा, तब क्या हुआ?

रघुबर—उसकी आवाज सुनकर मैं रुक गया, जब वह पास आया, तो बोला, "आज आधी रात के समय मैं दारोगा साहब से मिलने जाऊँगा, उस समय तुम्हें भी वहाँ मौजूद रहना चाहिए।" बस, इतना कहकर चला गया।

दारोगा—तो इस समय वह आता ही होगा?

रघुबर—जरूर आता होगा।

दारोगा—कम्बख्त ने नाक में दम कर दिया है।

इतने ही में बाहर से घंटी बजने की आवाज आई, जिसे सुन दारोगा ने रघुबरसिंह से कहा, "देखो, दरबान क्या कहता है, मालूम होता है, गदाधरसिंह आ गया।"

रघुबरसिंह उठकर बाहर आया और थोड़ी ही देर में गदाधरसिंह को अपने साथ लिए हुए दारोगा के पास आया। गदाधरसिंह को देखते ही दारोगा उठ खड़ा हुआ और बड़ी खातिरदारी और तपाक के साथ मिलकर उसे अपने पास बैठाया।

---

1. जयपालसिंह, बालासिंह और रघुबरसिंह ये सब नाम उसी नकली बलभद्रसिंह के हैं।

दारोगा—(गदाधरसिंह से) आप कब आये ?

गदाधरसिंह—मैं गया ही कब और कहाँ था ?

दारोगा—आप ने कहा न था कि मैं दो-तीन महीने के लिए कहीं जा रहा हूँ !

गदाधरसिंह—हाँ, कहा तो था, मगर एक बहुत बड़ा सबब आ पड़ने से लाचार होकर रुक जाना पड़ा।

दारोगा—क्या, वह सबब मैं भी सुन सकता हूँ।

गदाधरसिंह—हाँ-हाँ, आप ही के सुनने लायक तो वह सबब है, क्योंकि उसके कर्ता-धर्ता भी आप ही हैं।

दारोगा—तो जल्द कहिये।

गदाधरसिंह—जाते ही जाते एक आदमी ने मुझे निश्चय दिलाया कि सरयू और इन्दिरा आप ही के कब्जे में हैं अर्थात् आप ही ने उन्हें कैद करके कहीं छिपा रखा है।

दारोगा - (अपने दोनों कानों पर हाथ रख के) राम राम ! किस कम्बख्त ने मुझ पर यह कलंक लगाया ? नारायण-नारायण ! मेरे दोस्त, मैं तुम्हें कई दफे कसमें खाकर कह चुका हूँ कि सरयू और इन्दिरा के विषय में कुछ भी नहीं जानता, मगर तुम्हें मेरी बातों का विश्वास ही नहीं होता।

गदाधरसिंह—न तो मेरी बातों पर आपको विश्वास करना चाहिए और न आप की कही हुई बातों को मैं ही ब्रह्मवाक्य समझ सकता हूँ। बात यह है कि इन्द्रदेव को मैं अपने सगे भाई से बढ़ के समझता हूँ, चाहे मैंने आपसे रिश्वत लेकर बुरा काम ही क्यों न किया हो, मगर अपने दोस्त इन्द्रदेव को किसी तरह का नुकसान न पहुँचने दूंगा। आप सरयू और इन्दिरा के बारे में बार-बार कसमें खाकर अपनी सफाई दिखाते हैं और मैं जब उन लोगों के बारे में तहकीकात करता हूँ, तो बार-बार यही मालूम पड़ता है कि वे दोनों आपके कब्जे में हैं, अतः आज मैं एक आखिरी बात आपसे कहने आया हूँ, अबकी बार आप खूब अच्छी तरह समझ-बूझकर जवाब दें।

दारोगा—कहो, कहो, क्या कहते हो ? मैं सब तरह से तुम्हारी दिलजमई करा दूंगा···

गदाधरसिंह—आज मैं इस बात का निश्चय करके आया हूँ कि इन्दिरा और सरयू का हाल आपको मालूम है, अतः साफ-साफ कहे देता हूँ कि यदि वे दोनों आपके कब्जे में हों, तो ठीक-ठीक बता दीजिए, उनको छोड़ देने पर इस काम के बदले में जो कुछ आप कहें मैं करने को तैयार हूँ लेकिन यदि आप इस बात से इनकार करेंगे और पीछे साबित होगा कि आपने ही उन्हें कैद किया था, तो मैं कसम खाकर कहता हूँ कि सबसे बढ़कर बुरी मौत जो कही जाती है वही आपके लिए कायम की जायेगी।

दारोगा—जरा जबान सम्हाल कर बातें करो। मैं तो दोस्ताना ढंग पर नरमी के साथ तुमसे बातें करता हूँ और तुम तेज हुए जाते हो ?

गदाधरसिंह—जी, मैं आपके दोस्ताना ढंग को अच्छी तरह समझता हूँ, अपनी कसमों का विश्वास तो उसे दिलाइए, जो आपको केवल बाबाजी समझता हो। मैं तो आपको पूरा झूठा, बेईमान और विश्वासघाती समझता हूँ और आपका कोई हाल मुझसे

छिपा हुआ नहीं है। जब मैंने कलमदान आपको वापस किया था, तब भी आपने कसम खाई थी कि तुम्हारे और तुम्हारे दोस्तों के साथ कभी किसी तरह की बुराई न करूँगा, मगर फिर भी आप चालबाजी करने से बाज न आये !

दारोगा—यह सब-कुछ ठीक है, मगर मैं जब एक दफे कह चुका कि सरयू और इन्दिरा का हाल मुझे कुछ भी मालूम नहीं है, तब तुम्हें अपनी बात पर ज्यादा खींच न करनी चाहिए, हाँ, अगर तुम इस बात को साबित कर सको, तो जो कुछ कहो मैं जुर्माना देने के लिए तैयार हूँ, यों अगर बेफायदे की तकरार बढ़ाकर लड़ने का इरादा हो तो बात ही दूसरी है। इसके अतिरिक्त अब तुम्हें जो कुछ कहना हो, इसको खूब सोच-समझ कर कहो कि तुम किसके मकान में और कितने आदमियों को साथ लेकर आये हो।

इतना कहकर इन्दिरा रुक गई और एक लम्बी साँस लेकर उसने राजा गोपालसिंह और दोनों कुमारों से कहा—

इन्दिरा—गदाधरसिंह और दारोगा में इस ढंग की बातें हो रही थीं और हम दोनों खिड़की में से सुन रहे थे। मुझे यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि गदाधरसिंह हम दोनों माँ-बेटियों को छुड़ाने की फिक्र में लगा हुआ है। मैंने अन्ना के कान में मुँह लगाकर कहा कि "देख अन्ना, दारोगा हम लोगों के बारे में कितना झूठ बोल रहा है ! नीचे उतर जाने के लिए रास्ता मौजूद ही है, चलो हम दोनों आदमी नीचे पहुँच कर गदाधरसिंह के सामने खड़े हो जायें।" अन्ना ने जवाब दिया कि "मैं भी यही सोच रही हूँ, मगर इस बात का खयाल है कि अकेला गदाधरसिंह हम लोगों को किस तरह छुड़ा सकेगा ! कहीं ऐसा न हो कि हम लोगों को अपने सामने देखकर दारोगा गदाधरसिंह को भी गिरफ्तार कर ले, फिर हमारा छुड़ाने वाला कोई भी न रहेगा।" अन्ना नीचे उतरने से हिचकती थी, मगर मैंने उसकी बात न मानी, आखिर लाचार होकर मेरा हाथ पकड़े हुए वह नीचे उतरी और गदाधरसिंह के पास खड़ी होकर बोली, "दारोगा झूठा है, इस लड़की को इसी ने कैद कर रखा है और इसकी माँ को भी न मालूम कहाँ छिपाये हुए है।"

मेरी सूरत देखते ही दारोगा का चेहरा पीला पड़ गया और गदाधरसिंह की आँखें मारे क्रोध के लाल हो गईं। गदाधरसिंह ने दारोगा से कहा, "क्यों बे हरामजादे के बच्चे ! क्या अब भी तू अपनी कसमों पर भरोसा करने के लिए मुझसे कहेगा !"

गदाधरसिंह की बातों का जवाब दारोगा ने कुछ भी न दिया और इधर-उधर झाँकने लगा। इत्तिफाक से वह कलमदान भी उसी जगह पड़ा हुआ था, जिसके ऊपर मेरी तस्वीर थी और जो गदाधरसिंह ने रिश्वत लेकर दारोगा को दे दिया था। दारोगा असल में यह देख रहा था कि गदाधरसिंह की निगाह उस कलमदान पर तो नहीं पड़ी, मगर वह कलमदान गदाधरसिंह की नजरों से दूर न था, अतः उसने दारोगा की अवस्था देखकर फुर्ती के साथ वह कलमदान उठा लिया और दूसरे हाथ से तलवार खींचकर सामने खड़ा हो गया। उस समय दारोगा को विश्वास हो गया कि अब उसकी जान किसी तरह नहीं बच सकती। यद्यपि रघुबरसिंह उसके पास बैठा हुआ था, मगर वह इस बात को खूब जानता था कि हमारे ऐसे दस आदमी भी गदाधरसिंह को काबू में नहीं कर सकते, इसलिए उसने मुकाबला करने की हिम्मत न की और अपनी जगह से उठकर भागने लगा,

परन्तु जा न सका, गदाधरसिंह ने उसे एक लात ऐसी जमाई कि वह धम्म से जमीन पर गिर पड़ा और बोला, "मुझे क्यों मारते हो ? मैंने क्या बिगाड़ा है ? मैं तो खुद यहाँ से चले जाने को तैयार हूँ !"

गदाधरसिंह ने कलमदान कमरबन्द में खोंस कर कहा, "मैं तेरे भागने को खूब समझता हूँ, तू अपनी जान बचाने की नीयत से नहीं भागता, बल्कि बाहर पहरे वाले सिपाहियों को होशियार करने के लिए भागता है। खबरदार, अपनी जगह से हिला तो अभी भुट्टे की तरह तेरा सिर उड़ा दूंगा। (दारोगा से) बस, अब तुम भी अगर अपनी जान बचाना चाहते हो, तो चुपचाप बैठे रहो !"

गदाधरसिंह की डपट से दोनों हरामखोर जहाँ-के-तहाँ रह गये, अपनी जगह से हिलने या मुकाबला करने की हिम्मत न पड़ी। हम दोनों को साथ लिए हुए गदाधरसिंह उस मकान के बाहर निकल आया। दरवाजे पर कई पहरेदार सिपाही मौजूद थे, मगर किसी ने रोक-टोक न की और हम लोग तेजी के साथ कदम बढ़ाते हुए उस गली के बाहर निकल गये। उस समय मालूम हुआ कि हम लोग जमानिया के बाहर नहीं हैं।

गली के बाहर निकल कर जब हम लोग सड़क पर पहुँचे तो दो घोड़ों का एक रथ और दो सवार दिखाई पड़े। गदाधरसिंह ने मुझको और अन्ना को रथ पर सवार करा या और आप भी उसी रथ पर बैठ गया। 'हू' करने के साथ ही रथ तेजी के साथ रवाना हुआ और पीछे-पीछे दोनों सवार भी घोड़ा फेंकते हुए जाने लगे।

उस समय मेरे दिल में दो बातें पैदा हुईं, एक तो यह कि गदाधरसिंह ने दारोगा को जीता क्यों छोड़ दिया, दूसरे यह कि हम लोगों को राजा गोपालसिंह के पास न ले जाकर कहीं और क्यों लिए जाता है ! मगर मुझे इस विषय में कुछ पूछने की आवश्यकता न पड़ी, क्योंकि शहर के बाहर निकल जाने पर गदाधरसिंह ने स्वयं मुझसे कहा, "बेटी इन्दिरा, निःसन्देह कम्बख्त दारोगा ने तुझे बड़ा ही कष्ट दिया होगा और तू सोचती होगी कि मैंने दारोगा को जीता क्यों छोड़ दिया तथा मुझे राजा गोपालसिंह के पास न ले जाकर अपने घर क्यों लिए जाता हूँ, अतः मैं इसका जवाब इसी समय दे देना उचित समझता हूँ। दारोगा को मैंने यह सोचकर छोड़ दिया कि अभी तेरी माँ का पता लगाना है और निःसन्देह वह भी दारोगा ही के कब्जे में है जिसका पता मुझे लग चुका है, तथा राजा साहब के पास मैं तुझे इसलिए नहीं ले गया कि महल में बहुत से आदमी ऐसे हैं जो दारोगा के मेली हैं, राजा गोपालसिंह तथा मैं भी उन्हें नहीं जानता। ताज्जुब नहीं कि वहाँ पहुँचने पर तू फिर किसी नई मुसीबत में पड़ जाये।"

मैं—आपका सोचना बहुत ठीक है, मेरी माँ भी महल ही में से गायब हो गई थी, तो क्या आप इस बात की खबर भी राजा गोपालसिंह को न करेंगे ?

गदाधरसिंह—राजा साहब को इस मामले की खबर जरूर की जायगी, मगर अभी नहीं।

मैं—तब कब ?

गदाधरसिंह—जब तेरी माँ को भी कैद से छुड़ा लूंगा तब। हाँ, अब तू अपना हाल कहा कि दारोगा ने तुझे कैसे गिरफ्तार कर लिया और यह दाई तेरे पास कैसे

पहुँची ?

मैं अपना और अपनी अन्ना का किस्सा शुरू से आखीर तक पूरा-पूरा कह गयी जिसे सुनकर गदाधरसिंह का बचा-बचाया शक भी जाता रहा और उसे निश्चय हो गया कि मेरी माँ भी दारोगा के ही कब्जे में है ।

सवेरा हो जाने पर हम लोग सुस्ताने और घोड़ों को आराम देने के लिए एक जगह कुछ देर तक ठहरे और फिर उसी तरह रथ पर सवार हो रवाना हुए । दोपहर होते-होते हम लोग एक ऐसी जगह पहुँचे जहाँ दो पहाड़ियों की तलहटी (उपत्यका) एक साथ मिली थी । वहाँ सभी को सवारी छोड़कर पैदल चलना पड़ा । मैं यह नहीं जानती कि सवारी के साथ वाले और घोड़े किधर रवाना किये गये या उनके लिए अस्तबल कहाँ बना हुआ था । मुझे और अन्ना को घुमाता और चक्कर देता हुआ गदाधरसिंह पहाड़ के दर्रे में ले गया जहाँ एक छोटा-सा मकान अनगढ़ पत्थर के ढोकों से बना हुआ था, कदाचित् वह गदाधरसिंह का अड्डा हो । वहाँ उसके कई आदमी थे जिनकी सूरत आज तक मुझे याद है । अब जो मैं विचार करती हूँ तो यही कहने की इच्छा होती है कि वे लोग बदमाशी, बेरहमी और डकैती के साँचे में ढले हुए थे तथा उनकी सूरत-शक्ल और पोशाक की तरफ ध्यान देने से डर मालूम होता था ।

वहाँ पहुँचकर गदाधरसिंह ने मुझसे और अन्ना से कहा कि तुम दोनों बेखौफ होकर कुछ दिन तक आराम करो, मैं सरयू को छुड़ाने की फिक्र में जाता हूँ । जहाँ तक होगा, बहुत जल्द लौट आऊँगा । तुम दोनों को किसी तरह की तकलीफ न होगी, खाने पीने का सामान यहाँ मौजूद ही है और जितने आदमी यहाँ हैं, सब तुम्हारी खिदमत करने के लिए तैयार हैं इत्यादि बहुत-सी बातें गदाधरसिंह ने हम दोगों को समझाईं और अपने आदमियों से भी बहुत देर तक बातें करता रहा । दो पहर दिन और तमाम रात गदाधरसिंह वहाँ रहा तथा सुबह के वक्त फिर हम दोनों को समझाकर जमानिया की तरफ रवाना हो गया ।

मैं तो समझती थी कि अब मुझे पुनः किसी तरह की मुसीबत का सामना न करना पड़ेगा और मैं गदाधरसिंह की बदौलत अपनी माँ तथा लक्ष्मीदेवी से भी मिलकर सदैव के लिए सुखी हो जाऊँगी, मगर अफसोस, मेरी मुराद पूरी न हुई और उस दिन के बाद फिर मैंने गदाधरसिंह की सूरत भी न देखी । मैं नहीं कह सकती कि वह किसी आफत में फंस गया या रुपये की लालच ने उसे हम लोगों का भी दुश्मन बना दिया । इसका असल हाल उसी की जुबानी मालूम हो सकता है—यदि वह अपना हाल ठीक-ठीक कह दे तो । अतः अब मैं यह बयान करती हूँ कि उस दिन के बाद मुझ पर क्या मुसीबतें गुजरीं और मैं अपनी माँ के पास तक क्योंकर पहुँची ।

गदाधरसिंह के चले जाने के बाद आठ दिन तक तो मैं बेखौफ बैठी रही, पर नौवें दिन से मेरी मुसीबत की घड़ी फिर शुरू हो गई । आधी रात का समय था, मैं और अन्ना एक कोठरी में सोई हुई थीं, यकायक किसी की आवाज सुनकर हम दोनों की आँखें खुल गईं और तब मालूम हुआ कि कोई दरवाजे के बाहर किवाड़ खटखटा रहा है, अन्ना

ने उठकर दरवाजा खोला तो पण्डित मायाप्रसाद पर निगाह पड़ी। कोठरी के अन्दर चिराग जल रहा था और मैं पण्डित मायाप्रसाद को अच्छी तरह पहचानती थी।

2

इन्दिरा ने जब अपना किस्सा कहते-कहते पण्डित मायाप्रसाद का नाम लिया, तो राजा गोपालसिंह चौंक गये और इन्होंने ताज्जुब में आकर इन्दिरा से पूछा, "पण्डित मायाप्रसाद कौन ?"

इन्दिरा—आपके कोषाध्यक्ष (खजांची)।

गोपालसिंह—क्या उसने भी तुम्हारे साथ दगा की ?

इन्दिरा—सो मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकती, मेरा हाल सुनकर कदाचित् आप कुछ अनुमान कर सकें। क्या मायाप्रसाद अब भी आपके यहाँ काम करते हैं ?

गोपालसिंह—हाँ, है तो सही। मगर आजकल मैंने उसे किसी दूसरी जगह भेजा है। अतः अब मैं इस बात को बहुत जल्द सुनना चाहता हूँ कि उसने तेरे साथ क्या व्यवहार किया ?

हमारे पाठक महाशय पहले भी मायाप्रसाद का नाम सुन चुके हैं, सन्तति पन्द्रहवें भाग के तीसरे बयान में इनका जिक्र आ चुका है। तारासिंह के एक नौकर ने नानक की स्त्री श्यामा के प्रेमियों के नाम बताये थे। उन्हीं में इनका नाम भी दर्ज हो चुका है। ये महाशय जाति के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और अपने को ऐयार भी लगाते थे।

इन्दिरा ने फिर अपना किस्सा कहना शुरू किया—

इन्दिरा—उस समय मैं मायाप्रसाद को देखकर बहुत खुश हुई और समझी कि मेरा हाल राजा साहब (आप) को मालूम हो गया है और राजा साहब ही ने इन्हें मेरे पास भेजा है। मैं जल्दी से उठकर उनके पास गई और मेरी अन्ना ने उन्हें दण्डवत करके कोठरी में आने के लिए कहा जिसके जवाब में पण्डितजी बोले, "मैं कोठरी के अन्दर नहीं आ सकता और न इतनी मोहलत है।"

मैं—क्यों ?

मायाप्रसाद--मैं इस समय केवल इतना ही कहने आया हूँ कि तुम लोग जिस तरह बन पड़े अपनी जान बचाओ और जहाँ तक जल्दी हो सके, यहाँ से निकल भागो, क्योंकि गदाधरसिंह दुश्मनों के हाथ में फँस गया है और थोड़ी ही देर में तुम लोग भी गिरफ्तार होना चाहती हो।

मायाप्रसाद की बात सुनकर मेरे तो होश उड़ गये। मैंने सोचा कि अब अगर किसी तरह दारोगा मुझे पकड़ पावेगा, तो कदापि जीता न छोड़ेगा। आखिर अन्ना ने घबराकर पण्डितजी से पूछा, "हम लोग भागकर कहाँ जायें और किसके सहारे किधर भागें ?" पण्डितजी ने कुछ सोचकर कहा, "अच्छा, तुम दोनों मेरे पीछे चली आओ।"

उस समय हम दोनों ने इस बात का जरा भी खयाल न किया कि पण्डितजी सच बोलते हैं या दगा करते हैं। हम दोनों आदमी पण्डितजी को बखूबी जानते थे और उन पर विश्वास करते थे। अतः उसी समय चलने के लिए तैयार हो गये और कोठरी के बाहर निकलकर उनके पीछे-पीछे रवाना हुए। जब मकान के बाहर निकले तो दरवाजे के दोनों तरफ कई आदमियों को टहलते हुए देखा, मगर अँधेरी रात होने और जल्दी-जल्दी निकल भागने की धुन में लगे रहने के कारण उन लोगों को पहचान न सके। इसी लिए नहीं कह सकती कि वे लोग गदाधरसिंह के आदमी थे या किसी दूसरे के। उन आदमियों ने हम लोगों से कुछ नहीं पूछा और हम दोनों बिना किसी रुकावट के पण्डित-जी के पीछे-पीछे जाने लगे। थोड़ी दूर जाकर दो आदमी और मिले, एक के हाथ में मशाल थी और दूसरे के हाथ में नंगी तलवार। निःसन्देह वे दोनों आदमी मायाप्रसाद के नौकर थे जो हुक्म पाते ही हम लोगों के आगे-आगे रवाना हुए। उस पहाड़ी से नीचे उतरने का रास्ता बहुत ही पेचीला और पथरीला था। यद्यपि हम दोनों आदमी एक दफे उस रास्ते को देख चुके थे, मगर फिर भी किसी के राह दिखाये बिना वहाँ से निकल जाना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव था, पर एक तो हम लोग मायाप्रसाद के पीछे-पीछे जा रहे थे दूसरे मशाल की रोशनी साथ-साथ थी, इसलिए शीघ्रता से हम लोग पहाड़ी के नीचे उतर आये और पण्डितजी की आज्ञानुसार दाहिनी तरफ घूमकर जंगल ही जंगल चलने लगे। सवेरा होते-होते हम लोग एक खुले मैदान में पहुँचे और वहाँ एक छोटा-सा बगीचा नजर पड़ा। पंडितजी ने हम दोनों से कहा कि तुम लोग बहुत थक गई हो। इस लिए थोड़ी देर तक बगीचे में आराम कर लो, तब तक हम लोग सवारी का बन्दोबस्त करते हैं जिसमें आज ही तुम राजा गोपालसिंह के पास पहुँच जाओ।

मुझे उस छोटे से बगीचे में किसी आदमी की सूरत दिखाई न पड़ी। न तो वहाँ का कोई मालिक नजर आया और न किसी माली या नौकर ही पर नजर पड़ी, मगर बगीचा बहुत साफ और हरा-भरा था। पंडितजी ने अपने दोनों आदमियों को किसी काम के लिए रवाना किया और हम दोनों को उस बगीचे में बेफिक्री के साथ रहने की आज्ञा देकर खुद भी आधी घड़ी के अन्दर ही लौट आने का वादा करके कहीं चले गये। पंडितजी और उनके आदमियों को गये हुए अभी चौथाई घड़ी भी न बीती होगी कि दो आदमियों को साथ लिए हुए कम्बख्त दारोगा बाग के अन्दर आता हुआ दिखाई पड़ा।

3

दारोगा की सूरत देखते ही मेरी और अन्ना की जान सूख गई और हम दोनों को विश्वास हो गया कि पण्डितजी ने हमारे साथ दगा की। उस समय सिवा जान देने के और मैं क्या कर सकती थी? इधर-उधर देखने पर जान देने का कोई जरिया दिखाई न पड़ा, अगर उस समय मेरे पास कोई हर्बा होता तो मैं जरूर अपने को मार डालती।

दारोगा ने भी मुझे दूर से देखा और कदम बढ़ाता हुआ हम दोनों के पास पहुँचा। मारे क्रोध के उसकी आँखें लाल हो रही थीं और होंठ काँप रहे थे। उसने अन्ना की तरफ देख कर कहा, "क्यों री कम्बख्त लौंडी, अब तू मेरे हाथ से बचकर कहाँ जायगी? यह सारा फसाद तेरा ही उठाया हुआ है, न तू दरवाजा खोलकर दूसरे कमरे में जाती न गदाधर-सिंह को इस बात खबर होती। तूने ही इन्दिरा को ले भागने की नीयत से मेरी जान आफत में डाली थी, अतः अब मैं तेरी जान लिए बिना नहीं रह सकता, क्योंकि तुझ पर मुझे बड़ा ही क्रोध है।"

इतना कह दारोगा ने म्यान से तलवार निकाल ली और एक ही हाथ में बेचारी अन्ना का सिर धड़ से अलग कर दिया, उसकी लाश तड़पने लगी और मैं चिल्लाकर उठ खड़ी हुई।

इतना हाल कहते-कहते इन्दिरा की आँखों में आँसू भर आये। इन्द्रजीतसिंह, आनन्दसिंह और राजा गोपालसिंह को भी उसकी अवस्था पर बड़ा दुःख हुआ और बेई-मान नमकहराम दारोगा को क्रोध से याद करने लगे। तीनों भाइयों ने इन्दिरा को दिलासा दिया और चुप करा के अपना किस्सा पूरा करने के लिए कहा। इन्दिरा ने आँसू पोंछकर फिर कहना शुरू किया—

इन्दिरा—उस समय मैं समझती थी कि दारोगा मेरी अन्ना को तो मार ही चुका है, अब उसी तलवार से मेरा भी सिर काट के बखेड़ा तय करेगा, मगर ऐसा न हुआ, उसने रूमाल से तलवार पोंछकर म्यान में रख ली और अपने नौकर के हाथ से चाबुक ले मेरे सामने आकर बोला, "अब बुला गदाधरसिंह को, आकर तेरी जान बचाये।"

इतना कह उसने मुझे उसी चाबुक से मारना शुरू किया। मैं मछली की तरह तड़प रही थी, लेकिन उसे कुछ भी दया नहीं आती थी और वह बार-बार यही कहकर चाबुक मारता था कि "अब बता, मेरे कहे मुताबिक चिट्ठी लिख देगी या नहीं?" पर मैं भी इस बात का दिल में निश्चय कर चुकी थी कि चाहे कैसी ही दुर्दशा से मेरी जान क्यों न ली जाय, मगर उसके कहे मुताबिक चिट्ठी कदापि न लिखूँगी।

चाबुक की मार खाकर मैं जोर से चिल्लाने लगी। उसी समय दाईं तरफ से एक औरत दौड़ती हुई आई जिसने डपटकर दारोगा से कहा, "क्यों चाबुक मारकर इस बेचारी की जान ले रहे हो? ऐसा करने से तुम्हारा मतलब कुछ भी न निकलेगा। तुम जो कुछ चाहते हो, मुझे कहो। मैं बात की बात में तुम्हारा काम करा देती हूँ।"

उस औरत की उम्र का पता बताना कठिन था, न तो वह कमसिन थी और न बूढ़ी ही थी, शायद तीस-पैंतीस वर्ष की अवस्था हो या इससे कुछ कम या ज्यादा हो। उसका रंग काला और बदन गठीला तथा मजबूत था, घुटने से कुछ नीचे तक का पाय-जामा और उसके ऊपर दक्षिणी ढंग की साड़ी पहने हुए थी, जिसकी लाँग पीछे की तरफ खुसी थी। कमर में एक मोटा कपड़ा लपेटे हुए थी जिसमें शायद कोई गठरी या और कोई चीज बँधी हुई हो।

उस औरत की बात सुनकर दारोगा ने चाबुक मारना बन्द किया और उसकी तरफ देखकर कहा, "तू कौन है?"

औरत—चाहे मैं कोई होऊँ इससे कुछ मतलब नहीं तुम जो कुछ चाहते हो मुझसे कहो, मैं तुम्हारा काम पूरा कर दूंगी। चाबुक मारते समय जो कुछ तुम कहते हो, उससे मालूम होता है इस लड़की से तुम कुछ लिखाना चाहते हो! इससे जो कुछ लिखवाना चाहते हो, मुझे बताओ मैं लिखवा दूंगी। इस समय मारने-पीटने से कोई काम न चलेगा क्योंकि इसके एक पक्षपाती ने, जिसने अभी तुम्हारे आने की खबर दी थी, इसे समझा-बुझा के बहुत पक्का कर दिया है और खुद (हाथ का इशारा करके)उस कुएँ में जा छिपा है, वह जरूर तुम पर वार करेगा। मेरे साथ चलो मैं दिखा दूं। पहले उसे दुरुस्त करो, उसके वाद जो कुछ इस लड़की से कहोगे यह झख मार के कर देगी।

दारोगा—क्या तूने खुद उस आदमी को देखा था?

औरत—हाँ-हाँ, कहती तो हूँ कि मेरे साथ उस कुएँ पर चलो, मैं उस आदमी को दिखा देती हूँ। दस-बारह कदम पर कुआँ है, कुछ दूर तो है नहीं।

दारोगा—अच्छा चलकर मुझे बताओ,(अपने दोनों आदमियों से) तुम दोनों इस लड़की के पास खड़े रहो।

वह औरत कुएँ की तरफ बढ़ी और दारोगा उसके पीछे-पीछे चला। वास्तव में वह कुआँ बहुत दूर न था। जब दारोगा को लिए हुए वह औरत कुएँ पर पहुँची तो अन्दर झांककर बोली, "देखो, वह छिपकर बैठा है!"

दारोगा ने ज्यों ही झाँककर कुएँ के अन्दर देखा उस औरत ने पीछे से धक्का दिया और वह कम्बख्त धड़ाम से कुएँ के अन्दर जा रहा। यह कैफियत उसके दोनों साथी दूर से देख रहे थे और मैं भी देख रही थी। जब दारोगा के दोनों साथियों ने देखा कि उस औरत ने जान-बूझकर हमारे मालिक को कुएँ में धकेल दिया है, तो दोनों आदमी तलवार खींचकर उस औरत की तरफ दौड़े। जब पास पहुँचे तो वह औरत जोर से हँसी और एक तरफ को भाग चली। उन दोनों ने उसका पीछा किया, मगर वह औरत दौड़ने में इतनी तेज थी कि वे दोनों उसे पा न सकते थे। उसी बगीचे के अन्दर वह औरत चक्कर देने लगी और उन दोनों के हाथ न आई। वह समय उन दोनों के लिए बड़ा ही कठिन था, वे दोनों इस बात को जरूर सोचते होंगे कि अगर अपने मालिक को बचाने की नीयत से कुएँ पर जाते हैं तो वह औरत भाग जायेगी या ताज्जुब नहीं कि उन्हें भी उसी कुएँ में ढकेल दे। आखिर जब औरत ने उन दोनों को खूब दौड़ाया तो उन दोनों ने आपस में कुछ बात तय की और एक आदमी तो उस कुएँ की तरफ चला तथा दूसरे ने उस औरत का पीछा किया। जब उस औरत ने देखा कि अब दो में से एक ही रह गया तो अब वह खड़ी हो गई और जमीन पर से ईंट का टुकड़ा उठाकर उस जादमी की तरफ जोर से फेंका। उस औरत का निशाना बहुत ही सच्चा था जिससे वह आदमी वच न सका और ईंट का टुकड़ा इस जोर से उसके सिर में लगा कि उसका सिर फट गया और वह दोनों हाथों से सिर को पकड़कर वहीं जमीन पर बैठ गया। उस औरत ने पुनः दूसरी ईंट मारी तीसरी मारी और चौथी ईंट खाकर तो वह जमीन पर लेट गया। उसी समय उसने खंजर निकाल लिया जो उसकी कमर में छिपा हुआ था और दौड़ती हुई उसके पास जाकर खंजर से उसका सिर काट डाला। मैं यह तमाशा दूर से देख रही थी।

जब वह एक आदमी को समाप्त कर चुकी तो उस दूसरे के पास आई जो कुएँ पर खड़ा अपने मालिक को निकालने की फिक्र कर रहा था। एक ईंट का टुकड़ा उसकी तरफ जोर से फेंका जो गर्दन में लगा। वह आदमी हाथ में नंगी तलवार लिये उस औरत पर झपटा मगर उसे पा न सका। उस औरत ने फिर उस आदमी को दौड़ाना शुरू किया और बीच-बीच में ईंट और पत्थरों से उसकी भी खबर लेती जाती थी। वह आदमी भी ईंट और पत्थर के टुकड़े उस औरत पर फेंकता था, मगर वह औरत इतनी तेज और फुर्तीली थी कि उसके सब वार बराबर बचाती चली गई, मगर उसका वार एक भी खाली न जाता था। आखिर उस आदमी ने भी इतनी मार खाई कि खड़ा होना मुश्किल हो गया और वह हताश होकर जमीन पर बैठ गया। बस, जमीन पर बैठने की देर थी कि उस औरत ने धड़ाधड़ पत्थर मारना शुरू किया, यहाँ तक कि वह अधमरा होकर जमीन पर लेट गया। उस औरत ने उसके पास पहुँचकर उसका सिर धड़ से अलग कर दिया, इसके बाद दौड़ती हुई मेरे पास आई और बोली, "बेटी, तूने देखा कि मैंने तेरे दुश्मनों की कैसी खबर ली? मैं तो उस कम्बख्त (दारोगा) को भी पत्थर मार-मारकर मार डालती मगर डरती हूँ कि विलम्ब हो जाने से उसके और भी संगी-साथी न आ पहुँचें, अगर ऐसा हुआ तो बड़ी मुश्किल होगी, अस्तु उसे जाने दे और मेरे साथ चल, मैं तुझे पूरी हिफाजत से तेरे घर या जहाँ कहेगी, वहाँ पहुँचा दूँगी।"

यद्यपि चाबुक की मार खाने से मेरी बुरी हालत हो गई थी, मगर अपने दुश्मनों की ऐसी दशा देख मैं खुश हो गई और उस औरत को साक्षात् माता समझकर उसके पैरों पर गिर पड़ी। उसने मुझे बड़े प्यार से उठाकर गले लगा लिया और मेरा हाथ पकड़े हुए बाग के पिछली तरफ ले चली। बाग के पीछे की तरफ बाहर निकल जाने के लिए एक खिड़की थी और उसके पास सरपत का एक साधारण जंगल था। वह औरत मुझको लिये उसी सरपत के जंगल में घुस गई। उस जंगल में उस औरत का घोड़ा बँधा हुआ था। उसने घोड़ा खोला, चारजामा ठीक करके उस पर मुझे बैठाया और पीछे आप भी सवार हो गई, घोड़ा तेजी के साथ रवाना हुआ और तब मैं समझी कि मेरी जान बच गई।

वह औरत पहर भर तक बराबर घोड़ा फेंके चली गई और जब एक घने जंगल में पहुँची तो घोड़े की चाल धीमी कर देर तक धीरे-धीरे चलकर एक कुटी के पास पहुँची जिसके दरवाजे पर दो-तीन आदमी बैठे आपस में कुछ बातें कर रहे थे। उस औरत को देखते ही वे लोग उठ खड़े हुए और अदब के साथ सलाम करके घोड़े के पास चले आए। औरत ने घोड़े के नीचे उतरकर मुझे उतार लिया। उन आदमियों में से एक ने घोड़े की लगाम थाम ली और उसे टहलाने को ले गया, दूसरे आदमी ने कुछ इशारा पाकर कुटी से एक कम्बल ला जमीन पर बिछा दिया और एक आदमी हाथ में घड़ा, लोटा और रस्सी लेकर जल भरने के लिए चला गया। औरत ने मुझे कम्बल पर बैठने का इशारा किया और आप भी कमर हलकी करने के बाद उसी कम्बल पर बैठ गई, तब उसने मुझसे कहा कि अब तू अपना सच्चा-सच्चा हाल बता कि तू कौन है और इस मुसीबत में क्योंकर फँसी तथा वह बुड्ढा शैतान कौन था, जब तक मेरा आदमी पानी लाता है और खाने-पीने का बन्दोबस्त करता है।

उस औरत ने दया करके मेरी जान बचाई थी, और जहाँ मैं चाहती थी, वहाँ पहुँचा देने के लिए तैयार थी और मेरे दिल ने भी उसे माता के समान मान लिया था, इसलिए मैंने उससे कोई बात नहीं छिपाई और अपना सच्चा-सच्चा हाल शुरू से आखिर तक कह सुनाया। उसे मेरी अवस्था पर बहुत तरस आया और वह बहुत देर तक तसल्ली और दिलासा देती रही। जब मैंने उसका नाम पूछा तो उसने अपना नाम 'चम्पा' बताया।

इतना हाल कह इन्दिरा क्षण भर के लिए रुक गई और कुँअर आनन्दसिंह ने चौंककर पूछा, "क्या नाम बताया, चम्पा !"

इन्दिरा—जी हाँ।

आनन्दसिंह—(गौर से इन्दिरा की सूरत देखकर) ओफ, अब मैंने तुझे पहचाना।

इन्दिरा—जरूर पहचाना होगा, क्योंकि एक दफे आप मुझे उस खोह में देख चुके हैं जहाँ चम्पा ने छत से लटकते हुए आदमी की देह काटी थी, आपने उसमें बाधा डाली थी और योगिनी का वेष धरे हाथ में अँगीठी लिए चपला ने आकर आपको और देवीसिंह को बेहोश कर दिया था।

इन्द्रजीतसिंह—(ताज्जुब से आनन्दसिंह की तरफ देखकर) तुमने वह हाल मुझसे कहा था, जब तुम मेरी खोज में निकले थे और मुसलमानिन औरत की कैद से तुम्हें देवीसिंह ने छुड़ाया था, उस समय का हाल है।

आनन्दसिंह—जी हाँ, यह वही लड़की है।

इन्द्रजीतसिंह—मगर मैंने तो सुना था कि उसका नाम सरला है !

इन्दिरा—जी हाँ, उस समय चम्पा ही ने मेरा नाम सरला रख दिया था।

इन्द्रजीतसिंह—वाह-वाह, वर्षों बाद इस बात का पता लगा।

गोपालसिंह—जरा उस किस्से को मैं भी सुनना चाहता हूँ।

आनन्दसिंह ने उस समय का कुल हाल राजा गोपालसिंह को कह सुनाया और इसके बाद इन्दिरा को फिर अपना हाल कहने के लिए कहा।

4

भूतनाथ और असली बलभद्रसिंह तिलिस्मी खँडहर की असली इमारत वाले नम्बर दो के कमरे में उतारे गए। इन्द्रजीतसिंह की आज्ञानुसार पन्नालाल ने उनकी बड़ी खातिर की और सब तरह के आराम का बन्दोबस्त उनकी इच्छानुसार कर दिया। पहर रात बीतने पर वे लोग हर तरह से निश्चिन्त हो गए तो इन्द्रजीतसिंह को छोड़कर बाकी सब ऐयार जो उस खँडहर में मौजूद थे भूतनाथ से गप-शप करने के लिए उसके पास आ बैठे और इधर-उधर की बातें होने लगीं। पन्नालाल ने किशोरी, कामिनी और कमला की मौत का हाल भूतताथ से बयान किया, जिसे सुनकर बलभद्रसिंह ने हद से ज्यादा अफसोस

किया और भूतनाथ भी उदासी के साथ बड़ी देर तक सोच के सागर में गोते खाता रहा। जब लगभग आधी रात के करीब जा चुकी तो सब ऐयार बिदा होकर अपने-अपने ठिकाने चले गये और भूतनाथ तथा बलभद्रसिंह अपनी-अपनी चारपाई पर जा बैठे। बलभद्रसिंह तो बहुत जल्द निद्रादेवी के अधीन हो गया, मगर भूतनाथ की आँखों में नींद का नाम-निशान न था। कमरे में एक शमादान जल रहा था और भूतनाथ अन्दर वाले कमरे की ओर निगाह किए हुए बैठा कुछ सोच रहा था।

जिस कमरे में ये दोनों आराम कर रहे थे, उसमें भीतर सहन की तरफ तीन खिड़कियाँ थीं। उन्हीं में से एक खिड़की की तरफ मुँह किए हुए भूतनाथ बैठा हुआ था। उसकी निगाह रमने में से होती हुई ठीक उस दालान में पहुँच रही थी जिसमें वह तिलिस्मी चबूतरा था जिस पर पत्थर का आदमी सोया हुआ था। उस दालान में एक कण्डील जल रही थी जिसकी रोशनी में वह चबूतरा तथा पत्थर वाला आदमी साफ दिखाई दे रहा था।

भूतनाथ को उस दालान और चबूतरे की तरफ देखते हुए घण्टे भर से ज्यादा बीत गया। यकायक उसने देखा कि उस चबूतरे का बगल वाला पत्थर जो भूतनाथ की तरफ पड़ता था, पूरा-का-पूरा किवाड़ के पल्ले की तरह खुलकर जमीन के साथ लग गया और उसके अन्दर किसी तरह की रोशनी मालूम पड़ने लगी जो धीरे-धीरे तेज होती जाती थी।

भूतनाथ को यह मालूम था कि वह चबूतरा किसी तिलिस्म से सम्बन्ध रखता है और उस तिलिस्म को राजा वीरेन्द्रसिंह के दोनों लड़के तोड़ेंगे। अस्तु, इस समय उस चबूतरे की ऐसी अवस्था देख उसको बड़ा ताज्जुब हुआ और वह आँखें मल-मलकर उस तरफ देखने लगा। थोड़ी देर बाद चबूतरे के अन्दर से एक आदमी निकलता हुआ दिखाई पड़ा, मगर निश्चय नहीं कर सका कि वह मर्द है या औरत, क्योंकि वह एक स्याह लबादा सिर से पैर तक ओढ़े हुए था और उसके बदन का कोई भी हिस्सा दिखाई नहीं देता था। उसके बाहर निकलने के साथ ही चबूतरे के अन्दर वाली रोशनी बन्द हो गई मगर वह पत्थर जो हटकर जमीन के साथ लग गया था ज्यों-का-त्यों खुला ही रहा। वह आदमी बाहर निकलकर इधर-उधर देखने लगा और थोड़ी देर तक कुछ सोचने के बाद बाहर रमने में आ गया। धीरे-धीरे चलकर उसने एक दफे चारों तरफ का चक्कर लगाया। चक्कर लगाते समय वह कई दफे भूतनाथ की निगाहों की ओट में हुआ, मगर भूतनाथ ने उठकर उसे देखने का उद्योग इसलिए नहीं किया कि कहीं उसकी निगाह मुझ पर न पड़ जाये। जिस कमरे में भूतनाथ सोया था वह एक मंजिल ऊपर था और वहाँ से रमना तथा दालान साफ-साफ दिखाई दे रहा था।

वह आदमी घूम-फिरकर पुनः उसी तिलिस्मी चबूतरे के पास जा खड़ा हुआ और कुछ दम लेकर चबूतरे के अन्दर घुस गया, मगर थोड़ी देर बाद पुनः वह चबूतरे के बाहर निकला। अबकी दफे वह अकेला न था, बल्कि उसी ढंग का लबादा ओढ़े चार आदमी और भी उसके साथ थे अर्थात् पाँच आदमी चबूतरे के बाहर निकले और पूरब वाले कोने में जाकर सीढ़ियों की राह ऊपर की मंजिल पर गये। ऊपर की मंजिल के चारों तरफ इमारत बनी हुई थी, इसलिए भूतनाथ को यह जान पड़ा कि कहीं वे लोग कोठरी-ही-

कोठरी घूमते हुए हमारे कमरे में न आ जायें, अस्तु, उसने एक महीन चादर मुँह पर ओढ़ ली और इस ढंग से लेट गया कि दरवाजा तथा तिलिस्मी चबूतरा इन दोनों की तरफ जिधर चाहे बिना सिर हिलाए देख सके। आधे घण्टे के बाद भूतनाथ के कमरे का दरवाजा खुला और उन्हीं पाँचों में से एक आदमी ने कमरे के अन्दर झाँककर देखा। जब उसे मालूम हो गया कि दोनों आदमी बेखबर सो रहे हैं, तो वह धीरे से कमरे के अन्दर चला आया और उसके बाद बाकी के चारों आदमी भी कमरे में चले आये। पाँचों आदमी (या जो हों)एक ही रंग-ढंग का लबादा या बुर्का ओढ़े हुए थे, केवल आँख की जगह जाली बनी हुई थी जिससे देखने में किसी तरह की अड़चन न पड़े। उन पाँचों ने बड़े गौर से बलभद्रसिंह की सूरत देखी और एक ने कागज का एक लिफाफा उनके सिरहाने की तरफ रख दिया, फिर भूतनाथ के पास आया और उसके सिरहाने भी एक लिफाफा रखकर अपने साथियों के पास चला गया। कई क्षण और ठहरकर ये पाँचों आदमी कमरे के बाहर निकल गये और दरवाजे को भी उसी तरह घुमा दिया जैसा पहले था। उसी समय भूतनाथ भी उन पाँचों में से किसी को पकड़ लेने की नीयत से चारपाई पर से उठ खड़ा हुआ और कमरे के बाहर निकला मगर कोई दिखाई न पड़ा। उसी जगह नीचे उतर जाने के लिए सीढ़ियाँ थीं, भूतनाथ ने समझा कि ये लोग इन्हीं सीढ़ियों की राह नीचे उतर गए होंगे, अस्तु वह भी शीघ्रता के साथ नीचे उतर गया और घूमता हुआ बीच वाले रमने में पहुँचा मगर उन पाँचों में से कोई भी दिखाई न दिया। भूतनाथ ने सोचा कि आखिर वे लोग घूम-फिरकर उसी तिलिस्मी चबूतरे के पास पहुँचेंगे, इसलिए पहले ही से वहाँ चलकर छिप रहना चाहिए। वह अपने को छिपाता हुआ उस तिलिस्मी चबूतरे के पास जा पहुँचा, और पीछे की तरफ जाकर उसकी आड़ में छिपकर बैठ गया।

भूतनाथ को आड़ में छिपकर बैठे हुए आधे घण्टे से ज्यादा बीत गया मगर किसी की सूरत दिखाई न पड़ी, तब वह उठकर उस चबूतरे के सामने की तरफ आया जिधर का मुँह खुला हुआ था। वह पत्थर का तख्ता जो हटकर जमीन के साथ लग गया था अभी तक खुला हुआ था। भूतनाथ ने उसके अन्दर की तरफ झाँककर देखा मगर अन्धकार के सबब से कुछ दिखाई न पड़ा, हाँ, उसके अन्दर से कुछ बारीक आवाज जरूर आ रही थी जिसे समझना कठिन था। भूतनाथ पीछे की तरफ हट गया और सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए। इतने ही में अन्दर की तरफ से कुछ खड़खड़ाहट की आवाज आई और वह पत्थर का तख्ता हिलने लगा जो चबूतरे के पल्ले की तरह अलग हो गया था। भूतनाथ उसके पास से हट गया और वह उसका पल्ला चबूतरे के साथ धीरे से लगकर ज्यों-का-त्यों हो गया। उस समय भूतनाथ यह कहता हुआ वहाँ से रवाना हुआ, "मालूम होता है वे लोग किसी दूसरी राह से इसके अन्दर पहुँच गये!"

भूतनाथ घूमता हुआ फिर अपने कमरे में चला आया और अपनी चारपाई पर से उस लिफाफे को उठा लिया जो उन लोगों में से एक ने उसके सिरहाने रख दिया था। शमादान के पास जाकर लिफाफा खोला और उसके अन्दर से खत निकालकर पढ़ने लगा। यह लिखा हुआ था—

"कल बारह बजे रात को इसी कमरे में मेरे आने का इन्तजार करो और जागते रहो।"

भूतनाथ ने दो-तीन दफे उस लेख को पढ़ा और फिर लिफाफे में रखकर कमर में खोंस लिया, इसके बाद बलभद्रसिंह की चारपाई के पास गया और चाहा कि उनके सिरहाने जो पत्र रखा गया है। उसे भी उठाकर पढ़े, मगर उसी समय बलभद्रसिंह की आँख खुल गई और चारपाई पर किसी को झुके हुए देख वह उठ बैठा। भूतनाथ पर निगाह पड़ने से वह ताज्जुब में आकर बोला, "क्या मामला है ?"

भूतनाथ—इस समय एक ताज्जुब की बात देखने में आई है।

बलभद्रसिंह—वह क्या ?

भूतनाथ—तुम पहले जरा सावधान हो जाओ और मुझे अपने पास बैठने दो, तो कहूँ।

बलभद्रसिंह—(भूतनाथ के लिए अपनी चारपाई पर जगह करके) आओ और कहो कि क्या मामला है ?

भूतनाथ बलभद्रसिंह की चारपाई पर बैठ गया और उसने जो कुछ देखा था पूरा-पूरा बयान किया तथा अन्त में कहा कि "पढ़ने के लिए मैं तुम्हारे सिरहाने से चिट्ठी उठाने लगा कि तुम्हारी आँख खुल गई, अब तुम खुद इस चिट्ठी को पढ़ो तो मालूम हो कि क्या लिखा है।"

बलभद्रसिंह लिफाफा उठाकर शमादान के पास चला गया और अपने हाथ से लिफाफा खोला। उसके अन्दर एक अँगूठी थी जिस पर निगाह पड़ते ही वह चिल्ला उठा और बिना कुछ कहे अपनी चारपाई पर जाकर बैठ गया।

5

कुमार की आज्ञानुसार इन्दिरा ने पुनः अपना किस्सा कहना शुरू किया।

इन्दिरा—चम्पा ने मुझे दिलासा देकर बहुत-कुछ समझाया और मेरी मदद करने का वादा किया और यह भी कहा कि "आज से तू अपना नाम बदल दे। मैं तुझे अपने घर ले चलती हूँ मगर इस बात का खूब ध्यान रखना कि यदि कोई तुझसे तेरा नाम पूछे तो 'सरला' बताना और यह सब हाल जो तूने मुझसे कहा है अब और किसी से बयान न करना।" मैंने चम्पा की बात कबूल कर ली और वह मुझे अपने साथ चुनारगढ़ ले गई। वहाँ पहुँचने पर जब मुझे चम्पा की इज्जत और मर्तबे का हाल मालूम हुआ तो मैं अपने दिल में बहुत खुश हुई और मुझे यह विश्वास हो गया कि यहाँ रहने में मुझे किसी तरह का डर नहीं है और इनकी मेहरबानी से मैं अपने दुश्मनों से बदला ले सकूंगी।

चम्पा ने मुझे हिफाजत और आराम से अपने यहाँ रखा और मेरा सच्चा हाल अपनी प्यारी सखी चपला के सिवाय और किसी से भी न कहा। निःसन्देह उसने मुझे

अपनी लड़की के समान रखा और ऐयारी की विद्या भी दिल लगाकर सिखलाने लगी, मगर अफसोस, किस्मत ने मुझे बहुत दिनों तक उसके पास रहने नहीं दिया और थोड़े ही समय के बाद (इन्द्रजीतसिंह की तरफ इशारा करके) आपको गया की रानी माधवी ने धोखा देकर गिरफ्तार कर लिया। चम्पा और चपला आपकी खोज में निकलीं, मुझे भी उनके साथ जाना पड़ा और उसी जमाने में मेरा-चम्पा का साथ छूटा।

आनन्दसिंह—तुम्हें यह कैसे मालूम हुआ कि भैया को माधवी ने गिरफ्तार कराया था ?

इन्दिरा—माधवी के दो आदमियों को चम्पा और चपला ने अपने काबू में कर लिया। पहले छिपकर उन की बातें सुनीं जिससे विश्वास हो गया कि माधवी के दोनों नौकर कुँअर साहब को गिरफ्तार करने की मुहिम में शरीक थे, मगर फिर भी यह समझ में न आया कि जिसके ये लोग नौकर हैं, वह माधवी कौन है और कुँअर साहब को ले जाकर उसने कहाँ रखा है। लाचार चम्पा ने धोखा देकर उन लोगों को अपने काबू में किया और कुँअर साहब का हाल उनसे पूछा। मैंने उन दोनों के जैसा जिद्दी आदमी कोई भी न देखा होगा। आपने स्वयं देखा था कि चम्पा ने उस खोह में उसे कितना दुःख देकर मारा मगर उस कम्बख्त ने ठीक पता नहीं दिया। उस समय वहाँ चम्पा का नौकर भी हब्शी के रूप में काम कर रहा था, आपको याद होगा।

आनन्दसिंह—वह माधवी ही का आदमी था ?

इन्दिरा—जी हाँ, और उसकी बातों का आपने दूसरा ही मतलब लगा लिया था।

आनन्दसिंह—अच्छा, ठीक है, फिर उस दूसरे आदमी की क्या दशा हुई, क्योंकि चम्पा ने तो दो आदमियों को पकड़ा था ?

इन्दिरा—वह दूसरा आदमी भी चम्पा के हाथ से उसी रोज उसके थोड़ी देर पहले मारा गया था।

आनन्दसिंह—हाँ, ठीक है, उसके थोड़ी देर पहले चम्पा ने एक और आदमी को मारा था। जरूर यह वही होगा जिसके मुँह से निकले हुए टूटे-फूटे शब्दों ने हमें धोखे में डाल दिया था। अच्छा, उसके बाद क्या हुआ ? तुम्हारा साथ उनसे कैसे छूटा ?

इन्दिरा—चम्पा और चपला जब वहाँ से जाने लगीं तो ऐयारी का बहुत-कुछ सामान और खाने-पीने की चीजें उसी खोह में रखकर मुझसे कह गईं कि जब तक हम दोनों या दोनों में से कोई एक लौटकर न आवे तब तक तू इसी जगह रहना—इत्यादि, मगर मुझे बहुत दिनों तक उन दोनों का इन्तजार करना पड़ा, यहाँ तक कि जी ऊब गया और मैं ऐयारी का कुछ सामान लेकर उस खोह से बाहर निकली क्योंकि चम्पा की बदौलत मुझे कुछ-कुछ ऐयारी भी आ गई थी। जब मैं उस पहाड़ और जंगल को पार करके मैदान में पहुँची तो सोचने लगी कि अब क्या करना चाहिए, क्योंकि बहुत-सी बँधी हुई उम्मीदों का उस समय खून हो रहा था और अपनी माँ की चिन्ता के कारण मैं बहुत ही दुखी हो रही थी। यकायक मेरी निगाह एक ऐसी चीज पर पड़ी जिसने मुझे चौंका दिया और मैं

घबराकर उस तरफ देखने लगी…

इन्दिरा और कुछ कहना ही चाहती थी कि यकायक जमीन के अन्दर से बड़े जोर-शोर के साथ घड़घड़ाहट की आवाज आने लगी जिसने सभी को चौंका दिया और इन्दिरा घबराकर राजा गोपालसिंह का मुँह देखने लगी। सवेरा हो चुका था और पूरब तरफ से उदय होने वाले सूर्य की लालिमा ने आसमान का कुछ भाग अपनी बारीक चादर के नीचे ढाँक लिया था।

गोपालसिंह—(कुमार से) अब आप दोनों भाइयों का यहाँ ठहरना उचित नहीं जान पड़ता, यह आवाज जो जमीन के नीचे से आ रही है निःसन्देह तिलिस्मी कल-पुरजों के हिलने या घूमने के सबब से है। एक तौर पर आप तिलिस्म तोड़ने में हाथ लगा चुके हैं अस्तु अब इस काम में रुकावट नहीं हो सकती। इस आवाज को सुनकर आपके दिल में भी यही खयाल पैदा हुआ होगा, अस्तु अब क्षण भर भी विलम्ब न कीजिए।

कुमार—बेशक ऐसी ही बात है। आप भी यहाँ से शीघ्र ही चले जाइये। मगर इन्दिरा का क्या होगा ?

गोपाल --इन्दिरा को इस समय मैं अपने साथ ले जाता हूँ फिर जो कुछ होगा देखा जायेगा।

कुमार—अफसोस कि इन्दिरा का कुल हाल सुन न सके। खैर, लाचारी है।

गोपालसिंह—कोई चिन्ता नहीं, आप तिलिस्म का काम तमाम करके इसकी माँ को छुड़ावें फिर सब हाल सुन लीजिएगा। हाँ, आपसे वादा किया था कि अपनी तिलिस्मी किताब आपको पढ़ने के लिए दूँगा मगर वह किताब गायब हो गई थी इसलिए दे न सका था, अब (किताब दिखाकर) इन्दिरा के साथ ही यह किताब भी मुझे मिल गई है। इसे पढ़ने के लिए मैं आपको दे सकता हूँ। यदि आप इसे अपने साथ ले जाना चाहें तो ले जायें।

इन्द्रजीतसिंह—समय की लाचारी इस समय हम लोगों को आपसे जुदा करती है, और यह भी नहीं कह सकता कि पुनः कब आपसे मुलाकात होगी और यह किताब जिसको हम लोग ले जायेंगे कब वापस करने की नौबत आयेगी। तिलिस्मी किताब जो मेरे पास है उसके पढ़ने और बाजे की आवाज के सुनने से मुझे विश्वास होता है कि आपकी किताब पढ़े बिना भी हम लोग तिलिस्म तोड़ सकेंगे। यदि मेरा यह खयाल ठीक है तो आपके पास से यह किताब ले जाकर आपका बहुत बड़ा हर्ज करना समयानुकूल न होगा।

गोपालसिंह—ठीक है, इस किताब के बिना आपका कोई खास हर्ज नहीं हो सकता और इसमें कोई शक नहीं कि इसके बिना मैं बे-हाथ-पैर का हो जाऊँगा।

इन्द्रजीतसिंह—तो इस किताब को आप अभी अपने पास ही रहने दीजिए, फिर जब मुलाकात होगी देखा जायगा, अब हम लोग बिदा होते हैं।

गोपालसिंह—खैर, जाइए, हम आप दोनों भाइयों को दयानिधि ईश्वर के सुपुर्द करते हैं।

इसके बाद राजा गोपालसिंह ने जल्दी-जल्दी कुछ बातें दोनों कुमारों को समझा कर बिदा किया और आप भी इन्दिरा को साथ ले महल की तरफ रवाना हो गए।

6

जिस राह से कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह को राजा गोपालसिंह इस बाग में लाये थे उसी राह से जाकर ये दोनों भाई उस कमरे में पहुँचे जो कि बाजे वाले कमरे में जाने के पहले पड़ता था और जिसमें महराबदार चार खम्भों के सहारे एक बनावटी आदमी फाँसी पर लटक रहा था। इस कमरे का खुलासा हाल एक दफे लिखा जा चुका है, इसलिए यहाँ पुनः लिखने की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ी। पाठकों को यह भी याद होगा कि इन्दिरा का किस्सा सुनने के पहले ही कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह उस तिलिस्मी बाजे की आवाज ताली देकर अच्छी तरह सुन-समझ चुके हैं। यदि याद न हो तो तिलिस्म सम्बन्धी पिछला किस्सा पुनः पढ़ जाना चाहिए क्योंकि अब ये दोनों भाई तिलिस्म तोड़ने में हाथ लगाते हैं।

कमरे में पहुँचने के बाद दोनों भाइयों ने देखा कि फाँसी लटकते हुए आदमी के नीचे जो मूरत (इन्दिरा के ढंग की) खड़ी थी, वह इस समय तेजी के साथ नाच रही है। कुँअर इन्द्रजीतसिंह ने तिलिस्मी खंजर का एक वार करके उस मूरत के दो टुकड़े कर दिए, अर्थात् कमर से ऊपर वाला हिस्सा काटकर गिरा दिया। उसी समय उस मूरत का नाचना बन्द हो गया और वह भयानक आवाज भी जो बड़ी देर से तमाम बाग में और इस कमरे में भी गूंज रही थी एकदम बन्द हो गई। इसके बाद दोनों भाइयों ने उस बची हुई आधी मूरत को भी जोर करके जमीन से उखाड़ डाला। उस समय मालूम हुआ कि उसके दाहिने पैर के तलवे में लोहे की एक जंजीर जड़ी है, इसके खींचने से दाहिनी तरफ वाली दीवार में एक नया दरवाजा निकल आया।

तिलिस्मी खंजर की रोशनी के सहारे दोनों भाई उस नये दरवाजे के अन्दर चले गए और थोड़ी दूर जाने के बाद और एक खुला हुआ दरवाजा लाँघकर एक छोटी-सी कोठरी में पहुँचे जिसके ऊपर चढ़ जाने के लिए दस-बारह सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। दोनों भाई सीढ़ियों पर चढ़कर ऊपर के कमरे में पहुँचे जिसकी लम्बाई पचास हाथ और चौड़ाई चालीस हाथ से कम न होगी। यह कमरा काहे को था, एक मन मोहने वाला छोटा-सा बनावटी बगीचा था। यद्यपि इसमें फूल-बूटों के जितने पेड़ लगे हुए थे सब बनावटी थे, मगर फिर भी जान पड़ता था कि फूलों की खुशबू से वह कमरा अच्छी तरह बसा हुआ है। इस कमरे की छत में बहुत मोटे-मोटे शीशे लगे हुए थे जिसमें से बे-रोक-टोक पहुँचने वाली रोशनी के कारण कमरे भर में उजाला हो रहा था। वे शीशे चौड़े या चपटे न थे; बल्कि गोल गुम्बज की तरह बने हुए थे।

इस छोटे बनावटी बगीचे में छोटी-छोटी मगर बहुत खूबसूरत क्यारियाँ बनी हुई थीं और उन क्यारियों के चारों तरफ की जमीन पत्थर के छोटे-छोटे रंग-बिरंगे टुकड़ों से बनी हुई थी। बीच में एक गोलाम्बर(चबूतरा)बना हुआ था और उसके ऊपर एक औरत खड़ी हुई मालूम पड़ती थी, जिसके बाएँ हाथ में एक तलवार और दाहिने में हाथ भर लम्बी एक ताली थी।

कुँअर इन्द्रजीतसिंह ने तिलिस्मी खंजर की रोशनी बन्द करके आनन्दसिंह की तरफ देखा और कहा, "यह औरत निःसन्देह लोहे या पीतल की बनी हुई होगी और यह ताली भी वही होगी जिसकी हम लोगों को जरूरत है, मगर तिलिस्मी बाजे ने तो यह कहा था कि 'ताली किसी चलती-फिरती से प्राप्त करोगे', यह औरत तो चलती-फिरती नहीं है, खड़ी है !"

आनन्दसिंह—उसके पास तो चलिए, देखें, वह ताली कैसी है।

इन्द्रजीतसिंह—चलो।

दोनों भाई उस गोलाम्बर की तरफ बढ़े मगर उसके पास न जा सके। तीन-चार हाथ इधर ही थे कि एक प्रकार की आवाज के साथ वहाँ की जमीन हिली और गोलाम्बर (जिस पर पुतली थी) तेजी से चक्कर खाने लगा और उसी के साथ वह नकली औरत (पुतली) भी घूमने लगी जिसके हाथ में तलवार और ताली थी। घूमने के समय उसका ताली वाला हाथ ऊँचा हो गया और तलवार वाला हाथ आगे की तरफ बढ़ गया जो उसके चक्कर की तेजी में चक्र का काम कर रहा था।

आनन्दसिंह—कहिए, भाई जी, अब यह औरत या पुतली चलती-फिरती हो गई या नहीं ?

इन्द्रजीतसिंह—हाँ, हो तो गई।

आनन्दसिंह—अब जिस तरह हो सके; हमें इसके हाथ से ताली ले लेनी चाहिए, गोलाम्बर पर जाने वाला तो तुरन्त दो टुकड़े हो जायेगा।

इन्द्रजीतसिंह—(पीछे हटते हुए) देखें, हट जाने पर इसका घूमना बन्द होता है या नहीं।

आनन्दसिंह—(पीछे हटकर) देखिये, गोलाम्बर का घूमना बन्द हो गया ! बस, यही चार हाथ के लगभग चौड़ा काला पत्थर जो इस गोलाम्बर के चारों तरफ लगा है, असल करामात है। इस पर पैर रखने ही से गोलाम्बर घूमने लगता है। (काले पत्थर के ऊपर जाकर) देखिये घूमने लग गया, (हटकर) अब बन्द हो गया। अब समझ गया, इस पुतली के हाथ से ताली और तलवार ले लेना कोई बड़ी बात नहीं।

इतना कहकर आनन्दसिंह ने एक छलाँग मारी और काले पत्थर पर पैर रखे बिना ही कूदकर गोलाम्बर के ऊपर चले गये। गोलाम्बर ज्यों-का-त्यों अपने ठिकाने जमा रहा और आनन्दसिंह पुतली के हाथ से ताली तथा तलवार लेकर जिस तरह वहाँ गए थे उसी तरह कूदकर अपने भाई के पास चले आये और बोले—"कहिये, क्या मजे में ताली ले आए !"

इन्द्रजीतसिंह—बेशक ! (ताली हाथ में लेकर) यह अजब ढंग की बनी हुई है। (गौर से देखकर)इस पर कुछ अक्षर भी खुदे हुए मालूम पड़ते हैं, मगर बिना तेज रोशनी के इनका पढ़ा जाना मुश्किल है !

आनन्दसिंह—मैं तिलिस्मी खंजर की रोशनी करता हूँ, आप पढ़िये।

इन्द्रजीतसिंह ने तिलिस्मी खंजर की रोशनी में उसे पढ़ा और आनन्दसिंह को समझाया, इसके बाद दोनों भाई कूद कर उस गोलाम्बर पर चले गये जिस पर हाथ में

ताली लिए हुए वह पुतली खड़ी थी। ढूँढ़ने और गौर से देखने पर दोनों भाइयों को मालूम हुआ कि उसी पुतली के दाहिने पैर में एक छेद ऐसा है, जिसमें वह तलवार जो पुतली के हाथ से ली गई थी बखूबी घुस जाय। भाई की आज्ञानुसार आनन्दसिंह ने वही पुतली वाली तलवार उस छेद में डाल दी, यहाँ तक कि पूरी तलवार छेद के अन्दर चली गई और केवल उसका कब्जा बाहर रह गया। उस समय दोनों भाइयों ने मजबूती के साथ उस पुतली को पकड़ लिया। थोड़ी देर बाद गोलाम्बर के नीचे से आवाज आई और पहले की तरह पुनः वह गोलाम्बर पुतली सहित घूमने लगा। पहले धीरे-धीरे, मगर फिर क्रमशः तेजी के साथ वह गोलाम्बर घूमने लगा। उस समय दोनों भाइयों के हाथ उस पुतली के साथ ऐसे चिपक गये कि मालूम होता था छुड़ाने से भी नहीं छूटेंगे। वह गोलाम्बर घूमता हुआ जमीन के अन्दर धँसने लगा और सिर में चक्कर आने के कारण दोनों भाई बेहोश हो गए।

जब वे होश में आये तो आँखें खोलकर चारों तरफ देखने लगे, मगर अंधकार के सिवाय और कुछ भी दिखाई न दिया, उस समय इन्द्रजीतसिंह ने अपने तिलिस्मी खंजर के जरिये से रोशनी की और इधर-उधर देखने लगे। अपने छोटे भाई को पास ही में बैठे पाया और उस पुतली को भी टुकड़े-टुकड़े हुई उसी जगह देखा, जिसके टुकड़े कुछ गोलाम्बर के ऊपर और कुछ जमीन पर छितराये हुए थे।

इस समय भी दोनों भाइयों ने अपने को उसी गोलाम्बर पर पाया और इससे वे समझे कि यह गोलाम्बर ही धँसता हुआ इस नीचे वाली जमीन के साथ आ लगा है, मगर जब छत की तरफ निगाह की तो किसी तरह का निशान या छेद न देखकर छत को बराबर और बिल्कुल साफ पाया। अब जहाँ पर दोनों भाई बैठे थे, वह कोठरी बनिस्बत ऊपर वाले (या पहले) कमरे के बहुत छोटी थी। चारों तरफ तरह-तरह के कल-पुर्जे दिखाई दे रहे थे। जिनमें से निकलकर फैले हुए लोहे के तार और लोहे की जंजीरें जाल की तरह बिल्कुल कोठरी को घेरे हुए थीं। बहुत-सी जंजीरें ऐसीं थीं, जो छत में, बहुत-सी दीवार में, और बहुत-सी जमीन के अन्दर घुसी हुई थीं। इन्द्रजीतसिंह के सामने की तरफ एक छोटा-सा दरवाजा था। जिसके अन्दर दोनों कुमारों को जाना पड़ता। अस्तु दोनों कुमार गोलांबर के नीचे उतरे और तारों तथा जंजीरों से बचते हुए उस दरवाजे के अन्दर गए। वह रास्ता एक सुरंग की तरह था जिसकी छत, जमीन और दोनों तरफ की दीवारें मजबूत पत्थर की बनी हुई थीं। दोनों कुमार थोड़ी दूर तक उसमें बराबर चलते गये और इसके बाद एक ऐसी जगह पहुँचे, जहाँ ऊपर की तरफ निगाह करने से आसमान दिखाई देता था। गौर करने से दोनों कुमारों को मालूम हुआ कि यह स्थान वास्तव में कुएँ की तरह है। इसकी जमीन (किसी कारण से) बहुत ही नरम और गुदगुदी थी। बीच में एक पतला लोहे का खंभा था और खंभे के नीचे जंजीर के सहारे एक खटोली बँधी हुई थी जिस पर दो-तीन आदमी मजे में बैठ सकते थे। खटोली से ढाई-तीन हाथ ऊंचे (खंभे में) एक चर्खी लगी हुई थी और चर्खी के साथ एक ताम्रपत्र बँधा हुआ था। इन्द्रजीतसिंह ने ताम्रपत्र को पढ़ा, बारीक-बारीक हरफों में यह लिखा था—

"यहाँ से बाहर निकल जाने वाले को खटोली के ऊपर बैठ कर यह चर्खी सीधी घुमानी चाहिए। चर्खी सीधी तरफ घुमाने से यह खंभा खटोली को लिए हुए ऊपर जायगा और उल्टी तरफ घुमाने से यह नीचे की तरफ उतरेगा। पीछे हटने वाले को अब वह रास्ता खुला नहीं मिलेगा जिधर से वह आया होगा।"

पत्र पढ़कर इन्द्रजीतसिंह ने आनन्दसिंह से कहा, "यहाँ से बाहर निकल चलने के लिए यह बहुत अच्छी तरकीब है, अब हम दोनों को भी इसी तरह बाहर हो जाना चाहिए। लो, तुम भी इसे पढ़ लो।

आनन्दसिंह—(पत्र पढ़कर) आइये, इस खटोली में बैठ जाइये!

दोनों कुमार उस खटोली में बैठ गये और इन्द्रजीतसिंह चर्खी घुमाने लगे। जैसे-जैसे चर्खी घुमाते थे, वैसे-वैसे वह खंभा खटोली को लिए हुए ऊपर की तरफ उठता जाता था। जब खंभा कुएँ के बाहर निकल आया, तब अपने चारों तरफ की जमीन और इमारतों को देखकर दोनों कुमार चौंके और इन्द्रजीतसिंह की तरफ देख कर आनन्दसिंह ने कहा—

आनन्दसिंह—यह तो तिलिस्मी बाग का वही चौथा दर्जा है, जिसमें हम लोग कई दिन तक रह चुके हैं!

इन्द्रजीतसिंह—बेशक वही है, मगर यह खंभा हम लोगों को (हाथ का इशारा करके) उस तिलिस्मी इमारत तक पहुँचावेगा।

पाठक, हम सन्तति के नौवें भाग के पहले बयान में इस बाग के चौथे भाग का हाल जो कुछ लिख चुके हैं, शायद आपको याद होगा। यदि भूल गये हों तो उसे पुनः पढ़ जाइए। उस बयान में यह भी लिखा जा चुका है कि इस बाग के पूरब तरफ वाले मकान के चारों तरफ पीतल की दीवार थी। इसलिए उस मकान का केवल ऊपर वाला हिस्सा दिखाई देता था और कुछ मालूम नहीं होता था कि उसके अन्दर क्या है। हाँ, छत के ऊपर लोहे का एक पतला महराबदार खंभा था, जिसका दूसरा सिरा उसके पास वाले कुएँ के अन्दर गया था। उस मकान के चारों तरफ पीतल की जो दीवार थी उसमें एक बन्द दरवाजा भी दिखाई देता था और उसके दोनों तरफ पीतल के दो आदमी हाथ में नंगी तलवारें लिए खड़े थे, इत्यादि।

यह उसी मकान के साथ वाला कुआँ था, जिसमें से इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह निकले थे। धीरे-धीरे ऊँचे होकर दोनों भाई उस मकान की छत पर जा पहुँचे जिसके चारों तरफ पीतल की दीवार थी। खटोली को मकान की छत पर पहुँचा कर वह खंभा अड़ गया और दोनों कुमारों को उस पर से उतर जाना पड़ा। पहले जब दोनों कुमार इस बाग के (चौथे दरजे के) अन्दर आये थे, तब इस मकान के अन्दर का हाल कुछ जान नहीं सके थे। मगर अब तो इत्तिफाक ने खुद ही इन दोनों को उस मकान में पहुँचा दिया। इसलिए बड़े उत्साह से दोनों भाई इस जगह का तमाशा देखने के लिए तैयार हो गए।

इस मकान की छत पर एक रास्ता नीचे उतर जाने के लिए था। उसी राह से दोनों भाई नीचे वाली मंजिल में उतर कर एक छोटे-से कमरे में पहुँचे। जहाँ की

छत, जमीन और चारों तरफ की दीवारों में कलई किये हुए दलदार शीशे बड़ी कारीगरी से जड़े हुए थे। अगर एक आदमी भी उस कमरे में जाकर खड़ा हो तो अपनी हजारों सूरतें[1] देख कर घवरा जाय। सिवाय इस बात के उस कमरे में और कुछ भी न था, और न यही मालूम होता था कि यहाँ से किसी और जगह जाने के लिए कोई रास्ता है। उस कमरे की अवस्था देखकर इन्द्रजीतसिंह हँसे और आनन्दसिंह की तरफ देख कर बोले—

इन्द्रजीतसिंह—इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस कमरे में इन शीशों की बदौलत एक प्रकार की दिल्लगी है, मगर आश्चर्य इस बात का होता है कि तिलिस्म बनाने वालों ने यह फजूल कार्रवाई क्यों की है ! इन शीशों के लगाने से कोई फायदा या नतीजा तो मालूम नहीं होता !

आनन्दसिंह—मैं भी यही सोच रहा हूँ। मगर विश्वास नहीं होता कि तिलिस्म बनाने वालों ने इसे व्यर्थ ही बनाया होगा, कोई-न-कोई बात इसमें जरूर होगी। इस मकान में इसके सिवाय अभी तक कोई दूसरी अनूठी बात दिखाई नहीं दी, अगर यहाँ कुछ है तो केवल यही एक कमरा है। अस्तु इस कमरे को फजूल समझना इस इमारत भर को फजूल समझना होगा, मगर ऐसा हो नहीं सकता। देखिये, इसी मकान से उस लोहे वाले खंभे का संबंध है, जिसकी बदौलत हम···(रुक कर) सुनिए-सुनिए, यह आवाज कैसी और कहाँ से आ रही है ?

बात करते-करते आनन्दसिंह रुक गये और ताज्जुब-भरी निगाहों से अपने भाई की तरफ देखने लगे, क्योंकि उन्हें दो आदमियों के जोर-जोर से बातचीत की आवाज सुनाई देने लगी। वह आवाज यह थी—

एक—तो क्या दोनों कुमार उस कुएँ से निकल यहाँ आ जाएँगे ?

दूसरा—हाँ, जरूर आ जाएँगे। उस कुएँ में जो लोहे का खंभा गया हुआ है उसमें एक खटोली बँधी है। उस खटोली पर बैठकर एक कल घुमाते हुए दोनों आदमी यहाँ आ जाएँगे।

पहला—तब तो बड़ी मुश्किल होगी, हम लोगों को यह जगह छोड़ देनी पड़ेगी।

दूसरा—हम लोग इस जगह को क्यों छोड़ने लगे ? जिसके भरोसे पर हम लोग यहाँ बैठे हैं, क्या वह दोनों राजकुमारों से कमजोर है ? खैर उसे जाने दो, पहले तो हमीं लोग उन्हें तंग करने के लिए बहुत हैं।

पहला—इसमें तो कोई शक नहीं कि हम लोग उनकी ताकत और जवाँमर्दी को हवा खिला सकते हैं, मगर एक काम जरूर करना चाहिए।

दूसरा—वह क्या ?

पहला—इस कमरे का वह दरवाजा खोल देना चाहिए, जिसमें भयानक अजगर रहता है। जब दोनों उसे खुला देख उसके अन्दर जाएँगे तो निःसंदेह वह अजगर

---

1. यदि दो बड़े शीशे आमने-सामने रखकर देखिए तो शीशों में दो-चार ही नहीं बल्कि हजारों शीशे एक-दूसरे के अन्दर दिखाई देंगे।

उन दोनों को निगल जायगा ।

दूसरा—और बाकी के दरवाजे मजबूती के साथ बन्द कर देने चाहिए जिसमें वे और किसी तरफ जा न सकें ।

पहला—बेशक, इसके अतिरिक्त एक काम और भी करना चाहिए, जिसमें वे दोनों उस दरवाजे के अन्दर जरूर जाएँ—अर्थात् उन दोनों लड़कियों को भी उस अजगर वाली कोठरी में हाथ-पैर बाँधकर पहुँचा देना चाहिए, जिन पर दोनों कुमार आशिक हैं।

दूसरा—यह तुमने बहुत अच्छी बात कही । जब वह अजगर उन लड़कियों को निगलना चाहेगा तो वे जरूर चिल्लायेंगी, उस समय आवाज पहचानने पर वे दोनों अपने को किसी तरह रोक न सकेंगे और उस दरवाजे के अन्दर जाकर अजगर की खुराक बनेंगे।

पहला—यह भी अच्छी बात कही । अच्छा उन उन दोनों को पकड़ लाओ और हाथ-पैर बाँध कर उस कोठरी में डाल दो । अगर इस कार्रवाई से काम न चलेगा, तो दूसरी कार्रवाई की जायगी, मगर उन्हें इस मकान के बाहर न जाने देंगे ।

इसके बाद वह बातचीत की आवाज बन्द हो गई और यकायक सामने आईने में कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह ने अपने प्यारे ऐयार भैरोंसिंह और तारासिंह की सूरत देखी, सो भी इस ढंग से कि दोनों ऐयार अकड़ते हुए एक तरफ से आए और दूसरी तरफ को चले गये । इसके बाद दो औरतों की सूरत नजर आई । पहले तो पहचानने में कुछ शक हुआ, मगर तुरन्त ही मालूम हो गया कि वे दोनों कमलिनी और लाड़िली हैं। उन दोनों की कमर में लोहे की जंजीरें बँधी हुई थीं और एक मजबूत आदमी उन्हें अपने हाथ में लिए उन दोनों के पीछे-पीछे जा रहा था। यह भी देखा कि कमलिनी और लाड़िली चलते-चलते रुकीं और उसी समय पिछले आदमी ने उन दोनों को धक्का दिया जिससे वे झुक गईं और सिर हिला कर आगे बढ़ती हुई नजरों की ओट हो गईं ।

भैरोंसिंह और तारासिंह यहाँ कैसे आ पहुँचे ? और कमलिनी तथा लाड़िली को कैदियों की तरह ले जाने वाला वह कौन था ? इस शीशे के अन्दर उन सभी की सूरत कैसे दिखाई पड़ी ? चारों तरफ से बन्द रहने पर भी यहाँ आवाज कैसे आई ? इन बातों को सोचते हुए दोनों कुमार बहुत दुःखी हुए ।

आनन्दसिंह—भैया, यह तो बड़े आश्चर्य की बात मालूम पड़ती है। यह लोग (अगर वास्तव में कोई हों तो) कहते हैं कि अजगर कुमारों को निगल जायगा। मगर हम लोग तो खुद ही अजगर के मुँह में जाने के लिए तैयार हैं क्योंकि तिलिस्मी बाजे की यही आज्ञा है। अब कहिए तिलिस्मी बाजे की बात झूठी है या ये लोग कोई धोखा देना चाहते हैं ?

इन्द्रजीतसिंह—मैं भी इन्हीं बातों को सोच रहा हूँ। तिलिस्मी बाजे की आवाज को झूठा समझना तो बुद्धिमानी की बात नहीं होगी क्योंकि उसी आवाज के भरोसे पर हम लोग तिलिस्म तोड़ने के लिए तैयार हुए हैं। मगर हाँ, इस बात का पता लगाये बिना अजदहे के मुँह में जाने की इच्छा नहीं होती कि यह आवाज आखिर थी कैसी, और इस आईने में जिन लोगों के बातचीत की आवाज सुनाई दी है, वे वास्तव में कोई हैं भी या सब बिल्कुल तिलिस्मी खेल ही है ? कलई किए हुए आईने में किसी ऐसे आदमी

की सूरत भला क्योंकर दिखाई दे सकती है, जो उसके सामने हो ?

आनन्दसिंह—बेशक यह एक नई बात है। अगर किसी के सामने हम यह किस्सा बयान करें, तो वह यही कहेगा कि तुमको धोखा हुआ। जिन लोगों को तुमने आईने में देखा था वे तुम्हारे पीछे की तरफ से निकल गये होंगे और तुमने उस बात का खयाल न किया होगा। मगर नहीं, अगर वास्तव में ऐसा होता तो आईने में भी हम उन्हें अपने पीछे की तरफ से जाते हुए देखते। जरूर इसका सबब कोई दूसरा ही है, जो हम लोगों की समझ में नहीं आ रहा है।

इन्द्रजीतसिंह—खैर, फिर अब किया क्या जाए ? इस मंजिल से नीचे उतर जाने या किसी और तरफ जाने के लिए रास्ता भी तो दिखाई नहीं देता। (उँगली का इशारा करके) सिर्फ वह एक निशान है, जहाँ से अपने-आप एक दरवाजा पैदा होगा या हम लोग दरवाजा पैदा कर सकते हैं। मगर वह दरवाजा उसी अजदहे वाली कोठरी का है, जिसमें जाने के लिए हम लोग यहाँ आए हैं।

आनन्दसिंह—ठीक है, मगर क्या हम लोग तिलिस्मी खंजर से इस शीशे को तोड़ या काट नहीं सकते ?

इन्द्रजीतसिंह—जरूर काट सकते हैं। मगर यह कार्रवाई अपने मन की होगी।

आनन्दसिंह—तो क्या हर्ज है, आज्ञा दीजिए तो मैं एक हाथ शीशे पर लगाऊँ !

इन्द्रजीतसिंह—सो ही कर देखो। मगर कहीं कोई बखेड़ा न पैदा हो !

'अब जो होना हो सो हो !" इतना कहकर आनन्दसिंह तिलिस्मी खंजर लिए हुए आईने की तरफ बढ़े। उसी वक्त एक आवाज हुई और बाएँ तरफ की शीशे वाली दीवार में ठीक उसी जगह एक छोटा-सा दरवाजा निकल आया जहाँ कुमार ने हाथ का इशारा करके आनन्दसिंह को बताया था; मगर दोनों कुमारों ने उसके अन्दर जाने का खयाल भी न किया और आनन्दसिंह ने तिलिस्मी खंजर का एक भरपूर हाथ अपने सामने वाले शीशे पर लगाया। जिसका नतीजा यह हुआ कि शीशे का एक बहुत बड़ा टुकड़ा भारी आवाज देकर पीछे की तरफ हट गया और आनन्दसिंह इस तरह उसके अन्दर घुस गए जैसे हवा के किसी खिंचाव या बवन्डर ने उन्हें अपनी तरफ खींच लिया हो। इसके बाद वह शीशे का टुकड़ा फिर ज्यों-का-त्यों बराबर मालूम होने लगा।

हवा के खिंचाव का असर कुछ-कुछ इन्द्रजीतसिंह पर भी पड़ा। मगर वे दूर खड़े थे, इसलिए खिंच कर वहाँ तक न जा सके, पर आनन्दसिंह उसके पास होने के कारण खिंच कर अन्दर चले गये।

आनन्दसिंह का यकायक इस तरह आफत में फँस जाना बहुत ही बुरा हुआ, इस बात का जितना रंज इन्द्रजीतसिंह को हुआ सो वे ही जान सकते हैं। उनकी आँखों में आँसू भर आये और वे बेचैन होकर धीरे से बोले—"अब जब तक कि मैं इस शीशे के अन्दर न चला जाऊँगा अपने भाई को छुड़ा न सकूँगा और न इस बात का ही पता लगा सकूँगा कि उस पर क्या मुसीबत आई।" इतना कह वे तिलिस्मी खंजर लिए हुए शीशे की तरफ बढ़े मगर दो ही कदम जाकर रुक गये और सोचने लगे, "कहीं ऐसा न हो कि जिस मुसीबत में आनन्द पड़ गया है, उसी मुसीबत में मैं भी फंस जाऊँ ! यदि

ऐसा हुआ तो हम दोनों इसी तिलिस्म में मर कर रह जायेंगे ! यहाँ कोई ऐसा भी नहीं जो हम लोगों की सहायता करेगा, लेकिन अगर ईश्वर की कृपा से तिलिस्म के इस दर्जे को मैं अकेला तोड़ सकूँ तो निःसन्देह आनन्द को छुड़ा लूंगा। मगर कहीं ऐसा न हो कि जब तक हम तिलिस्म तोड़ें तब तक आनन्द की जान पर आ बने ? बेशक इस आवाज ने हम लोगों को धोखे में डाल दिया, हमें तिलिस्मी बाजे पर पूरा भरोसा करके बेखौफ अजदहे के मुँह में चले जाना चाहिए था।" इत्यादि तरह-तरह की बातें सोचकर इन्द्रजीतसिंह रुक गये और आनन्दसिंह की जुदाई में आँसू गिराते हुए उसी अजदहे वाली कोठरी में चले गये जिसका दरवाजा पहले ही खुल चुका था।

उस कोठरी में सिवाय उस एक अजदहे के और कुछ भी न था। इस अजदहे की मोटाई दो गज घेरे से कम न होगी। उसका खुला मुँह इस योग्य था कि उद्योग करने से आदमी उसके पेट में बखूबी घुस जाय। वह एक सोने के चबूतरे के ऊपर कुण्डली मारे बैठा था और अपने डील-डौल और खुले हुए भयानक मुँह के कारण बहुत ही डरावना मालूम पड़ता था। झूठा और बनावटी मालूम हो जाने पर भी उसके पास जाना या खड़ा होना बड़े जीवट का काम था।

इन्द्रजीतसिंह बेखौफ उस अजदहे के मुँह में घुस गए और कोशिश करके आठ या नौ हाथ के लगभग नीचे उतर गए। इस बीच में उन्हें गर्मी तथा साँस लेने की तंगी से बहुत तकलीफ हुई और उसके बाद उन्हें नीचे उतरने के लिए दस-बारह सीढ़ियाँ मिलीं। नीचे उतरने पर कई कदम एक सुरंग में चलना पड़ा और इसके बाद वे उजाले में पहुँचे।

अब जिस जगह इन्द्रजीतसिंह पहुँचे वह एक छोटा-सा तिमंजिला मकान संगमर्मर के पत्थरों से बना हुआ था, जिसका ऊपरी हिस्सा बिल्कुल खुला हुआ था, अर्थात् चौक में खड़े होने से आसमान दिखाई देता था। नीचे वाले खंड में जहाँ इन्द्रजीतसिंह खड़े थे चारों तरफ चार दालान थे और चारों दालान अच्छे बेशकीमत सोने के जड़ाऊ सिंहासनों, नुमाइशी बर्त्तनों तथा हर्बों से भरे थे। कुमार उस बेहिसाब दौलत तथा अनमोल चीजों को देखते हुए जब बाईं तरफ वाले दालान में पहुँचे तो यहाँ की दीवार में भी उन्होंने एक छोटा-सा दरवाजा देखा। झाँकने से मालूम हुआ कि ऊपर के खण्ड में जाने के लिए सीढ़ियाँ हैं। कुँअर इन्द्रजीतसिंह सीढ़ियों की राह ऊपर चढ़ गये। उस खण्ड में भी चारों तरफ दालान थे। पूरब तरफ वाले दालान में कल-पुरजे लगे हुए थे, उत्तर तरफ वाले दालान में एक चबूतरे के ऊपर लोहे का एक सन्दूक ठीक उसी ढंग का था जैसा कि तिलिस्मी बाजा कुमार देख चुके थे। दक्खिन तरफ वाले दालान में कई पुतलियाँ खड़ी थीं जिनके पैरों में गड़ारीदार पहिये की तरह बना हुआ था, जमीन में लोहे की नालियाँ जड़ी हुई थीं और नालियों में पहिया चढ़ा हुआ था अर्थात् वे पुतलियाँ इस लायक थीं कि पहियों पर नालियों की बरकत से बँधे हुए (महदूद) स्थान तक चल-फिर सकती थीं, और पश्चिम की तरफ वाले दालान में सिवाय एक शीशे की दीवार के और कुछ भी दिखाई नहीं देता था।

उन पुतलियों में कुमार ने कई अपने जान-पहचान वाले और संगी-साथियों की की मूरतें भी देखी। उन्हीं में भैरोंसिह, तारासिंह, कमलिनी, लाड़िली, राजा गोपाल-

सिंह और अपनी तथा अपने छोटे भाई की भी मूरतें देखीं जो डील-डौल और नक्शे में बहुत साफ बनी हुई थीं। कमलिनी और लाड़िली की मूरतों की कमर में लोहे की जंजीर बँधी हुई थी और एक मजबूत आदमी उसे थामे हुए था। कुमार ने मूरतों को हाथ का धक्का देकर चलाना चाहा, मगर वे अपनी जगह से एक अंगुल भी न हिलीं। कुमार ताज्जुब से उनकी तरफ देखने लगे।

इन सब चीजों को गौर और ताज्जुब की निगाह से कुमार देख ही रहे थे कि यकायक दो आदमियों की बातचीत की आवाज उनके कान में पड़ी। वे चौंककर चारों तरफ देखने लगे मगर किसी आदमी की सूरत न दिखाई पड़ी, थोड़ी ही देर में इतना जरूर मालूम हो गया कि उत्तर की तरफ वाले दालान में चबूतरे के ऊपर जो लोहे वाला सन्दूक है उसी में से यह आवाज निकल रही है। कुमार समझ गये कि वह सन्दूक उसी तरह का कोई तिलिस्मी बाजा है जैसाकि पहले देख चुके हैं अस्तु वे तुरत उस बाजे के पास चले आये और आवाज सुनने लगे। यह बातचीत या आवाज ठीक वही थी जो कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह शीशे वाले कमरे में सुन चुके थे अर्थात् एक ने कहा, "तो क्या दोनों कुमार कुएँ में से निकलकर यहाँ आ जायेंगे!" उसी के बाद दूसरे आदमी के बोलने की आवाज आई मानो दूसरे ने जवाब दिया, "हाँ जरूर आ जायँगे, उस कुएँ में लोहे का खम्भा गया हुआ है उसमें एक खटोली बँधी हुई है, उस खटोली पर बैठकर कल घुमाते हुए दोनों आदमी यहाँ आ जायँगे—" इत्यादि जो-जो बातें दोनों कुमारों ने उस शीशे वाले कमरे में सुनी थीं ठीक वे ही बातें उसी ढंग की आवाज में कुमार ने इस बाजे में भी सुनीं। उन्हें बड़ा ताज्जुब हुआ और उन्होंने इस बात का निश्चय कर लिया कि अगर वह शीशे वाला कमरा इस दीवार के बगल में है तो निःसन्देह यही आवाज हम दोनों भाइयों ने सुनी थी। इसके साथ ही कुमार की निगाह पश्चिम तरफ वाले दालान में शीशे की दीवार के ऊपर पड़ी और वे धीरे से बोल उठे, "बेशक इसी दीवार के उस तरफ वह कमरा है और ताज्जुब नहीं कि उस कमरे में इस तरफ यही शीशे की दीवार हम लोगों ने देखी भी हो।"

इतने ही में दक्खिन तरफ वाले दालान में से धीरे-धीरे कुछ कल-पुर्जों के घूमने की आवाज आने लगी। कुमार ने जब उस तरफ को देखा तो भैरोंसिंह और तारासिंह की मूरतों को अपने ठिकाने से चलते हुए पाया। उन दोनों मूरतों की अकड़कर चलने वाली चाल भी ठीक वैसी ही थी जैसी कुमार उस शीशे के अन्दर देख चुके थे। जिस समय वे दोनों मूरतें चलती हुई उस शीशे वाली दीवार के पास पहुँचीं, उसी समय दीवार में एक दरवाजा निकल आया और दोनों मूरतें उसके अन्दर घुस गईं। इसके बाद कमलिनी और लाड़िली की मूरतें चलीं और उनके पीछे वाला आदमी जो जंजीर थामे हुए था पीछे-पीछे चला, ये सब उसी तरह शीशे वाली दीवार के अन्दर जाकर थोड़ी देर के बाद फिर अपने ठिकाने लौट आये और वह दरवाजा ज्यों का त्यों बन्द हो गया। अब कुँअर इन्द्रजीतसिंह के दिल में किसी तरह का शक नहीं रहा, उन्हें निश्चय हो गया कि उस शीशे वाले कमरे में जो कुछ हम दोनों ने सुना और देखा, वह वास्तव में कुछ भी न था, या अगर कुछ था तो वही जो कि यहाँ आने से मालूम हुआ है, साथ ही इसके कुमार

यह भी सोचने लगे कि 'ये हमारे संगी-साथियों और मुलाकातियों की मूरतें पुरानी बनी हुई हैं या उन तस्वीरों की तरह इन्हें भी राजा गोपालसिंह ने स्थापित किया है, और इन मूरतों का चलना-फिरना तथा इस बाजे का बोलना किसी खास वक्त पर मुकर्रर है या घण्टे-घण्टे दो-दो घण्टे पर ऐसा ही हुआ करता है? मगर नहीं, घड़ी-घड़ी व्यर्थ ऐसा होना अनुचित है। तो क्या जब शीशे वाले कमरे में कोई जाता है तभी ऐसी बातें होती हैं! क्योंकि हम लोगों के वहाँ पहुँचने पर यही दृश्य देखने में आया था। अगर मेरा यह खयाल ठीक है तो अब भी उस शीशे वाले कमरे में कोई पहुँचा होगा। किसी गैर आदमी का वहाँ पहुँचना तो असम्भव है। अगर कोई वहाँ पहुँचता है तो चाहे वह आनन्दसिंह हों या राजा गोपालसिंह हों। कौन ठिकाना, फिर किसी कारण से आनन्दसिंह वहाँ जा पहुँचा हो। जिस तरह इस बाजे की आवाज उस कमरे में पहुँचती है उसी तरह मेरी आवाज भी वहाँ वाला सुन सकता है।' इत्यादि बातें कुमार ने जल्दी-जल्दी सोचीं और इसके बाद ऊँचे स्वर में बोले, "शीशे वाले कमरे में कौन है?"

जवाब—मैं हूँ आनन्दसिंह, क्या मैं भाई साहब की आवाज सुन रहा हूँ?

इन्द्रजीतसिंह—हाँ, मैं यहाँ आ पहुँचा हूँ, तुम भी जहाँ तक जल्दी हो सके उस अजदहे के मुँह में चले जाओ और हमारे पास पहुँचो।

जवाब—बहुत अच्छा।

7

किस्मत जब चक्कर खिलाने लगती है तो दम भर भी सुख की नींद सोने नहीं देती। इसकी बुरी निगाह के नीचे पड़े हुए आदमी को तभी कुछ निश्चिन्ती होती है जब इसका पूरा दौर (जो कुछ करना हो करके) बीत जाता है। इस किस्से को पढ़कर पाठक इतना तो जान ही गए होंगे कि इन्द्रदेव भी सुखियों की पंक्ति में गिने जाने लायक नहीं है। वह भी जमाने के हाथों से अच्छी तरह सताया जा चुका है परन्तु उस जवाँमर्द की आँखों में बहुत-सी रातें उन दिनों की भी बीत चुकी हैं जबकि उसका मजबूत दिल कई तरह की खुशियों से नाउम्मीद होकर 'हरि इच्छा' का मन्त्र जपता हुआ एक तरह से बेफिक्र हो बैठा था, मगर आज उसके आगे फिर बड़ी दुःखदायी घड़ी पहले से दूना विकराल रूप धारण करके आ खड़ी हुई है। इतने दिन तक वह यह समझकर कि उसकी स्त्री और लड़की इस दुनिया से कूच कर गईं, सब्र करके बैठा हुआ था, लेकिन जब से उसे अपनी स्त्री और लड़की के इस दुनिया में मौजूद रहने का कुछ हाल और आपस वालों की बेईमानी का पता मालूम हुआ है तब से अफसोस, रंज और गुस्से से उसके दिल की अजब हालत हो रही है।

लक्ष्मीदेवी, कमलिनी और लाड़िली को समझा-बुझाकर जब इन्द्रदेव बलभद्रसिंह को छुड़ाने की नीयत से जमानिया की तरफ रवाना हुए, तो पहाड़ी के नीचे पहुँचकर उन्होंने अपने अस्तबल से एक उम्दा घोड़ा खोला और उस पर सवार हो पाँच ही सात

कदम आगे बढ़े थे कि राजा गोपालसिंह का भेजा हुआ एक सवार आ पहुँचा जिसने सलाम करके एक चिट्ठी उनके हाथ में दी और उन्होंने उसे खोलकर पढ़ा ।

इस चिट्ठी में राजा गोपालसिंह ने यही लिखा था, "यह सुनकर आपको बड़ा आश्चर्य होगा कि आज कल इन्दिरा मेरे घर में है और उसकी माँ भी जीती है जो यद्यपि तिलिस्म में फँसी हुई है मगर उसे अपनी आँखों से देख आया हूँ । अस्तु, आप पत्र पढ़ते ही अकेले मेरे पास चले आइये ।"

इस चिट्ठी को पढ़कर इन्द्रदेव कितना खुश हुए होंगे, यह हमारे पाठक स्वयं समझ सकते हैं। अस्तु, वे तेजी के साथ जमानिया की तरफ रवाना हुए और समय से पहले ही जमानिया जा पहुँचे। जब राजा गोपालसिंह को उनके आने की खबर हुई तो वे दरवाजे तक आकर बड़ी मुहब्बत से इन्द्रदेव को घर के अन्दर ले गये और गले से मिलकर अपने पास बैठाया तथा इन्दिरा को बुलवा भेजा। जब इन्दिरा को अपने पिता के आने की खबर मिली, दौड़ती हुई राजा गोपालसिंह के पास आई और अपने पिता के पैरों पर गिरकर रोने लगी। इस समय कमरे के अन्दर राजा गोपालसिंह, इन्द्रदेव और इन्दिरा के सिवाय और कोई भी न था। कमरे में एकान्त कर दिया गया था, यहाँ तक कि जो लौंडी इन्दिरा को बुलाकर लाई थी वह भी बाहर कर दी गई थी।

इन्दिरा के रोने ने राजा गोपालसिंह और इन्द्रदेव का कलेजा हिला दिया और वे दोनों भी रोने से अपने को बचा न सके। आखिर उन्होंने बड़ी मुश्किल से अपने को सम्हाला और इन्दिरा को दिलासा देने लगे। थोड़ी देर बाद इन्दिरा का जी ठिकाने हुआ तो इन्द्रदेव ने उसका हाल पूछा और उसने अपना दर्दनाक किस्सा कहना शुरू किया।

इन्दिरा का हाल जो कुछ ऊपर के बयान में लिख चुके हैं, वह और उसके बाद का अपना तथा अपनी माँ का बचा हुआ किस्सा भी इन्दिरा ने बयान किया जिसे सुनकर इन्द्रदेव की आँखें खुल गईं और उन्होंने एक लम्बी साँस लेकर कहा—

"अफसोस, हरदम साथ रहने वालों की जब यह दशा है तो किस पर विश्वास किया जाय ! खैर, कोई चिन्ता नहीं।"

गोपालसिंह—मेरे प्यारे दोस्त, जो कुछ होना था सो हो गया। अब अफसोस करना वृथा है। क्या मैं उन राक्षसों से कुछ कम सताया गया हूँ? नहीं, ईश्वर न्याय करने वाला है, और तुम देखोगे कि उनका पाप उन्हें किस तरह खाता है। रात बीत जाने पर मैं इन्दिरा की माँ से भी तुम्हारी मुलाकत कराऊँगा। अफसोस, दुष्ट दारोगा ने उसे ऐसी जगह पहुँचा दिया है कि जहाँ से वह स्वयं तो निकल ही नहीं सकती, मैं खुद तिलिस्म का राजा कहला कर भी उसे छुड़ा नहीं सकता। लेकिन अब कुँअर इन्द्रजीत सिंह और आनन्दसिंह उस तिलिस्म को तोड़ रहे हैं, आशा है कि वह बेचारी भी बहुत जल्द इस मुसीबत से छूट जायगी।

इन्द्रदेव—क्या इस समय मैं उसे नहीं देख सकता?

गोपालसिंह—नहीं, यदि दोनों कुमार तिलिस्म तोड़ने में हाथ न लगा चुके होते तो शायद मैं ले भी चलता, मगर अब रात के वक्त वहाँ जाना असम्भव है।

जिस समय इन्द्रदेव और गोपालसिंह की मुलाकात हुई थी, चिराग जल चुका था। यद्यपि इन्दिरा ने अपना किस्सा संक्षेप में बयान किया था मगर फिर भी इस काम में डेढ़ पहर का समय बीत गया था। इसके बाद राजा गोपालसिंह ने अपने सामने इन्द्रदेव को खिलाया और इन्द्रदेव ने अपना तथा रोहतासढ़ का हाल कहना शुरू किया तथा इस समय तक जो मामले हो चुके थे, सब खुलासा बयान किया। तमाम रात बात-चीत में ही बीत गई और सवेरा होने पर जरूरी कामों से छुट्टी पाकर तीनों आदमी तिलिस्म के अन्दर जाने के लिए तैयार हुए।

इस जगह हमें यह कह देना चाहिए कि इन्दिरा को तिलिस्म के अन्दर से निकाल कर अपने घर में ले आना राजा गोपालसिंह ने बहुत गुप्त रक्खा था और ऐयारी के ढंग पर उसकी सूरत भी बदलवा दी थी।

8

आनन्दसिंह की आवाज सुनने पर इन्द्रजीतसिंह का शक जाता रहा और वे आनन्दसिंह के आने का इन्तजार करते हुए नीचे उतर आए जहाँ थोड़ी ही देर बाद उन्होंने अपने छोटे भाई को उसी राह से आते देखा जिस राह से वे स्वयं इस मकान में आये थे।

इन्द्रजीतसिंह अपने भाई के लिए बहुत ही दुःखी थे। उन्हें विश्वास हो गया था आनन्दसिंह किसी आफत में फँस गये और बिना तरद्दुद के उनका छूटना कठिन है, मगर थोड़ी ही देर में बिना झंझट के उनके आ मिलने से उन्हें कम ताज्जुब न हुआ। उन्होंने आनन्दसिंह को गले से लगा लिया और कहा—

इन्द्रदेव—मैं तो समझता था कि तुम किसी आफत में फस गए और तुम्हारे छुड़ाने के लिए बहुत ज्यादा तरद्दुद करना पड़ेगा।

आनन्दसिंह—जी नहीं, वह मामला तो बिल्कुल खेल ही निकला। सच तो यह है कि इस तिलिस्म में दिल्लगी और मसखरेपन का भाग भी मिला हुआ है।

इन्द्रदेव—तो तुम्हें किसी तरह की तकलीफ नहीं हुई?

आनन्दसिंह—कुछ भी नहीं, हवा के खिंचाव के कारण जब मैं शीशे के अन्दर चला गया तो वह शीशे का टुकड़ा जिसे दरवाजा कहना चाहिए, बन्द हो गया और मैंने अपने को पूरे अन्धकार में पाया। तिलिस्मी खंजर का कब्जा दबाकर रोशनी की, तो सामने एक छोटा-सा दरवाजा एक पल्ले का दिखाई पड़ा, जिसमें खींचने के लिए लोहे की दो कड़ियाँ लगी हुई थीं। मैंने बाएँ हाथ से एक कड़ी पकड़ कर दरवाजा खींचना चाह, मगर वह थोड़ा-सा खिचकर रह गया। सोचा कि इसमें दो कड़ियाँ इसीलिए लगी हैं कि दोनों हाथों से पकड़कर दरवाजा खींचा जाये। अतः तिलिस्मी खंजर म्यान में रख लिया जिससे पुनः अंधकार हो गया और इसके बाद दोनों हाथों से दोनों कड़ियों को पकड़कर अपनी तरफ खींचना चाहा, मगर मेरे दोनों हाथ उन कड़ियों में चिपक गये और दरवाजा

भी न खुला। उस समय मैं बहुत ही घबड़ा गया और हाथ छुड़ाने के लिए जोर करने लगा। दस-बारह पल के बाद वह कड़ी पीछे की तरफ हटी और मुझे खींचती हुई दूर तक ले गई। मैं यह नहीं कह सकता कि कड़ियों के साथ ही दरवाजे का कितना बड़ा भाग पीछे की तरफ हटा था, मगर इतना मालूम हुआ कि मैं ढलवाँ जमीन की तरफ जा रहा हूँ। आखिर जब उन कड़ियों का पीछे हटना बन्द हो गया तो मेरे दोनों हाथ भी छूट गए, इसके बाद थोड़ी देर तक घड़घड़ाहट की आवाज आती रही और तब तक मैं चुप-चाप खड़ा रहा।

जब घड़घड़ाहट की आवाज बन्द हो गई, तो मैंने तिलिस्मी खंजर निकाल कर रोशनी की और अपने चारों तरफ गौर करके देखा। जिधर से ढलवाँ जमीन उतरती हुई वहाँ तक पहुँची थी, उस तरफ अर्थात् पीछे की तरफ बिना चौखट का एक बन्द दरवाजा पाया, जिससे मालूम हुआ कि अब मैं पीछे की तरफ नहीं हट सकता, मगर दाहिनी तरफ एक और दरवाजा देखकर मैं उसके अन्दर चला गया और दो कदम के बाद घूमकर फिर मुझे ऊँची जमीन अर्थात् चढ़ाव मिला, जिससे साफ मालूम हो गया कि मैं जिधर से उतरता हुआ आया था, अब उसी तरफ पुनः जा रहा हूँ। कई कदम जाने के बाद पुनः एक बन्द दरवाजा मिला, मगर वह आपसे आप खुल गया। जब मैं उसके अन्दर गया, तो अपने को उसी शीशे वाले कमरे में पाया और घूमकर पीछे की तरफ देखा तो साफ दीवार नजर पड़ी। यह नहीं मालूम होता था कि मैं किसी दरवाजे को लाँघ-कर कमरे में आ पहुँचा हूँ, इसी से मैं कहता हूँ कि तिलिस्म बनाने वाले मसखरे भी थे, क्योंकि उन्हीं की चालाकियों ने मुझे घुमा-फिराकर पुनः उसी कमरे में पहुँचा दिया जिसे एक तरह की जबरदस्ती कहना चाहिए।

मैं उस कमरे में खड़ा हुआ ताज्जुब से उसी शीशे की तरफ देख रहा था कि पहले की तरह दो आदमियों की बातचीत की आवाज सुनाई दी। मैं आपके साथ जब उस कमरे में था, तब जो बातें सुनने में आयी थीं, वे ही पुनः सुनीं और जिन लोगों को उस आईने के अन्दर आते-जाते देखा था, उन्हीं को पुनः देखा भी। निःसन्देह मुझे बड़ा ही ताज्जुब हुआ और मैं बड़े गौर से तरह-तरह की बातों को सोच रहा था कि इतने ही में आपकी आवाज सुनाई दी और आपकी आज्ञानुसार अजदहे के मुँह में जाकर यहाँ तक आ पहुँचा। आप यहाँ किस राह से आए हैं?

इन्द्रजीतसिंह—मैं भी अजदहे के मुँह में होता हुआ आया हूँ और यहाँ आने पर मुझे जो-जो बातें मालूम हुई हैं उनसे शीशे वाले कमरे का कुछ भेद मालूम हो गया।

आनन्दसिंह—सो क्या?

इन्द्रजीतसिंह—मेरे साथ आओ, मैं सब तमाशा तुम्हें दिखाता हूँ।

अपने छोटे भाई को साथ लिए कुँअर इन्द्रजीतसिंह नीचे के खण्ड वाली सब चीजों को दिखाकर ऊपर वाले खण्ड में गये और वहाँ का बिल्कुल हाल कहा। बाजा और मूरत इत्यादि भी दिखाया और बाजे के बोलने तथा मूरत के चलने-फिरने के विषय में भी अच्छी तरह समझाया जिससे इन्द्रजीतसिंह की तरह आनन्दसिंह का भी शक जाता रहा। इसके बाद आनन्दसिंह ने पूछा, "अब क्या करना चाहिए?"

इन्द्रजीतसिंह—यहाँ से बाहर निकलने के लिए दरवाजा खोलना चाहिए। मैं यह निश्चय कर चुका हूँ कि इस खण्ड के ऊपर जाने के लिए कोई रास्ता नहीं है और न ऊपर जाने से कुछ काम ही चलेगा, अतएव हमें पुनः नीचे वाले खण्ड में चलकर दरवाजा ढूँढ़ना चाहिए, या तुमने अगर कोई बात सोची हो, तो कहो।

आनन्दसिंह—मैं तो यह सोचता हूँ कि हम आखिर तिलिस्म तोड़ने के लिए ही यहाँ आए हैं इसलिए जहाँ तक बन पड़े, यहाँ की चीजों को तोड़-फोड़ और नष्ट-भ्रष्ट करना चाहिए, इसी बीच में कहीं-न-कहीं कोई दरवाजा दिखाई दे ही जायेगा।

इन्द्रजीतसिंह—(मुस्कराकर) यह भी एक बात है, खैर, तुम अपने ही खयाल के मुताबिक कार्रवाई करो, हम तमाशा देखते हैं।

आनन्दसिंह—बहुत अच्छा, तो आइये, पहले उस दरवाजे को खोलें, जिसके अन्दर पुतलियाँ जाती हैं।

इतना कहकर आनन्दसिंह उस दालान में गये, जिसमें कमलिनी, लाड़िली तथा और ऐयारों की मूरतें थीं। हम ऊपर लिख चुके हैं कि ये मूरतें लोहे की नालियों पर चल कर जब शीशे वाली दीवार के पास पहुँचती थीं तो वहाँ का दरवाजा आप-से-आप खुल जाता था। आनन्दसिंह भी उसी दरवाजे के पास गये और कुछ सोचकर उन्हीं नालियों पर पैर रखा जिन पर पुतलियाँ चलती थीं।

नालियों पर पैर रखने के साथ ही दरवाजा खुल गया और दोनों भाई उस दरवाजे के अन्दर चले गए। इन्हें वहाँ दो रास्ते दिखाई पड़े, एक दरवाजा तो बन्द था और जंजीर में एक भारी ताला लगा हुआ था और दूसरा रास्ता शीशे वाली दीवार की तरफ गया हुआ था, जिसमें पुतलियों के आने-जाने के लिए नालियाँ भी बनी हुई थीं। पहले दोनों कुमार पुतलियों के चलने का हाल मालूम करने की नीयत से उसी तरफ गए और वहाँ अच्छी तरह घूम-फिरकर देखने और जाँच करने पर जो कुछ उन्हें मालूम हुआ उसका खुलासा हम नीचे लिखते हैं।

वहाँ शीशे की तीन दीवारें थी और हर एक के बीच में आदमियों के चलने-फिरने लायक रास्ता छूटा हुआ था। पहले शीशे की दीवार जो कमरे की तरफ थी, सादी थी अर्थात् उस शीशे के पीछे पारे की कलई की हुई न थी, हाँ उसके बाद वाली दूसरी शीशे वाली दीवार में कलई की हुई थी और वहाँ जमीन पर पुतलियों के चलने के लिए नालियाँ भी कुछ इस ढंग से बनी हुई थी कि बाहर वालों को दिखाई न पड़ें और पुतलियाँ कलई वाले शीशे के साथ सटी हुई चल सकें। यही सबब था कि कमरे की तरफ से देखने वालों को शीशे के अन्दर आदमी चलता हुआ मालूम पड़ता था और उन नकली आदमियों की परछाईं भी जो शीशे में पड़ती थी, साथ सटे रहने के कारण देखने वाले को दिखाई नहीं पड़ती थी। मूरतें आगे जाकर घूमती हुई दीवार के पीछे चली जाती थीं, जिसके बाद फिर शीशे की दीवार थी और उस पर नकली कलई की हुई थीं। इस गली में भी नाली बनी हुई थी उसी राह से मूरतें लौटकर अपने ठिकाने जा पहुँचती थी।

इन सब चीजों को देखकर जब कुमार लौटे, तो बन्द दरवाजे के पास आये जिसमें एक बड़ा-सा ताला लगा हुआ था। खंजर से जंजीर काट कर दोनों भाई उसके अन्दर

गये, तीन-चार कदम जाने के बाद नीचे उतरने के लिए सीढ़ियाँ मिलीं। इन्द्रजीतसिंह अपने हाथ में तिलिस्मी खंजर लिए हुए रोशनी कर रहे थे।

दोनों भाई सीढ़ियाँ उतरकर नीचे चले गए और इसके बाद उन्हें एक बारीक सुरंग में चलना पड़ा। थोड़ी देर बाद एक और दरवाजा मिला, उसमें भी ताला लगा हुआ था। आनन्दसिंह ने तिलिस्मी खंजर से उसकी भी जंजीर काट डाली और दरवाजा खोलकर दोनों भाई उसके भीतर चले गये।

इस समय दोनों कुमारों ने अपने को एक बाग में पाया। यह बाग छोटे-छोटे जंगली पेड़ों और लताओं से भरा हुआ था। यद्यपि यहाँ की क्यारियाँ निहायत खूबसूरत और संगमर्मर के पत्थर से बनी हुई थीं, मगर उनमें सिवाय झाड़-झंखाड़ के और कुछ न था। इसके अतिरिक्त और भी चारों तरफ एक प्रकार का जंगल हो रहा था, हाँ दो-चार पेड़ फलों के वहाँ जरूर थे और एक छोटी-सी नहर भी एक तरफ से आकर बाग में घूमती हुई दूसरी तरफ निकल गई थी। बाग के बीचोंबीच में एक छोटा-सा बँगला बना हुआ था जिसकी जमीन, दीवार और छत इत्यादि सब पत्थर की और मजबूत बनी हुई थीं, मगर फिर भी उसका कुछ भाग टूट-फूटकर खराब हो रहा था।

जिस समय दोनों कुमार इस बाग में पहुँचे उस समय दिन बहुत कम बाकी था और ये दोनों भाई भी भूख-प्यास और थकावट से परेशान हो रहे थे! अतः नहर के किनारे जाकर दोनों ने हाथ-मुँह धोया और जरा आराम लेकर जरूरी कामों के लिए चले गये। उससे छुट्टी पाने के बाद दो-चार फल तोड़कर खाये और नहर का जल पीकर इधर-उधर घूमने-फिरने लगे। उस समय उन दोनों को यह मालूम हुआ कि जिस दरवाजे की राह से वे दोनों इस भाग में आये थे, वह आप-से-आप ऐसा बन्द हो गया कि उसके खुलने की कोई उम्मीद नहीं।

दोनों भाई घूमते हुए बीच वाले बँगले में आये। देखा कि तमाम जमीन कूड़ा-कर्कट से खराब हो रही है। एक पेड़ से बड़े-बड़े पत्तों वाली छोटी डाली तोड़ जमीन साफ की और रात भर उसी जगह गुजारा किया।

सुबह को जरूरी कामों से छुट्टी पाकर दोनों भाइयों ने नहर में दुपट्टा (कमर-बन्द) धोकर सूखने को डाला। और जब वह सूख गया तो स्नान-पूजा से निश्चिन्त हो, दो-चार फल खाकर पानी पीया और पुनः बाग में घूमने लगे।

इन्द्रजीतसिंह—जहाँ तक मैं सोचता हूँ, यह वही बाग है जिसका हाल तिलिस्मी बाजे से मालूम हुआ था, मगर उस पिंडी का पता नहीं लगता।

आनन्दसिंह—निःसन्देह यह वही बाग है! यह बीच वाला बँगला हमारा शक दूर करता है और इसीलिए जल्दी करके इस बाग के बाहर हो जाने की फिक्र न करनी चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि 'मनुवाटिका' यही जगह हो, मगर हम धोखे में आकर इसके बाहर हो जायें। बाजे ने भी यही कहा था कि यदि अपना काम किये बिना 'मनु-वाटिका' के बाहर हो जाओगे, तो तुम्हारे किये कुछ भी न होगा, न तो पुनः 'मनु-वाटिका' में जा सकोगे और न अपनी जान बचा सकोगे।

इन्द्रजीतसिंह—रिक्तगन्थ में भी तो यही बात लिखी है, इसलिए मैं भी यहाँ से

बाहर निकल चलने के लिए नहीं कह सकता, मगर अब जिस तरह भी हो, उस पिंडी का पता लगाना चाहिए।

पाठक, तिलिस्मी किताब (रिक्तगन्थ) और तिलिस्मी बाजे दोनों से कुमारों को यह मालूम हुआ था कि मनुवाटिका में किसी जगह जमीन पर एक छोटी-सी पिंडी बनी हुई मिलेगी। उसका पता लगाकर उसी को अपने मतलब का दरवाजा समझना है, यही सबब था कि दोनों कुमार उस पिण्डी को खोज निकालने की फिक्र में लगे हुए थे, मगर उस पिण्डी का पता नहीं लगता था। लाचार उन्हें कई दिनों तक उस बाग में रहना पड़ा आखिर एक घनी झाड़ी के अन्दर उस पिण्डी का पता लगा। वह करीब हाथ भर के ऊँची और तीन हाथ के घेरे में होगी और यह किसी तरह भी मालूम नहीं हो रहा था कि वह पत्थर की है या लोहे, पीतल इत्यादि किसी धातु की बनी हुई है। जिस चीज से वह पिण्डी बनी हुई थी उसी चीज से बना हुआ सूर्यसूखी का एक फूल उसके ऊपर जड़ा हुआ था और यही उस पिण्डी की पूरी पहचान थी। आनन्दसिंह ने खुश होकर इन्द्रजीतसिंह से कहा—

आनन्दसिंह—वाह रे! किसी तरह ईश्वर की कृपा से इस पिण्डी का पता तो लगा। मैं समझता हूँ, इसमें आपको किसी तरह का शक न होगा?

इन्द्रजीतसिंह—मुझे किसी तरह का शक नहीं है। यह पिण्डी निःसन्देह वही है, जिसे हम लोग खोज रहे थे। अब इस जमीन को अच्छी तरफ साफ करके अपने सच्चे सहायक रिक्तगन्थ से हाथ धो बैठने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।

आनन्दसिंह—जी हाँ, ऐसा ही होना चाहिए, यदि रिक्तगन्थ में कुछ सन्देह हो, तो उसे पुनः देख जाइए।

इन्द्रजीतसिंह—यद्यपि इस ग्रन्थ में मुझे किसी तरह का सन्देह नहीं है और जो कुछ उसमें लिखा है मुझे अच्छी तरह याद है, मगर शक मिटाने के लिए एक दफे उलट-पलट कर जरूर देख लूंगा।

आनन्दसिंह—मेरा भी यही इरादा है। यह काम घण्टे-दो-घण्टे के अन्दर हो भी जायेगा। अतः आप पहले रिक्तगन्थ देख जाइये, तब तक मैं इस झाड़ी को साफ किए डालता हूँ।

इतना कहकर आनन्दसिंह ने तिलिस्मी खंजर से काट कर पिण्डी के चारों तरफ के झाड़-झंखाड़ को साफ करना शुरू किया और इन्द्रजीतसिंह नहर के किनारे बैठकर तिलिस्मी किताब को उलट-पुलट कर देखने लगे। थोड़ी देर बाद इन्द्रजीतसिंह आनन्दसिंह के पास आये और बोले—"लो, अब तुम भी इसे देखकर अपना शक मिटा लो, और तब तक तुम्हारे काम को मैं पूरा कर डालता हूँ!"

आनन्दसिंह ने अपना काम छोड़ दिया और अपने भाई के हाथ से 'रिक्तगन्थ' लेकर नहर के किनारे चले गये तथा इन्द्रजीतसिंह ने तिलिस्मी खंजर से पिण्डी के चारों तरफ की सफाई करनी शुरू कर दी। थोड़ी ही देर में जो कुछ घास-फूस, झाड़-झंखाड़ पिण्डी के चारों तरफ था, साफ हो गया और आनन्दसिंह भी तिलिस्मी किताब देखकर अपने भाई के पास चले आये और बोले, "अब क्या आज्ञा है?"

इसके जवाब में इन्द्रजीतसिंह ने कहा, "बस, अब नहर के किनारे चलो और रिक्तगन्थ का आटा गूंधो।"

दोनों भाई नहर के किनारे आये और एक ठिकाने सायेदार जगह देखकर बैठ गये। उन्होंने नहर के किनारे वाले एक पत्थर की चट्टान को जल से अच्छी तरह धोकर साफ किया और इसके बाद रिक्तगन्थ पानी में डुबोकर उस पत्थर पर रख दिया। देखते ही देखते जो कुछ पानी रिक्तगन्थ में लगा था, सब उसी में पच गया। फिर हाथ से उस पर डाला, वह भी पच गया। इसी तरह बार-बार चुल्लू भर-भरकर उस पर पानी डालने लगे और ग्रन्थ पानी पी-पीकर मोटा होने लगा। थोड़ी देर के बाद वह मुलायम हो गया और तब आनन्दसिंह ने उसे हाथ से मल के आटे की तरह गूंधना शुरू किया। शाम होने तक उसकी सूरत ठीक गूंधे हुए आटे की तरह हो गई, मगर रंग इसका काला था। आनन्दसिंह ने इस आटे को उठा लिया और अपने भाई के साथ उस पिण्डी के पास आकर उनकी आज्ञानुसार तमाम पिण्डी पर उसका लेप कर दिया। इस के बाद दोनों भाई यहाँ से किनारे हो गये और जरूरी कामों से छुट्टी पाने के काम में लगे।

9

रात आधी से कुछ ज्यादा जा चुकी है और दोनों कुमार बाग के बीचवाले उसी दालान में सोये हुए हैं। यकायक किसी तरह की भयानक आवाज सुनकर दोनों भाइयों की नींद टूट गई और वे दोनों उठकर जंगले के नीचे चले आये, चारों तरफ देखने पर जब इनकी निगाह उस तरफ गई, जिधर वह पिण्डी थी, तो कुछ रोशनी मालूम पड़ी, दोनों भाई उसके पास गये तो देखा कि उस पिण्डी में से हाथ भर ऊँची लौ निकल रही है। यह लौ (आग की ज्योति) नीले और कुछ पीले रंग की मिली-जुली थी। साथ ही इसके यह भी मालूम हुआ कि लाह या राल की तरह वह पिण्डी गलती हुई जमीन के अन्दर धँसती चली जा रही है। उस पिण्डी में से जो धूआँ निकल रहा था उसमें धूप या लोबान की-सी खूशबू आ रही थी।

थोड़ी देर तक दोनों कुमार वहाँ खड़े रहकर यह तमाशा देखते रहे। इसके बाद इन्द्रजीतसिंह यह कहते हुए बँगले की तरफ लौटे, "ऐसा तो होना ही था, मगर उस भयानक आवाज का पता न लगा, शायद इसी में से वह आवाज भी निकली हो।" इसके जवाब में आनन्दसिंह ने कहा, "शायद ऐसा ही हो!"

दोनों कुमार अपने ठिकाने चले आए और बची हुई रात बातचीत में काटी क्योंकि खटका हो जाने के कारण फिर उन्हें नींद न आई। सवेरा होने पर जब वे दोनों पुनः उस पिण्डी के पास गये, तो देखा कि आग बुझी हुई है और पिण्डी की जगह बहुत-सी पीले रंग की राख मौजूद है। यह देख दोनों भाई वहाँ से लौट आये और नित्यकर्म से छुट्टी पा पुनः वहाँ जाकर उस पीले रंग की राख को निकाल वह जगह साफ करने लगे।

मालूम हुआ कि वह पिण्डी जो जल कर राख हो गई है लगभग तीन हाथ के जमीन के अन्दर थी और इसीलिए राख साफ हो जाने पर तीन हाथ का गड़हा इतना लम्बा-चौड़ा निकल आया कि जिसमें दो आदमी बखूवी जा सकते थे। गड़हे के पेंदे में लोहे का एक तख्ता था, जिसमें कड़ी लगी हुई थी। इन्द्रजीतसिंह ने कड़ी में हाथ डाल कर वह लोहे का तख्ता उठा लिया और आनन्दसिंह को देकर कहा, "इसे किनारे रख दो।"

लोहे का तख्ता हटा देने के बाद ताले के मुँह की तरह एक सूराख नजर आया, जिसमें इन्द्रजीतसिंह ने वही तिलिस्मी ताली डाली जो पुतली के हाथ में से ली थी। कुछ तो वह ताली ही विचित्र बनी हुई थी और कुछ ताला खोलते समय इन्द्रजीतसिंह को बुद्धिमानी से भी काम लेना पड़ा। ताला खुल जाने के बाद जब दरवाजे की तरह का एक पल्ला हटाया गया तो नीचे उतरने के लिए सीढ़ियाँ नजर आईं। तिलिस्मी खंजर की रोशनी के सहारे दोनों भाई नीचे उतरे और भीतर से दरवाजा बन्दकर लिया, क्योंकि ताले का छेद दोनों तरफ था और वही ताली दोनों तरफ काम देती थी।

पन्द्रह या सोलह सीढ़ियाँ उतर जाने के बाद दोनों कुमारों को थोड़ी दूर तक एक सुरंग में चलना पड़ा। इसके बाद ऊपर चढ़ने के लिए पुनः सीढ़ियाँ मिली और तब उसी ताली से खुलने लायक एक दरवाजा मिला। सीढ़ियाँ चढ़ने और दरवाजा खोलने के बाद कुमारों को कुछ मिट्टी हटानी पड़ी और इसके बाद वे दोनों जमीन के बाहर निकले।

इस समय दोनों कुमारों ने अपने को एकऔर ही बाग में पाया जो लम्बाई-चौड़ाई में उस बाग से कुछ छोटा था, जिसमें से कुमार आये थे। पहले बाग की तरह यह बाग भी एक प्रकार से जंगल हो रहा था। इन्दिरा की माँ अर्थात् इन्द्रदेव की स्त्री इसी बाग में मुसीबत की घड़ियाँ काट रही थी और इस समय भी इसी बाग में मौजूद थी इसलिए बनिस्बत पहले बाग के इस बाग का नक्शा कुछ खुलासा तौर पर लिखना आवश्यक है।

इस बाग में किसी तरह की इमारत न थी, न तो कोई कमरा था और न कोई बँगला या दालान था, इसलिए बेचारी सरयू को जाड़े के मौसम की कलेजा दहलाने वाली सर्दी, गर्मी की कड़कड़ाती हुई धूप और बरसात का मूसलाधार पानी अपने कोमल शरीर के ऊपर ही बर्दाश्त करना पड़ता था। हाँ, कहने के लिए ऊँचे बड़े और पीपल के पेड़ों का कुछ सहारा हो तो हो, मगर बड़े प्यार में पली दिन-रात सुख में ही बितानेवाली एक पतिव्रता के लिए जंगलों और भयानक पेड़ों का सहारा सहारा नहीं कहा जा सकता, बल्कि वह भी उसके लिए डराने और सताने का सामान माना जा सकता है। हाँ, वहाँ थोड़े से ऐसे पेड़ भी जरूर थे जिनके फलों को खाकर पति-मिलाप की आशा-लता में उलझी हुई अपनी जान को बचा सकती थी और प्यास दूर करने के लिए उस नहर का पानी भी मौजूद था, जो मनुवाटिका में से होती हुई इस बाग में भी आकर बेचारी सरयू की जिन्दगी का सहारा हो रहा था। पर तिलिस्म बनाने वालों ने उस नहर को इस योग्य नहीं बनाया था कि कोई उसके मुहाने को दम भर के लिए सुरंग मानकर एक बाग से दूसरे बाग में जा सके। इस बाग की चहारदीवारी में भी विचित्र कारीगरी की गई थी। दीवार कोई छू भी नहीं सकता था, कई प्रकार की धातुओं से इस बाग की सात हाथ ऊँची

दीवार बनाई गई थी। जिस तरह रस्सियों के सहारे कनात खड़ी की जाती है, शक्ल-सूरत में वह दीवार वैसी ही मालूम पड़ती थी अर्थात् एक-एक दो-दो कहीं-कहीं तीन-तीन हाथ की दूरी पर दीवार में लोहे की जंजीरें लगी हुई थीं, जिनका एक सिरा तो दीवार के अन्दर घुस गया था और दूसरा सिरा जमीन के अन्दर था। चारों तरफ की दीवार में से किसी भी जगह हाथ लगाने से आदमी के बदन में बिजली का असर हो जाता था और वह बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ता था। यही सबब था कि बेचारी सरयू उस दीवार के पार हो जाने के लिए कोई उद्योग न कर सकी, बल्कि इस चेष्टा में उसे कई दफे तकलीफ भी उठानी पड़ी।

इस बाग के उत्तर की तरफ की दीवार के साथ सटा हुआ एक छोटा सा मकान था। इस बाग में खड़े होकर देखने वालों को यह मकान ही मालूम पड़ता था, मगर हम यह नहीं कह सकते कि दूसरी तरफ से उसकी क्या सूरत थी। इसकी सात खिड़कियाँ इस बाग की तरफ थीं जिनसे मालूम होता था कि यह इस मकान का एक खुलासा कमरा है। इस बाग में आने पर सबके पहले जिस चीज पर कुंअर इन्द्रजीतसिंह की निगाह पड़ी वह यही कमरा था और उसकी तीन खिड़कियों में से इन्दिरा, इन्द्रदेव और राजा गोपालसिंह इस बाग की तरफ झाँककर किसी को देख रहे थे, और इसके बाद बाद जिस पर उनकी निगाह पड़ी, वह जमाने के हाथों से सताई हुई बेचारी सरयू थी। मगर उसे दोनों कुमार पहचानते न थे।

जिस तरह कुंअर इन्द्रजीतसिंह और उनके बताने से आनन्दसिंह ने राजा गोपाल-सिंह, इन्द्रदेव और इन्दिरा को देखा, उसी तरह उन तीनों ने भी दोनों कुमारों को देखा और दूर ही से साहब-सलामत की।

इन्दिरा ने हाथ जोड़कर और अपने पिता की तरफ बताकर कुमारों से कहा, "आप ही के चरणों की बदौलत मुझे अपने पिता के दर्शन हुए।"

10

अब हम अपने पाठकों को फिर उसी सफर में ले चलते हैं जिसमें चुनार जाने वाले राजा वीरेन्द्रसिंह का लश्कर पड़ा हुआ हैं। पाठकों को याद होगा कि कम्बख्त मनो-रमा ने तिलिस्मी खंजर से किशोरी, कामिनी और कमला का सिर काट डाला और खुशी भरी आवाज में कुछ कह रही थी कि पीछे की तरफ से आवाज आई, "नहीं-नहीं, ऐसा न हुआ है, न होगा!"

आवाज देने वाला भैरोंसिंह था जिसे मनोरमा के खोज निकालने का काम सुपुर्द किया गया था। वह मनोरमा की खोज में चक्कर लगाता और टोह लेता हुआ उसी जगह जा पहुँचा था, मगर उसे इस बात का बड़ा ही अफसोस था कि उन तीनों का सिर कट जाने के बाद वह खेमे के अन्दर पहुँचा।

हमारे ऐयार की आवाज सुनकर मनोरमा चौंकी और उसने घूमकर पीछे की तरफ देखा तो हाथ में खंजर लिए हुए भैरोंसिंह पर निगाह पड़ी। यद्यपि भैरोंसिंह पर नजर पड़ते ही वह जिन्दगी से नाउम्मीद हो गई, मगर फिर उसने तिलिस्मी खंजर का वार भैरोंसिंह पर किया, मगर भैरोंसिंह पहले ही से होशियार था और उसके पास भी तिलिस्मी खंजर मौजूद था, अतः उसने अपने खंजर पर इस ढंग से मनोरमा के खंजर का वार रोका कि मनोरमा की कलाई भैरोंसिंह के खंजर पर पड़ी और वह कट कर तिलिस्मी खंजर सहित दूर जा गिरी। भैरोंसिंह ने इतने ही पर सब्र न करके उसी खंजर से मनोरमा की एक टाँग काट डाली और इसके बाद जोर से चिल्लाकर पहरे वालों को आवाज दी।

पहरे वाले तो पहले ही से बेहोश पड़े हुए थे, मगर भैरोंसिंह की आवाज ने लौंडियों को होशियार कर दिया और बात की बात में बहुत-सी लौंडियाँ उस खेमे के अन्दर आ पहुँचीं जो वहाँ की अवस्था देखकर जोर-जोर से रोने और चिल्लाने लगीं।

थोड़ी देर में उस खेमे के अन्दर और बाहर भीड़ लग गई। जिधर देखिये उधर मशाल जल रही है और आदमी पर आदमी टूटा पड़ता है। राजा वीरेन्द्रसिंह और तेजसिंह भी उस खेमे में गये ओर वहाँ की अवस्था देखकर अफसोस करने लगे। तेजसिंह ने हुक्म दिया कि तीनों लाशें उसी जगह ज्यों की त्यों रहने दी जायें और मनोरमा, (जो कि चेहरा धुल जाने कारण पहचानी जा चुकी थी) वहाँ से उठवाकर दूसरे खेमे में पहुँचाई जाय, उसके जख्म पर पट्टी लगाई जाय और उस पर सख्त पहरा रहे। इसके बाद भैरोंसिंह और तेजसिंह को साथ लिये राजा वीरेन्द्रसिंह अपने खेमे में आये और बातचीत करने लगे। उस समय खेमे के अन्दर सिवाय इन तीनों के और कोई भी न था। भैरोंसिंह ने अपना हाल बयान किया और कहा, "मुझे इस बात का बड़ा दुःख है कि किशोरी, कामिनी और कमला का सिर कट जाने के बाद मैं उस खेमे के अन्दर पहुँचा!"

तेजसिंह—अफसोस की कोई बात नहीं है, ईश्वर की कृपा से हम लोगों को यह बात पहले ही मालूम हो गई थी कि मनोरमा हमारे लश्कर के साथ है।

भैरोंसिंह—अगर यह बात मालूम हो गई थी तो आपने इसका इन्तजाम क्यों नहीं किया और इन तीनों की तरफ से बेफिक्र क्यों रहे?

तेजसिंह—हम लोग बेफिक्र नहीं रहे बल्कि जो कुछ इन्तजाम करना वाजिब था किया गया। तुम यह सुनकर ताज्जुब करोगे कि किशोरी, कामिनी और कमला मरीं नहीं बल्कि ईश्वर की कृपा से जीती हैं, और लौंडी की सूरत में हर दम पास रहने पर भी मनोरमा ने धोखा खाया।

भैरोंसिंह—मनोरमा ने धोखा खाया और वे तीनों जीती हैं?

तेजसिंह—हाँ, ऐसा ही है। इसका खुलासा हाल हम तुमसे कहते हैं, मगर पहले यह बताओ कि तुमने मनोरमा को कैसे पहचाना? हम तो कई दिनों से पहचानने की फिक्र में लगे हुए थे, मगर पहचान न सके। क्योंकि मनोरमा के कब्जे में तिलिस्मी खंजर का होना हमें मालूम था और हम हर लौंडी की उँगलियों पर तिलिस्मी खंजर के जोड़ की अँगूठी देखने की नीयत से निगाह रखते थे।

भैरोंसिह—मैं उसका पता लगाता हुआ इसी लश्कर में आ पहुँचा था। उस समय टोह लेता हुआ जब मैं किशोरी के खेमे के पास पहुँचा तो पहरे के सिपाही को बेहोश और खेमे का पर्दा हटा हुआ देख मुझे किसी दुश्मन के अन्दर जाने का गुमान हुआ और मैं भी उसी राह से खेमे के अन्दर चला गया। जब वहाँ की अवस्था देखी और उसके मुँह से निकली हुई बातें सुनीं, तब शक हुआ कि यह मनोरमा है, मगर निश्चय तब ही हुआ जब उसका चेहरा साफ किया गया और आपने भी पहचाना। अब आप कृपा कर यह बताइए कि किशोरी, कामिनी और कमला क्योंकर जीती बचीं और जो तीनों मारी गईं वे कौन थीं?

तेजसिंह—हमें इस बात का पता लग चुका था कि भेष बदले हुए मनोरमा हमारे लश्कर के साथ है, मगर जैसा कि तुमसे कह चुके हैं, उद्योग करने पर भी हम उसे पहचान न सके। एक दिन हम और राजा साहब संध्या के समय टहलते हुए खेमे से दूर चले गये और एक छोटे टीले पर चढ़कर अस्त होते हुए सूर्य की शोभा देखने लगे। उस समय कृष्ण जिन्न का भेजा हुआ एक सवार हमारे पास आया और उसने एक चिट्ठी राजा साहब के हाथ में दी, राजासाहब ने चिट्ठी पढ़कर मुझे दे दी। उसमें लिखा था—"मुझे इस बात का पूरा-पूरा पता लग चुका है कि कई सहायकों को साथ लिए और भेष बदले हुए मनोरमा आपके लश्कर में मौजूद है और उसके अतिरिक्त और भी कई दुष्ट किशोरी और कामिनी के साथ दुश्मनी करना चाहते हैं। इसलिए मेरी राय है कि बचाव तथा दुश्मनों को धोखा देने के लिए कामिनी और कमला को कुछ दिन तक छिपा देना चाहिए और उनकी जगह सूरत बदलकर दूसरी लौंडियों को रख देना चाहिए। इस काम के लिए मेरा एक तिलिस्मी मकान, जो आपके रास्ते में ही कुछ दूर हटकर पड़ेगा मुनासिब है, और मैंने इस काम के लिए वहाँ पूरा इन्तजाम भी कर दिया है। लौंडियाँ भी सूरत बदलने और खिदमत करने के लिए भेज दी हैं, क्योंकि आपकी लौंडियों की सूरत बदलना ठीक न होगा और लश्कर में लौंडियों की कमी से लोगों को शक भी हो जायगा। अब आप बहुत जल्द इन्तजाम करके उन तीनों को वहाँ पहुँचायें, मैं भी इन्तजाम करने के लिए पहले ही से उस मकान में जाता हूँ—" इत्यादि, इसके बाद उस मकान का पूरा-पूरा पता लिखकर अपना दस्तखत एक निशान के साथ कर दिया था जिसमें हम लोगों को चिट्ठी लिखने वाले पर किसी तरह का शक न हो, और उस मकान के अन्दर जाने की तरकीब भी लिख दी थी।

कृष्ण जिन्न की राय को राजा साहब ने स्वीकार किया और पत्र का उत्तर देकर वह सवार बिदा कर दिया गया। रात के समय किशोरी, कामिनी और कमला को ये बातें समझा दी गयीं और उन्होंने उसी दुष्ट मनोरमा की जुबानी दोपहर के बाद यह कहला भेजा कि 'हमने सुना है कि यहाँ से थोड़ी ही दूर पर कोई तिलिस्मी मकान है, यदि आप चाहें तो हम लोग इस मकान की सैर कर सकती हैं' इत्यादि। मतलब यह कि इसी बहाने से मैं खुद उन तीनों को रथ पर सवार करा के उस मकान में ले गया और कृष्ण जिन्न को वहाँ मौजूद पाया। उसने अपने हाथ से अपनी तीन लौंडियों को किशोरी, कामिनी और कमला बना हमारे रथ पर सवार कराया और हम उन्हें लेकर इस लश्कर

में लौट आये। तुम जानते ही हो कि कृष्ण जिन्न कितना बुद्धिमान और होशियार तथा हम लोगों का दोस्त आदमी है।

भैरोंसिंह—वेशक, उनकी हिफाजत में किशोरी, कामिनी और कमला को किसी तरह की तकलीफ नहीं हो सकती और यह आपने बड़ी खुशी की बात सुनाई, मगर मैं समझता हूँ कि इन भेदों को अभी आप गुप्त रखेंगे और यह बात जाहिर नहीं होने देंगे कि वे तीनों, जो मारी गई हैं, वास्तव में किशोरी, कामिनी और कमला न थीं।

तेजसिंह—नहीं-नहीं, अभी इस भेद का खुलना उचित नहीं है। सभी को यही मालूम रहना चाहिए कि वास्तव में किशोरी, कामिनी और कमला मारी गईं। अच्छा, अब दो-चार बातें तुम्हें और कहनी हैं, वह भी सुन लो।

भैरोंसिंह—जो आज्ञा।

तेजसिंह—कृष्ण जिन्न तो कामकाजी आदमी ठहरा और वह ऐसे-ऐसे बखेड़ों में फँसा है कि कि उसे दम मारने की फुर्सत नहीं।

भैरोंसिंह—निःसन्देह ऐसा ही है। इतना काम जो वह करते हैं सो भी उन्हीं की बुद्धिमानी का नतीजा है, दूसरा नहीं कर सकता।

तेजसिंह—अब कृष्ण जिन्न तो ज्यादा दिनों तक उस मकान में रह नहीं सकता जिसमें किशोरी, कामिनी और कमला हैं। वह अपने ठिकाने चला गया होगा। मगर उन तीनों की हिफाजत का पूरा-पूरा बन्दोबस्त कर गया होगा। अब तुम भी इसी समय उस मकान की तरफ चले जाओ और जब तक हमारा दूसरा हुक्म न पहुँचे या कोई आवश्यक काम न आ पड़े तब तक उन तीनों के साथ रहो, हम उस मकान का पता तथा उसके अन्दर जाने की तरकीब तुम्हें बता देते हैं।

भैरोंसिंह—जो आज्ञा, मैं अभी जाने के लिए तैयार हूँ।

तेजसिंह ने उस मकान का पूरा-पूरा हाल भैरोंसिंह को बता दिया और भैरोंसिंह उसी समय अपने बाप के चरण छूकर बिदा हुए।

भैरोंसिंह के जाने के बाद सवेरा होने पर एक ब्राह्मण द्वारा नकली किशोरी, कामिनी और कमला के मृत देह की दाह-क्रिया कर दी गई। इसके पहले ही लश्कर में जितने पढ़े-लिखे ब्राह्मण थे, सभी को बटोरकर तेजसिंह ने यह व्यवस्था करा ली थी कि इन तीनों का कोई नातेदार यहाँ मौजूद नहीं है, इसलिए किसी ब्राह्मण द्वारा इनकी क्रिया करा देनी चाहिए। इस काम से छुट्टी पाने के बाद लश्कर ने कूच कर दिया और सब कोई धीरे-धीरे चुनारगढ़ की तरफ रवाना हुए।

11

दोनों कुमार यद्यपि सरयू को पहचानते न थे, मगर इन्दिरा की जुबानी उसका हाल सुन चुके थे, इसलिए उन्हें शक हो गया कि यह सरयू है। दूसरे राजा गोपालसिंह

ने भी पुकारकर दोनों कुमारों से कहा कि इन्दिरा की माँ सरयू यही हैं और इन्द्रदेव ने कुमारों की तरफ बताकर सरयू से कहा कि "राजा वीरेन्द्रसिंह के दोनों लड़के यही कुंअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह हैं जो तिलिस्म तोड़ने के लिए यहाँ आए हैं। इन्हीं की बदौलत तुम आफत से छूटोगी।"

दोनों कुमारों को देखते ही सरयू दौड़कर पास चली आई और कुँअर इन्द्रजीतसिंह के पैरों पर गिर पड़ी। सरयू उम्र में कुँअर इन्द्रजीतसिंह से बहुत बड़ी थी। मगर इज्जत और मर्तबे के खयाल दोनों को अपना-अपना हक अदा करना पड़ा। कुमार ने उसे पैर पर से उठाया और दिलासा देकर कहा, "सरयू, इन्दिरा की जुबानी मैं तुम्हारा हाल पूरा-पूरा तो नहीं, मगर बहुत-कुछ सुन चुका हूँ और हम लोगों को तुम्हारी अवस्था पर बहुत ही रंज है। परन्तु अब तुम्हें चाहिए कि अपने दिल से दुःख को दूर करके ईश्वर को धन्यवाद दो, क्योंकि तुम्हारी मुसीबत का जमाना अब बीत गया और ईश्वर इस कैद से बहुत जल्द छुड़ाने वाला है। जब तक हम इस तिलिस्म में हैं, तुम्हें बराबर अपने साथ रखेंगे और जिस दिन हम दोनों भाई तिलिस्म के बाहर निकलेंगे, उस दिन तुम भी दुनिया की हवा खाती हुई मालूम करोगी कि तुम्हें सताने वालों में से अब कोई भी स्वतन्त्र नहीं रह गया और न अब तुम्हें किसी तरह का दुःख भोगना पड़ेगा। तुम्हें ईश्वर को बहुत धन्यवाद देना चाहिए कि दुष्टों के इतना ऊधम मचाने पर भी तुम अपने पति और अपनी प्यारी लड़की को सिवाय कपनी जुदाई के और किसी तरह के रंज और दुःख से खाली पाती हो। ईश्वर तुम लोगों का कल्याण करे।"

इसके बाद कुमार ने कमरे की तरफ सिर उठाकर देखा। राजा गोपालसिंह ने इन्द्रदेव की तरफ इशारा करके कहा, "इन्दिरा के पिता इन्द्रदेव को हमने बुलवा भेजा है। शायद आज के पहले आपने इन्हें न देखा होगा।"

उस समय पुनः इन्द्रदेव ने झुककर कुमार को सलाम किया और कुँअर इन्द्रजीतसिंह ने सलाम का जवाब देकर कहा, "आपका आना बहुत अच्छा हुआ। आप इन दोनों को अपनी आँखों से देखकर प्रसन्न हुए होंगे। कहिये, रोहतासगढ़ का क्या हाल है?"

इन्द्रदेव—सब कुशल है। मायारानी और दारोगा तथा और कैदियों को साथ लेकर राजा वीरेन्द्रसिंह चुनारगढ़ की तरफ रवाना हो गये। किशोरी, कामिनी और कमला को अपने साथ लेते गये। लक्ष्मीदेवी, कमलिनी और लाड़िली तथा नकली बलभद्रसिंह को उनसे माँगकर मैं अपने घर ले गया और उन्हें उसी जगह छोड़कर राजा गोपालसिंह की आज्ञानुसार यहाँ चला आया हूँ। यह हाल संक्षेप में मैंने इसलिए बयान किया कि राजा गोपालसिंह की जुबानी वहाँ का कुछ हाल आपको मालूम हो गया है। यह मैं सुन चुका हूँ।

इन्द्रजीतसिंह—लक्ष्मीदेवी, कमलिनी और लाड़िली को आप यहाँ क्यों न ले आये?

इसका जवाब इन्द्रदेव ने तो कुछ भी न दिया, मगर राजा गोपालसिंह ने कहा, "ये असली बलभद्रसिंह का पता लगाने के लिए अपने मकान से रवाना हो चुके थे, जब रास्ते में मेरा पत्र इन्हें मिला। परसों एक पत्र मुझे कृष्ण जिन्न का भेजा हुआ मिला

था। उसके पढ़ने से मालूम हुआ कि मनोरमा भेष बदलकर राजा साहब के लश्कर में जा मिली थी जिसका पता लगाना बहुत ही कठिन था और वह किशोरी, कामिनी को मार डालने की सामर्थ्य रखती थी, क्योंकि उसके पास तिलिस्मी खंजर भी था। इसलिए कृष्ण जिन्न ने राजा साहब को लिख भेजा था कि बहाना करके गुप्त रीति से किशोरी, कामिनी और कमला को हमारे फलाने तिलिस्मी मकान में (जिसका पता-ठिकाना और हाल भी लिख भेजा था) शीघ्र भेज दीजिए, मैं वहाँ मौजूद रहूँगा और उनके बदले में अपनी लौंडियों को किशोरी, कामिनी और कमला बनाकर भेज दूंगा जो आपके लश्कर में रहेंगी। ऐसा करने से यदि मनोरमा का वार चल भी गया तो हमारा बहुत नुकसान न होगा। राजा साहब ने भी यह बात पसन्द कर ली और कृष्ण जिन्न के कहे मुताबिक किशोरी, कामिनी और कमला को तेजसिंह रथ पर ले जाकर कृष्ण जिन्न के तिलिस्मी मकान में छोड़ आए तथा उनकी जगह भेष बदली हुई लौंडियों को अपने लश्कर में ले गये। आज रात को कृष्ण जिन्न का दूसरा पत्र मुझे मिला जिससे मालूम हुआ कि राजा साहब के लश्कर में नकली किशोरी, कामिनी और कमला मनोरमा के हाथ मारी गयीं और मनोरमा गिरफ्तार हो गई। आज पत्र में कृष्ण जिन्न ने यह भी लिखा है कि तुम इन्द्रदेव को एक पत्र लिख दो कि वह लक्ष्मीदेवी, कमलिनी और लाड़िली को भी बहुत जल्द उसी तिलिस्मी मकान में पहुँचा दें जिसमें किशोरी, कामिनी और कमला हैं, मैं (कृष्ण जिन्न) स्वयं वहाँ मौजूद रहूँगा और दो-तीन दिन के बाद दुश्मनों का रंग-ढंग देखकर किशोरी, कामिनी, कमला, लक्ष्मीदेवी, कमलिनी और लाड़िली को जमानिया पहुँचा दूंगा। इसके बाद राजा वीरेन्द्रसिंह की आज्ञा होगी या जब उचित होगा तो सभी को चुनारगढ़ पहुँचाया जायगा और उन सबके सामने वहाँ भूतनाथ का मुकदमा होगा। कृष्ण जिन्न का यह लिखना मुझे बहुत पसन्द आया, वह बड़ा ही बुद्धिमान और नेक आदमी है। जो काम करता है उसमें कुछ न कुछ फायदा समझ लेता है। अब मैं चाहता हूँ कि (इन्द्रदेव की तरफ इशारा करके) इन्हें आज ही यहाँ से बिदा कर दूँ जिसमें ये उन तीनों औरतों को ले जाकर कृष्ण जिन्न के तिलिस्मी मकान में पहुँचा दें। वहाँ दुश्मनों का डर कुछ भी नहीं है और किशोरी तथा कामिनी को भी इन लोगों से मिलने की बड़ी चाह है जैसा कि कृष्ण जिन्न के पत्र से मालूम होता है।"

ये बातें जो राजा गोपालसिंह ने कहीं दोनों कुमारों को खुश करने के लिए वैसी ही थीं जैसी चातक के लिए स्वाति की बूंद। दोनों कुमारों को किशोरी और कामिनी के मिलने की आशा ने हद से ज्यादा प्रसन्न कर दिया। इन्द्रजीतसिंह ने मुस्कुराकर गोपालसिंह से कहा, "कृष्ण जिन्न की बात मानना आपके लिए उतना ही आवश्यक है जितना हम दोनों भाइयों के लिए तिलिस्म तोड़कर चुनारगढ़ पहुँचना। आप बहुत जल्द इन्द्रदेव को यहाँ से रवाना कीजिए।"

गोपालसिंह—ऐसा ही होगा।

आनन्दसिंह—कृष्ण जिन्न का वह तिलिस्मी मकान कहाँ पर है और यहाँ से कितने दिन की राह…

गोपालसिंह—यहाँ से कुल पन्द्रह कोस पर है।

इन्द्रजीतसिंह—वाह-वाह, तब तो बहुत ही नजदीक है, (इन्द्रदेव से) मेरी तरफ से कृष्ण जिन्न को प्रणाम कर बहुत धन्यवाद दीजिएगा, क्योंकि उन्होंने बड़ी चालाकी से किशोरी, कामिनी और कमला को बचा लिया।

इन्द्रदेव—बहुत अच्छा।

इन्द्रजीतसिंह—आप तो असली बलभद्रसिंह का पता लगाने के लिए घर से निकले थे, उनका···

इन्द्रजीतसिंह—(राजा गोपालसिंह की तरफ इशारा करके) आप कहते हैं कि नकली बलभद्रसिंह ने तुम्हें धोखा दिया, तुम अब उनकी खोज मत करो, क्योंकि भूतनाथ ने असली बलभद्रसिंह का पता लगा लिया और उन्हें छुड़ाकर चुनारगढ़ ले गया।

इन्द्रजीतसिंह—(गोपालसिंह से) क्या यह बात सच है?

गोपालसिंह—हाँ, कृष्ण जिन्न ने मुझे यह भी लिखा था।

इन्द्रजीतसिंह—तब तो इस खबर में किसी तरह का शक नहीं हो सकता।

इसके बाद दुनिया के पुराने नियमानुसार और बहुत दिनों से बिछड़े हुए प्रेमियों के मिलने पर जैसा हुआ करता है, उसी के मुताबिक इन्द्रदेव और सरयू में कुछ बातें हुईं, इन्दिरा ने भी माँ से कुछ बातें कीं, और तब इन्दिरा और इन्द्रदेव को साथ लेकर राजा गोपालसिंह कमरे के बाहर हो गये।

12

किशोरी, कामिनी और कमला जिस मकान में रखी गई थीं, वह नाम ही को तिलिस्मी मकान था। वास्तव में न तो उस मकान में कोई तिलिस्म था और न किसी तिलिस्म से उसका सम्बन्ध ही था। तथापि वह मकान और स्थान बहुत सुन्दर और दिलचस्प था। ऊँची-ऊँची चार पहाड़ियों के बीच में बीस-बाईस बीघे के लगभग जमीन थी जिसमें तरह-तरह के कुदरती गुलबूटे लगे हुए थे जो केवल जमीन ही की तरावट से सरसब्ज बने रहते थे। पूरब की तरफ वाली पहाड़ी के ऊपर से साफ और मीठे जल का झरना गिरता था जो उस जमीन में चक्कर देता हुआ पश्चिम की तरफ की पहाड़ी के नीचे जाकर लोप हो जाता था और इस सबब से वहाँ की जमीन हमेशा तर बनी रहती थी। बीच में छोटा-सा दो मंजिल का मकान बना हुआ और उत्तर की तरफ वाली पहाड़ी पर सौ सवा सौ हाथ ऊँचे जाकर एक छोटा-सा बँगला और भी था। शायद बनाने वाले ने इसे जाड़े के मौसम के लिए आवश्यक समझा, क्योंकि नीचे वाले मकान में तरी ज्यादा रहती थी। किशोरी, कामिनी और कमला इसी बँगले में रहती थीं और उनकी हिफाजत के लिए जो दो-चार सिपाही और लौंडियाँ थीं, उन सभी का डेरा नीचे के मकान में था, खाने-पीने का सामान तथा बन्दोबस्त भी उसी में था।

उन तीनों की हिफाजत के लिए जो सिपाही और लौंडियाँ वहाँ थीं उन सभी की

सूरत भी ऐयारी ढंग से बदली हुई थी और यह बात किशोरी, कामिनी तथा कमला से कह दी गई थी जिसमें उन तीनों को किसी तरह का खुटका न रहे।

ये तीनों जानती थीं कि ये सिपाही और लौंडियाँ हमारी नहीं हैं, फिर भी समय की अवस्था पर ध्यान देकर उन्हें इन सभी पर भरोसा करना पड़ता था। इस मकान में आने के कारण इन तीनों की तबियत बहुत ही उदास थी। रोहतासगढ़ से रवाना होते समय इन तीनों को निश्चय हो गया था कि हम लोग बहुत जल्द चुनारगढ़ पहुँचने वाले हैं जहाँ न तो किसी दुश्मन का डर रहेगा और न किसी तरह की तकलीफ ही रहेगी, इससे भी बढ़कर बात यह होगी कि उसी चुनारगढ़ में हम लोगों की मुराद पूरी होगी। मगर निराशा ने रास्ते ही में पल्ला पकड़ लिया और दुश्मन के डर से इन्हें इस विचित्र स्थान में आकर रहना पड़ा जहाँ सिवाय गैर के अपना कोई भी दिखाई नहीं पड़ता था।

जिस दिन ये तीनों यहाँ आई थीं, उसी दिन कृष्ण जिन्न भी यहाँ मौजूद था। ये तीनों कृष्ण जिन्न को बखूबी जानती थीं और यह भी जानती थीं कि कृष्ण जिन्न हमारा सच्चा पक्षपाती तथा सहायक है, तिस पर तेजसिंह ने भी उन तीनों को अच्छी तरह समझाकर कह दिया था कि यद्यपि तुम लोगों को यह नहीं मालूम कि वास्तव में कृष्ण जिन्न कौन है और कहाँ रहता है तथापि तुम लोगों को उस पर उतना ही भरोसा रखना चाहिए जितना हम पर रखती हो और उसकी आज्ञा भी उतनी ही इज्जत के साथ माननी चाहिये जितनी इज्जत के साथ हमारी आज्ञा मानने की इच्छा रखती हो। किशोरी, कामिनी और कमला ने यह बात बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार की थी।

जिस समय ये तीनों इस मकान में आई थीं, उसके दो ही घण्टे बाद सब सामान ठीक करके कृष्ण जिन्न और तेजसिंह चले गये थे और जाते समय इन तीनों को कृष्ण जिन्न कहता गया कि तुम लोग अकेले के कारण घबराना नहीं, मैं बहुत जल्द लक्ष्मीदेवी, कमलिनी और लाड़िली को भी तुम लोगों के पास भिजवाऊंगा और तब तुम लोग बड़ी प्रसन्नता के साथ रह सकोगी। मैं भी जहाँ तक हो सकेगा तुम लोगों को लेने के लिए जल्द ही यहाँ आऊँगा।

तीसरे ही दिन भैरोंसिंह भी उस विचित्र स्थान में जा पहुँचे जिन्हें देख किशोरी, कामिनी और कमला बहुत खुश हुईं।

हमारे प्रेमी पाठक जानते ही हैं कि कमला और भैरोंसिंह का दिल घुल-मिलकर एक हो रहा था अस्तु इस समय यह स्थान उन्हीं दोनों के लिए मुबारक हुआ और उन्हीं को यहाँ आने की विशेष प्रसन्नता हुई, मगर उन दोनों को अपने से ज्यादा अपने मालिकों का खयाल था। उनकी प्रसन्नता के बिना अपनी प्रसन्नता वे नहीं चाहते थे और उनके मालिक भी इस बात को अच्छी तरह जानते थे।

उस स्थान में पहुँचकर भैरोंसिंह ने वहाँ के रास्ते की बड़ी तारीफ की और कहा कि इन्द्रदेव के मकान में जाने का रास्ता जैसा गुप्त और टेढ़ा है वैसा ही यहाँ का भी है, अनजान आदमी यहाँ कदापि नहीं आ सकता। इसके बाद भैरोंसिंह ने राजा वीरेन्द्रसिंह के लश्कर का हाल बयान किया।

भैरोंसिंह की जुबानी लश्कर का हाल और मनोरमा के हाथ से भेष बदली हुई

तीनों लौंडियों के मारे जाने की खबर सुनकर किशोरी और कामिनी के रौंगटे खड़े हो गए। किशोरी ने कहा, "निःसन्देह कृष्ण जिन्न देवता हैं। उनकी अद्भुत शक्ति, उनकी बुद्धि और उनके विचारों की जहाँ तक तारीफ की जाये उचित है। उन्होंने जो कुछ सोचा, ठीक ही निकला।"

भैरोंसिह—इसमें कोई शक नहीं। तुम लोगों को यहाँ बुलाकर उन्होंने बड़ा ही काम किया। मनोरमा तो गिरफ्तार हो गई और भाग जाने लायक भी न रही और उसके मददगार भी अगर लश्कर के साथ होंगे तो अब गिरफ्तार हुए बिना नहीं रह सकते, इसके अतिरिक्त…

कमला—हम लोगों को मरा जानकर कोई पीछा भी न करेगा और जब दोनों कुमार तिलिस्म तोड़कर चुनारगढ़ में आ जायेंगे, तब तो यही दुनिया हम लोगों के लिए स्वर्ग हो जायेगी।

बहुत देर तक इन चारों में बातचीत होती रही। इसके बाद भैरोंसिह ने वहाँ की अच्छी तरह सैर की और खा-पीकर निश्चिन्त होने के बाद इधर-उधर की बातों से उन तीनों का दिल बहलाने लगे और जब तक वहाँ रहे, उन लोगों को उदास न होने दिया।

13

संध्या होने में अभी दो घण्टे से ज्यादा देर है मगर सूर्य भगवान् पहाड़ की आड़ में हो गए इसलिए उस स्थान में जिसमें किशोरी, कामिनी और कमला हैं, पूरब की तरफ वाली पहाड़ी के ऊपरी हिस्से के सिवाय और कहीं धूप नहीं है। समय अच्छा और स्थान बहुत ही रमणीक मालूम पड़ता है। भैरोंसिह एक पेड़ के नीचे बैठे हुए कुछ बना रहे हैं और किशोरी, कामिनी तथा कमला बँगले से कुछ दूर पर एक पत्थर की चट्टान पर बैठी बातें कर रही हैं।

कमला ने कहा, "बैठे-बैठे जी घबरा गया!"

कामिनी—तो तुम भी भैरोंसिह के पास जा बैठो और पेड़ की छाल को छील-छीलकर रस्सी बँटो।

कमला— जी मैं ऐसे गन्दे काम नहीं करती। मेरा मतलब यह था कि अगर हुक्म हो तो मैं इस पहाड़ी के बाहर जाकर इधर-उधर की कुछ खबर ले आऊँ या जमानिया में जाकर इसी बात का पता लगाऊँ कि राजा गोपालसिंह के दिल से लक्ष्मीदेवी की मुहब्बत एकदम क्यों जाती रही जो आज तक उस बेचारी को पूछने के लिए एक चिड़िया का बच्चा भी नहीं भेजा।

किशोरी—बहिन, इस बात का तो मुझे भी बड़ा रंज है। मैं सच कहती हूँ कि हम लोगों में से कोई भी ऐसा नहीं है जो उसके दुःख की बराबरी करे। राजा गोपालसिंह की बदौलत उसने जो-जो तकलीफें उठाईं, उन्हें सुनने और याद करने से कलेजा काँप जाता

है ! मगर अफसोस, राजा गोपालसिंह ने उसकी कुछ भी कदर न की ।

कामिनी—मुझे सबसे ज्यादा केवल इस बात का ध्यान रहता है कि बेचारी लक्ष्मीदेवी ने जो-जो कष्ट सहे हैं, उन सभी से बढ़कर उसके लिए यह दु:ख है कि राजा गोपालसिंह ने पता लग जाने पर भी उसकी कुछ सुध न ली । सब दु:खों को तो वह सह गई मगर यह दु:ख उससे सहा न जायेगा । हाय-हाय, गोपालसिंह का भी कैसा पत्थर का कलेजा है !

किशोरी—ऐसी मुसीबत कहीं मुझे सहनी पड़ती तो मैं पल भर भी इस दुनिया में न रहती । क्या जमाने से मुहब्बत एकदम जाती रही ? या राजा गोपालसिंह ने लक्ष्मीदेवी में कोई ऐब देख लिया है ?

कमला --राम-राम, वह बेचारी ऐसी नहीं है कि किसी ऐब को अपने पास आने दे । देखो, अपनी छोटी बहिन की लौंडी बनकर मुसीबत के दिन उसने किस ढंग से बिताए । मगर उसके पतिव्रत धर्म का नतीजा कुछ भी न निकला ।

किशोरी—इस दु:ख से बढ़कर दुनिया में कोई भी दु:ख नहीं है ।(पेड़ पर बैठे हुए एक काले कौए की तरफ इशारा करके) देखो बहिन, यह काग हमीं लोगों की तरफ मुँह करके बार-बार बोल रहा है । (जमीन पर से एक तिनका उठाकर) कहता है कि तुम्हारा कोई प्रेमी यहाँ चला आ रहा है ।

कामिनी—(ताज्जुब से) यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ ? क्या कौए की बोली तुम पहचानती हो, या इस तिनके में कुछ लिखा है, या यों ही दिल्लगी करती हो ?

किशोरी—मैं दिल्लगी नहीं करती सच कहती हूँ । इसका पहचानना कोई मुश्किल बात नहीं है ।

कामिनी --बहिन, मुझे भी बताओ । तुम्हें इसकी तरकीब किसने सिखाई थी ?

किशोरी—मेरी माँ ने मुझे एक श्लोक याद करा दिया था । उसका मतलब यह है कि जब काले कौए (काग) की बोली सुने तो एक बड़ा-सा साफ तिनका जमीन पर से उठा ले और अपनी उँगलियों से नाप के देखे कि कितनी अंगुल का है । जितनी अँगुल हो उसमें तेरह और मिलाकर सात-सात करके जहाँ तक उसमें से निकल सकें और जो कुछ बचे उसका हिसाब लगाये । एक बचे तो लाभ होगा, दो बचे तो नुकसान होगा, तीन बचे तो सुख मिलेगा, चार बचे तो कोई चीज मिलेगी, पाँच बचे तो किसी मित्र का दर्शन होगा, छ: बचे तो कलह होगी, सात बचे या यों कहो कि कुछ भी न बचे तो समझो कि अपना या अपने किसी प्रेमी का मरना होगा । बस, इतना ही तो हिसाब है ।

कामिनी—तुम तो इतना कह गईं, लेकिन मेरी समझ में तो कुछ भी न आया । यह तिनका जो तुमने उँगली से नापा है, इसका हिसाब करके समझा दो, तो समझ जाऊँगी ।

किशोरी—अच्छा देखो, यह तिनका जो मैंने नापा था, छह अंगुल का है । इसमें तेरह मिला दिया तो तो कितना हुआ ?

कामिनी—उन्नीस हुआ ।

किशोरी—अच्छा, इसमें से कितने सात निकल सकते हैं ?

कामिनी—(सोचकर) सात और सात चौदह, दो सात निकल गए और पाँच बचे। अच्छा, अब मैं समझ गई, तुम अभी कह चुकी हो कि अगर पाँच बचे तो किसी मित्र का दर्शन हो। अच्छा, अब वह श्लोक सुना दो क्योंकि श्लोक बड़ी जल्दी याद हो जाया करता है।

किशोरी—सुनो—

काकस्य वचनं श्रुत्वा ग्रहीत्वा तृणमुत्तमम्।
त्रयोदशसमायुक्ता मुनिभिः भागमाचरेत्॥
1 2 3 4 5
लाभं कष्टं महासौख्य भोजनं प्रियदर्शनम्।
6 7
कलहो मरणं चैव काको वदति नान्यथा॥

कमला—(हँसकर) श्लोक तो अशुद्ध है!

किशोरी—अच्छा-अच्छा, रहने दीजिये, अशुद्ध है तो तुम्हारी बला से, तुम बड़ी पण्डित बनकर आई हो तो अपना शुद्ध करा लेना!

कामिनी—(कमला से) खैर, तुम्हारे कहने से मान लिया जाये कि श्लोक अशुद्ध है मगर उसका मतलब तो अशुद्ध नहीं है।

कमला—नहीं-नहीं, मतलब को कौन अशुद्ध कहता है। मतलब तो ठीक और सच है।

कामिनी—तो बस फिर हो चुका। बीबी, दुनिया में श्लोक की बड़ी कदर होती है, पण्डित लोग अगर कोई झूठी बात भी समझाना चाहते हैं तो झट श्लोक बनाकर पढ़ देते हैं, सुननेवाले को विश्वास हो जाता है, और यह तो वास्तव में सच्चा श्लोक है।

कामिनी ने कहा ही था कि सामने से किसी को आते देख चौंक पड़ी और बोली, "अहा हा, देखो, किशोरी बहिन की बात कैसी सच निकली! लो, कमलारानी देख लो और अपना कान पकड़ो!"

जिस जगह किशोरी, कामिनी और कमला बैठी बातें कर रही थीं उसके सामने की तरफ इस स्थान में आने का रास्ता था। यकायक जिस पर निगाह पड़ने से कामिनी चौंकी वह लक्ष्मीदेवी थी, उसके बाद कमलिनी और लाड़िली दिखाई पड़ी और सबके बाद इन्द्रदेव पर नजर पड़ी।

किशोरी—देखो बहिन, हमारी बात कैसी सच निकली!

कामिनी—बेशक-बेशक!

कमला—कृष्ण जिन्न सच ही कह गये थे कि मैं उन तीनों को भी जल्द ही यहाँ भिजवा दूँगा।

किशोरी—(खड़ी होकर) चलो, हम लोग आगे चलकर उन्हें ले आवें।

ये तीनों लक्ष्मीदेवी, कमलिनी और लाड़िली को देखकर बहुत ही खुश हुईं और वहाँ से उठकर कदम बढ़ाती हुई उनकी तरफ चलीं। वे तीनों बीच वाले मकान के पास पहुँचने न पाई थीं कि ये सब उनके पास जा पहुँचीं और इन्द्रदेव को प्रणाम करने के बाद

आपस में बारी-बारी से एक-दूसरे के गले मिलीं। भैरोंसिंह भी उसी जगह आ पहुँचे और कुशलक्षेम पूछकर बहुत प्रसन्न हुए। इसके बाद सब कोई मिलकर उसी बँगले में आए जिसमें किशोरी, कामिनी और कमला रहती थीं और इन्द्रदेव बीच वाले दोमंजिले मकान में चले गये जिसमें भैरोंसिंह का डेरा था।

यद्यपि वहाँ खिदमत करने के लिए लौंडियों की कमी न थी, तथापि कमला ने अपने हाथ से तरह-तरह की खाने की चीजें तैयार करके सभी को खिलाया-पिलाया और मुहब्बत-भरी हँसी-दिल्लगी की बातों से सभी का दिल बहलाया। रात के समय जब हर एक काम से निश्चिन्त होकर एक कमरे में सब बैठीं तो बातचीत होने लगी।

किशोरी—(लक्ष्मीदेवी से)जमाने ने तो हम लोगों को जुदा कर दिया था मगर ईश्वर ने कृपा करके बहुत जल्द मिला दिया।

लक्ष्मीदेवी—हाँ बहिन, इसके लिए मैं ईश्वर को धन्यवाद देती हूँ। मगर मेरी समझ में अभी तक नहीं आता कि ये कृष्ण जिन्न कौन हैं जिनके हुक्म से कोई भी मुँह नहीं मोड़ता। देखो तुम भी उन्हीं की आज्ञानुसार यहाँ पहुँचाई गईं और हम लोग भी उन्हीं की आज्ञा से यहाँ लाए गए। जो हो मगर कोई शक नहीं कि कृष्ण जिन्न बहुत ही बुद्धिमान और दूरदर्शी हैं। यह सुनकर हम लोगों को बड़ी खुशी हुई कि कृष्ण जिन्न की चालाकियों ने तुम लोगों की जान बचा ली।

कामिनी—यह खबर तुम्हें कब मिली ?

लक्ष्मीदेवी—इन्द्रदेवजी जमानिया गये थे। उसी जगह कृष्ण जिन्न की चिट्ठी पहुँची जिससे सब हाल मालूम हुआ और उसी चिट्ठी के मुताबिक हम लोग यहाँ पहुँचाये गए।

किशोरी—जमानिया गये थे ! राजा गोपालसिंह ने बुलाया होगा ?

लक्ष्मीदेवी—(ऊँची साँस लेकर)वे क्यों बुलाने लगे ? उन्हें क्या गर्ज पड़ी थी ? हाँ, हमारे पिता का पता लगाने गए थे, सो वहाँ जाने पर कृष्ण जिन्न की चिट्ठी ही से यह भी मालूम हुआ कि भूतनाथ उन्हें छुड़ाकर चुनारगढ़ ले गया। ईश्वर उसका खूब भला करे, भूतनाथ बात का धनी निकला।

किशोरी—(खुश होकर)भूतनाथ ने यह बहुत बड़ा काम किया। फिर भी उसके मुकदमे में वड़ी उलझन निकलेगी।

कामिनी—इसमें क्या शक है ?

किशोरी—अच्छा तो जमानिया में जाने से और भी किसी का हाल मालूम हुआ ?

कमलिनी—हाँ, दोनों कुमारों से दूर से मुलाकात और बातचीत हुई क्योंकि वे तिलिस्म तोड़ने की कार्रवाई कर रहे थे, और वहीं इन्द्रदेव ने अपनी लड़की इन्दिरा को पाया और अपनी स्त्री सरयू को भी देखा।

किशोरी—(चौंककर और खुश होकर) यह बड़ा काम हुआ ! वे दोनों इतने दिनों तक कहाँ और कैसे मिलीं ?

लक्ष्मीदेवी—वे दोनों तिलिस्म में फँसी हुई थीं, दोनों कुमारों की बदौलत उनकी

जान बची।

इस जगह लक्ष्मीदेवी ने सरयू और इन्दिरा का किस्सा पूरा-पूरा बयान किया जिसे सुनकर वे तीनों बहुत प्रसन्न हुईं और कमला ने कहा, "विश्वासघातियों और दुष्टों के लिए उस समय जमानिया बैकुण्ठ हो रहा था !"

लक्ष्मीदेवी—तभी तो मुझे ऐसे-ऐसे दुःख भोगने पड़े जिनसे अभी तक छुटकारा नहीं मिला, मगर मैं नहीं कह सकती कि अब मेरी क्या गति होगी और मुझे क्या करना होगा।

किशोरी—क्या जमानिया में इन्द्रदेव से राजा गोपालसिंह ने तुम्हारे विषय में कोई बातचीत नहीं की ?

लक्ष्मीदेवी—कुछ भी नहीं, सिर्फ इतना कहा कि तुम उन तीनों बहिनों को कृष्ण जिन्न की आज्ञानुसार वहाँ पहुँचा दो जहाँ किशोरी, कामिनी और कमला हैं, वहाँ स्वयं कृष्ण जिन्न जाएँगे, उसी समय जो कुछ वे कहेंगे सो करना। शायद कृष्ण जिन्न उन सभी को यहाँ ले आवें।

कामिनी—(हाथ मलकर) बस !

लक्ष्मीदेवी—बस, और कुछ भी नहीं पूछा और न इन्द्रदेवजी ही ने कुछ कहा, क्योंकि उन्हें भी इस बात का रंज है।

किशोरी—रंज तो होना ही चाहिए जो भी सुनेगा। उसी को इसका रंज होगा। वे तो बेचारे तुम्हारे पिता ही के बराबर ठहरे, क्यों न रंज करेंगे ! (कमलिनी से) तुम तो अपने जीजाजी के मिजाज की बड़ी तारीफ करती थीं !

कमलिनी—बेशक वे तारीफ के ही लायक हैं, मगर इस मामले में तो मैं आप हैरान हो रही हूँ कि उन्होंने ऐसा क्यों किया ! उनके सामने ही दोनों कुमारों ने बड़े शौक से तुम लोगों का हाल इन्द्रदेव से पूछा और सभी को जमानिया में बुला लेने के लिए कहा, मगर उस पर भी राजा साहब ने हमारी दुखिया बहिन को याद न किया, आशा है कि कल तक कृष्ण जिन्न भी यहाँ आ जायेंगे, देखें, वह क्या करते हैं !

लक्ष्मीदेवी—करेंगे क्या, अगर वह मुझे जमानिया चलने के लिए कहेंगे भी तो मैं इस बेइज्जती के साथ जाने वाली नहीं हूँ। जब मेरा मालिक मुझे पूछता ही नहीं तो मैं कौन सा मुँह लेकर उसके पास जाऊँ और किस सुख के लिए या किस आशा पर इस शरीर को रखूँ !

कमला—नहीं-नहीं, तुम्हें इतना रंज नहीं करना चाहिए···

कामिनी—(बात काटकर)रंज क्यों न करना चाहिए ! भला इससे बढ़कर भी कोई रंज दुनिया में है ! जिसके सबब से और जिसके खयाल से इस बेचारी ने इतने दुःख भोगे और ऐसी अवस्था में रही, वही जब एक बात न पूछे तो कहो रंज हो कि न हो ? और नहीं तो इस बात का खयाल ही करते कि इसी की बहिन या उनकी साली की बदौलत उनकी जान बची, नहीं तो दुनिया से उनका नाम-निशान भी उठ जाता।

लाड़िली—बहिन, ताज्जुब तो यह है कि इनकी खबर न ली तो न सही अपनी

उस अनोखी मायारानी की सूरत तो आकर देख जाते जिसने उनके साथ···

कामिनी—(जल्दी से)हाँ, और क्या ? उसे भी देखने न आए ! उन्हें तो चाहिए था कि रोहतासगढ़ पहुँचकर उसकी बोटी-बोटी अलग कर देते !

इस तरह से ये सब बड़ी देर तक आपस में बातें करती रहीं । लक्ष्मीदेवी की अवस्था पर सभी को रंज, अफसोस और ताज्जुब था । जब रात ज्यादा बीत गई तो सभी ने चारपाई की शरण ली । दूसरे दिन उन्हें कृष्ण जिन्न के आने की खबर मिली ।

14

किशोरी, कामिनी, कमलिनी, लक्ष्मीदेवी, कमला और लाड़िली सभी को कृष्ण जिन्न के आने का इन्तजार था । सभी के दिल में तरह-तरह की बातें पैदा हो रही थीं और सभी को इस बात की आशा लग रही थी कि कृष्ण जिन्न के आने पर इस बात का पता लग जायेगा कि कृष्ण जिन्न कौन हैं और राजा गोपालसिंह ने लक्ष्मीदेवी की सुध क्यों भुला दी ।

आखिर दूसरे दिन कृष्ण जिन्न भी वहाँ आ पहुँचा । यद्यपि वह एक ऐसा आदमी था, जिसकी किसी को भी खबर न थी । कोई भी नहीं कह सकता था कि वह कौन और कहाँ का रहने वाला है, न कोई उसकी जात बता सकता था और न कोई उसकी ताकत और सामर्थ्य के विषय में ही कुछ बाद-विवाद कर सकता था, तथापि उसकी हमदर्दी और कार्रवाई से सभी खुश थे और इसलिए कि राजा वीरेन्द्रसिंह उसे मानते थे। सभी उसकी कदर करते थे। गुप्त स्थान में पहुँच वह सभी को चौकन्ना कर चुका था। इस-लिए किशोरी और लक्ष्मीदेवी इत्यादि को उससे पर्दा करने की कोई आवश्यकता न थी और न ऐसा करने का उन्हें हुक्म था। अस्तु कृष्ण जिन्न के आने की खबर पाकर सब खुश हुई और बीच वाले दोमंजिले मकान में, जिनमें सबके पहले आकर उसने इन्द्रदेव से मुलाकात की थी, चलने के लिए तैयार हो गईं, मगर उसी समय भैरोंसिंह ने बँगले पर आकर लक्ष्मोदेवी इत्यादि से कहा कि कृष्ण जिन्न स्वयं वहीं चले आ रहे हैं ।

थोड़ी देर बाद कृष्ण जिन्न बँगले पर आ पहुँचा । लक्ष्मीदेवी, कमलिनी, लाड़िली, किशोरी, कामिनी और कमला ने आगे बढ़कर उसका इस्तकबाल (अगवानी) किया और इज्जत के साथ लाकर एक ऊँची गद्दी के ऊपर बैठाया । उसकी आज्ञानुसार इन्द्रदेव और भैरोंसिंह गद्दी के नीचे दाहिनी तरफ बैठे और लक्ष्मीदेवी इत्यादि को सामने बैठने के लिए कृष्ण जिन्न ने आज्ञा दी और सभी ने खुशी से उसकी आज्ञा स्वीकार की। कृष्ण जिन्न ने सभी का कुशल-मंगल पूछा और फिर यों बातचीत होने लगी—

किशोरी—आपकी बदौलत हम लोगों की जान बच गई, मगर उन लौंडियों के मारे जाने का रंज है ।

कृष्ण जिन्न—यह सब ईश्वर की माया है, वह जो चाहता है, करता है। यद्यपि मनोरमा ने कई शैतानों को साथ लेकर तुम लोगों का पीछा किया था, मगर उसके गिरफ्तार हो जाने से ही उन सभी का खौफ जाता रहा। अब जो मैं खयाल करके देखता हूँ तो तुम लोगों का दुश्मन कोई भी दिखाई नहीं देता। क्योंकि जिन दुष्टों की बदौलत लोग दुश्मन हो रहे थे या यों कहो कि जो लोग उनके मुखिया थे, वे सब गिरफ्तार हो गए। यहाँ तक कि उन लोगों को कैद से छुड़ाने वाला भी कोई न रहा।

कमलिनी—ठीक है, तो अब हम लोगों को छिप कर यहाँ रहने की क्या जरूरत है?

कृष्ण जिन्न—(हँस कर) तुम्हें तो तब भी छिप कर रहने की जरूरत नहीं पड़ी जब चारों तरफ दुश्मनों का जोर बँधा हुआ था, आज की कौन कहे? मगर हाँ (हाथ का इशारा करके) इन बेचारियों को अब यहाँ रहने की कोई जरूरत नहीं और अब इसीलिए मैं यहाँ आया हूँ कि तुम लोगों को जमानिया ले चलूँ, वहाँ से फिर जिसको जिधर जाना होगा, चला जायगा।

लक्ष्मीदेवी—तो आप हम लोगों को चुनारगढ़ क्यों नहीं ले चलते या वहाँ जाने की आज्ञा क्यों नहीं देते?

कृष्ण जिन्न—नहीं-नहीं, तुम लोगों को पहले जमानिया चलना चाहिए। यह केवल मेरी आज्ञा ही नहीं, बल्कि मैं समझता हूँ कि तुम लोगों की भी यही इच्छा होगी। (लक्ष्मीदेवी से) तुम तो जमानिया की रानी ही ठहरीं, तुम्हारी रिआया खुशी मनाने के लिए उस दिन का इन्तजार कर रही है जिस दिन तुम्हारी सवारी शहर के अन्दर पहुँचेगी, और कमलिनी तथा लाड़िली तुम्हारी बहिन ही ठहरीं···

लक्ष्मीदेवी—(बात काट कर) बस बस, मैं बाज आई जमानिया की रानी बनने से! वहाँ जाने की मुझे कोई जरूरत नहीं और मेरी दोनों बहिनें भी जहाँ मैं रहूँगी, वहीं मेरे साथ रहेंगी।

कृष्ण जिन्न—क्यों क्यों, ऐसा क्यों?

लक्ष्मीदेवी—मैं इसलिए विशेष बात कहना नहीं चाहती कि आपने यद्यपि हम लोगों की बड़ी सहायता की है और हम लोग जन्म-भर आपकी ताबेदारी करके भी उसका बदला नहीं चुका सकतीं तथापि आपका परिचय न पाने के कारण···

कृष्ण जिन्न—ठीक है ठीक है, अपरिचित पुरुष से दिल खोल कर बातें करना कुलवती स्त्रियों का धर्म नहीं है, मगर मैं यद्यपि इस समय अपना परिचय नहीं दे सकता तथापि यह कहे देता हूँ कि नाते में राजा गोपालसिंह का छोटा भाई हूँ। इसलिए तुम्हें भावज मानकर बहुत-कुछ कहने और सुनने का हक रखता हूँ। तुम निश्चय रक्खो कि मेरे विषय में राजा गोपालसिंह तुम्हें कभी उलाहना न देंगे, चाहे तुम मुझसे किसी तरह पर बातचीत क्यों न करो! (कुछ सोच कर) मगर मैं समझ रहा हूँ कि तुम जमानिया जाने से क्यों इनकार करती हो। शायद तुम्हें इस बात का रंज है कि यकायक तुम्हारे जीते रहने की खबर पाकर भी गोपालसिंह तुम्हें देखने के लिए न आए···

कमलिनी—देखने के लिए आना तो दूर रहा, अपने हाथ से एक पुर्जा लिख कर यह भी न पूछा कि तेरा मिजाज कैसा है !

लाड़िली—आने-जाने वाले आदमी तक से भी हाल न पूछा !

लक्ष्मीदेवी—(धीरे से) एक कुत्ते की भी इतनी बेकदरी नहीं की जाती !

कमलिनी—ऐसी हालत में रंज हुआ ही चाहे, जब आप यह कहते हैं कि राजा गोपालसिंह के छोटे भाई हैं, और मैं समझती हूँ कि आप झूठ भी नहीं कहते होंगे, तभी हम लोगों को इतना कहने का हौसला भी होता है। आप ही कहिए कि राजा साहब को क्या यही उचित था ?

कृष्ण जिन्न—मगर तुम इस बात का क्या सबूत रखती हो कि राजा साहब ने इनकी बेकदरी की ? औरतों की भी विचित्र बुद्धि होती है ! असल बात तो जानतीं नहीं और उलाहना देने पर तैयार हो जाती हैं।

कमलिनी—सबूत अब इससे बढ़कर क्या होगा जो मैं कह चुकी हूँ ? अगर एक दिन के लिए चुनारगढ़ आ जाते तो क्या पैर की मेंहदी छूट जाती !

कृष्ण जिन्न—अपने बड़े लोगों के सामने अपनी स्त्री को देखने के लिए आना क्या उचित होता ? मगर अफसोस, तुम लोगों को तो इस बात की खबर ही नहीं कि राजा गोपालसिंह महाराज वीरेन्द्रसिंह के भतीजे होते हैं और इसी सबब से लक्ष्मीदेवी को अपने घर में आ गई जानकर उन्होंने किसी तरह की जाहिरदारी न की।

सब—(ताज्जुब से) क्या महाराज उनके चाचा होते हैं ?

कृष्ण जिन्न—हाँ, यह बात पहले केवल हमीं दोनों आदमियों को मालूम थी और तिलिस्म तोड़ने के समय दोनों कुमारों को मालूम हुई या आज मेरी जुबानी तुम लोगों ने सुनी। खुद महाराज वीरेन्द्रसिंह को भी अभी तक यह बात मालूम नहीं है।

लक्ष्मीदेवी—अच्छा अच्छा, जब नातेदारी इतनी छिपी हुई थी तो···

कमलिनी—(लक्ष्मीदेवी को रोककर) बहिन, तुम रहने दो, मैं इनकी बातों का जवाब दे लूँगी ! (कृष्ण जिन्न से) तो क्या गुप्त रीति से वह यहाँ एक चिट्ठी भी नहीं भेज सकते थे ?

कृष्ण जिन्न—चिट्ठी भेजना तो दूर रहा, गुप्त रीति से खुद कई दफे आकर वे इनको देख भी गये हैं।

लाड़िली—अगर ऐसा ही होता तो रंज काहे का था !

कमलिनी—इस बात को तो वह कदापि साबित नहीं कर सकते !

कृष्ण जिन्न—यह बात बहुत सहज में साबित हो जायगी और तुम लोग सहज ही में मान भी जाओगी, मगर जब उनका और तुम्हारा सामना होगा तब।

कमलिनी—तो आपकी राय है कि बिना सन्तोष हुए और बिना बुलाये बेइज्जती के साथ हमारी बहिन जमानिया चली जाय ?

कृष्ण जिन्न—बिना बुलाये कैसे ? आखिर मैं यहाँ किस लिए आया हूँ। (जेब से एक चिट्ठी निकाल कर और लक्ष्मीदेवी के हाथ में देकर) देखो, उनके हाथ की लिखी चिट्ठी पढ़ो।

चिट्ठी में यह लिखा हुआ था—

"चिरंजीव कृष्ण योग्य लिखी गोपालसिंह का आशीर्वाद—आज तीन दिन हुए एक पत्र तुम्हें भेज चुका हूँ। तुम छोटे भाई हो, इसलिए विशेष लिखना उचित नहीं समझता, केवल इतना लिखता हूँ कि चिट्ठी देखते ही चले आओ और अपनी भावज को तथा उनकी दोनों बहिनों को जहाँ तक जल्दी हो सके, यहाँ ले आओ।"

इस चिट्ठी को बारी-बारी से सभी ने पढ़ा।

कमलिनी—मगर इस चिट्ठी में कोई ऐसी बात नहीं लिखी है, जिससे लक्ष्मीदेवी के साथ हमदर्दी पाई जाती हो ! जब हाथ दुखाने बैठे ही थे तो एक चिट्ठी इनके नाम की भी लिख डाली होती ! इन्हें नहीं तो मुझी को कुछ लिख भेजा होता। मेरा उनका सामना हुए भी तो बहुत दिन नहीं हुए। मालूम होता है कि थोड़े ही दिनों में वे बेमुरौवत और कृतघ्न भी हो गए।

कृष्ण जिन्न—कृतघ्न का शब्द तुमने बहुत ठीक कहा ! मालूम होता है कि तुम उन पर अपनी कार्रवाइयों का अहसान डालना चाहती हो ?

कमलिनी—(क्रोध से) क्यों नहीं ? क्या मैंने उनके लिए थोड़ी मेहनत की है ? और इसका क्या यही बदला था ?

कृष्ण जिन्न—जब अहसान और उसके बदले का खयाल आ गया तो मुहब्बत कैसी और प्रेम कैसा ? मुहब्बत और प्रेम में अहसान और बदला चुकाने का तो खयाल ही नहीं होना चाहिए। यह तो रोजगार और लेने-देने का सौदा हो गया ! और अगर तुम इसी बदला चुकाने वाली कार्रवाई को प्रेमभाव समझती हो तो घबराती क्यों हो ? समझ लो कि दूकानदार नादेहन्द है, मगर बदला देने योग्य है, तो कभी-न-कभी बदला चुक ही जायगा। हाय हाय, औरतें भी कितना जल्द अहसान जताने लगती हैं ! क्या तुमने कभी यह भी सोचा है कि तुम पर किसने अहसान किया और तुम उसका बदला किस तरह चुका सकती हो ? अगर तुम्हारा ऐसा ही मिजाज है और बदला चुकाये जाने की तुम ऐसी ही भूखी हो तो बस हो चुका। तुम्हारे हाथों से किसी गरीब असमर्थ या दीन-दुखिया का भला कैसे हो सकता है ? क्योंकि उसे तो तुम बदला चुकाने लायक समझोगी ही नहीं !

कमलिनी—(कुछ शरमाकर) क्या राजा गोपालसिंह भी कोई असमर्थ और दीन हैं ?

कृष्ण जिन्न—नहीं हैं। तो तुमने राजा समझकर उन पर अहसान किया था ? अगर ऐसा है तो मैं तुम्हें उनसे बहुत-सा रुपया दिलवा सकता हूँ।

कमलिनी—क्षमा करें, मैं रुपये की भूखी नहीं हूँ।

कृष्ण जिन्न—बहुत ठीक, तब तुम प्रेम की भूखी होगी ?

कमलिनी—बेशक !

कृष्ण जिन्न—अच्छा तो जो आदमी प्रेम का भूखा है, उसे दीन, असमर्थ और समर्थ में अहसान करते समय भेद क्यों दिखने लगा और इसके देखने की जरूरत ही क्या है ? ऐसी अवस्था में यही जान पड़ता है कि तुम्हारे हाथों से गरीब, असमर्थ और

दुखियों को लाभ नहीं पहुँच सकता, क्योंकि न तो वे समर्थ हैं और न तुम उनसे उस अहसान के बदले में प्रेम ही पाकर खुश हो सकती हो।

कमलिनी—आपके इस कहने से मेरी बात नहीं कटती। प्रेमभाव का बर्ताव करके तो अमीर और गरीब, बल्कि गरीब-से-गरीब आदमी भी अहसान का बदला उतार सकता है! और कुछ नहीं तो वह कम-से-कम अपने ऊपर अहसान करने वाले का कुशल-मंगल ही चाहेगा। इसके अतिरिक्त अहसान और अहसान का जस माने बिना दोस्ती भी तो नहीं हो सकती। दोस्ती की तो बुनियाद ही नेकी है! क्या आप उसके साथ दोस्ती कर सकते हैं, जो आपके साथ बदी करे?

कृष्ण जिन्न—अगर तुम केवल उपकार मान लेने ही से खुश हो सकती हो तो चलकर राजा साहब से पूछो कि वह तुम्हारा उपकार मानते हैं या नहीं, या उनको कहो कि उपकार मानते हों तो इसकी मुनादी करवा दें, जैसा कि लक्ष्मीदेवी ने इन्द्रदेव का उपकार मानकर किया था।

लक्ष्मीदेवी—(शरमा कर) मैं भला उनके अहसान का बदला क्योंकर अदा कर सकती हूँ और मुनादी कराने से होता ही क्या है?

कृष्ण जिन्न—शायद राजा गोपालसिंह भी यही सोच कर चुप बैठ रहे हों और दिल में तुम्हारी तारीफ करते हों।

लक्ष्मीदेवी—(कमलिनी से) तुम व्यर्थ की बातें कर रही हो। इस वाद-विवाद से क्या फायदा होगा! मतलब तो इतना ही है कि मैं उस घर में नहीं जाना चाहती जहाँ अपनी इज्जत नहीं, पूछ नहीं, चाह नहीं और जहाँ एक दिन भी रही नहीं।

कृष्णा—अच्छा इन सब बातों को जाने दो, मैं एक दूसरी बात कहता हूँ उसका जवाब दो।

कमलिनी—कहिए।

कृष्णा—जरा विचार करके देखो कि तुम उनको तो बेमुरौवत कहती हो, इसका खयाल भी नहीं करतीं कि तुम लोग उनसे कहीं बढ़कर बेमुरौवत हो! राजा गोपालसिंह एक चिट्ठी अपने हाथ से लिखकर तुम्हारे पास भेज देते तो तुम्हें सन्तोष हो जाता मगर चिट्ठी के बदले में मुझे भेजना तुम लोगों को पसन्द न आया! अच्छा, अहसान जताने का रास्ता तो तुमने खोल ही दिया है, खुद गोपालसिंह पर अहसान बता चुकी हो, तो अगर अब मैं भी यह कहूँ कि मैंने भी तुम लोगों पर अहसान किया है तो क्या बुराई है?

कमलिनी—कोई बुराई नहीं है और इसमें कोई सन्देह भी नहीं है कि आपने हम लोगों पर बहुत बड़ा अहसान किया है और बड़े वक्त पर ऐसी मदद की है कि कोई दूसरा कर ही नहीं सकता था। हम लोगों का बाल-बाल आपके अहसान से बँधा हुआ है।

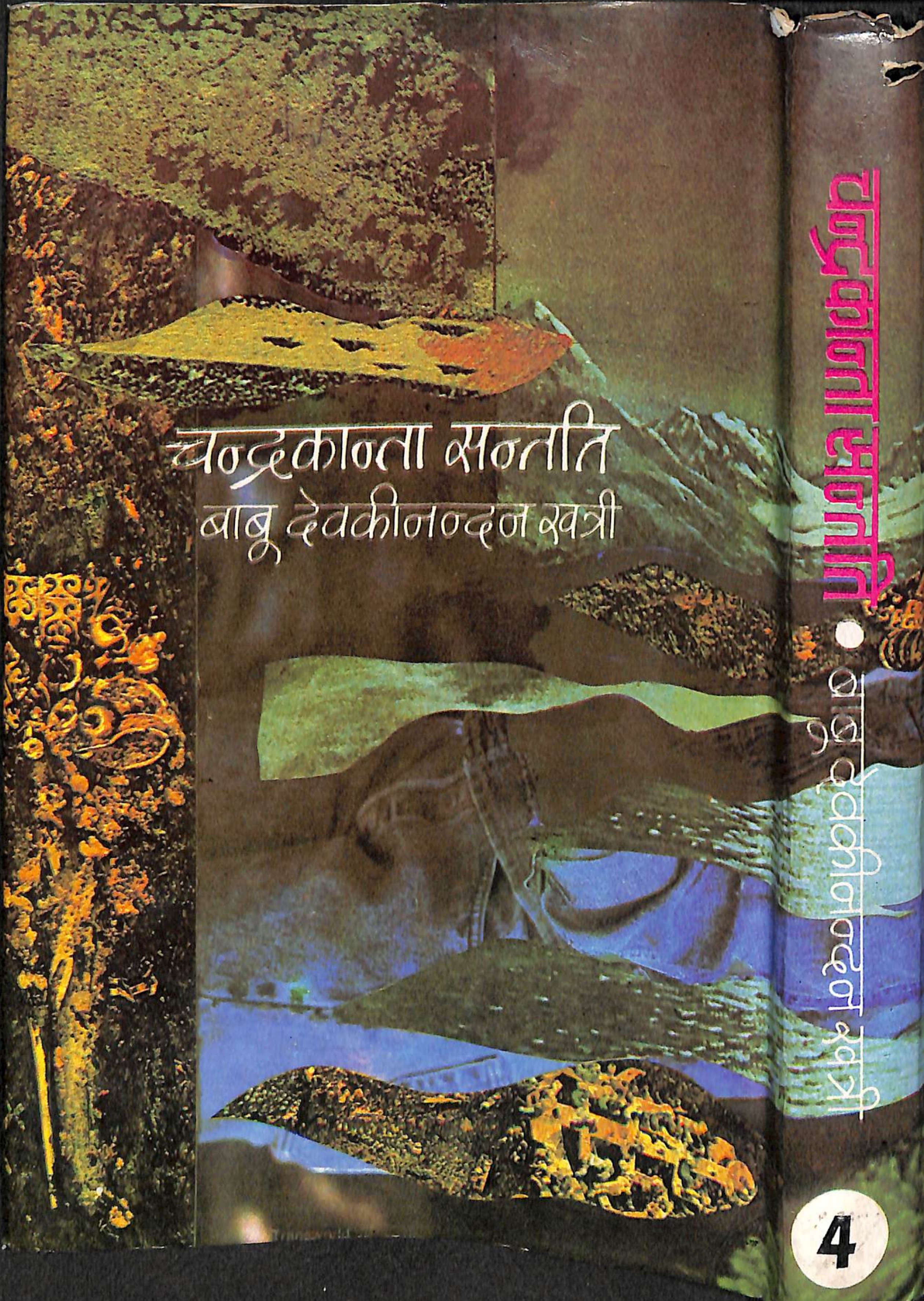
कृष्ण जिन्न—तो अगर मैं ही राजा गोपालसिंह बन जाऊँ तो।

कृष्ण जिन्न की इस आखिरी बात ने सभी को चौंका दिया। लक्ष्मीदेवी, कमलिनी

और लाड़िली कृष्ण जिन्न का मुँह देखने लगीं। कृष्ण जिन्न इस समय भी ठीक उसी सूरत में था जिस सूरत में अब से पहले कई दफ़े हमारे पाठक उसे देख चुके हैं।

कृष्ण जिन्न ने अपने चेहरे पर से एक झिल्ली-सी उतारकर अलग रख दी और उसी समय कमलिनी ने चिल्लाकर कहा, "अहा, ये तो स्वयं राजा गोपालसिंह हैं!" और तब यह कहकर उनके पैरों पर गिर पड़ी, "आपने तो हम लोगों को अच्छा धोखा दिया!"

□□


चन्द्रकान्ता सन्तति
बाबू देवकीनन्दन खत्री
चन्द्रकान्ता सन्तति • बाबू देवकीनन्दन खत्री
4